



पासणाहचरिउ

एक समीक्षात्मक अध्ययन

लेखक :
डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन भारती

प्रकाशक/प्रकाशन :
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघी जी
सांगानेर, जयपुर

आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, व्यावर





दो शब्द

महाकवि 'रङ्गधू' कृत 'पासणाहचरित' उपश्रृंगारहास्यव्योमों में विशिष्ट स्थान रखता है। इसकी कथावस्तु सात सन्धियों में विभक्ति है। रङ्गधू की समस्त कृतियों में यह काव्य श्रेष्ठ, सरस एवं रुचिकर है। इसमें संवाद तत्त्व बड़ा रोचक है। ये संवाद पात्रों के चरित्र-चित्रण में पर्याप्त सहायक होते हैं। 'रङ्गधू' काष्ठासंध की माधुर गच्छ की पुष्कर गणीय शाखा से सम्बद्ध हैं। इनकी लगभग 40 रचनायें प्राप्त होती हैं।

'पासणाहचरित' जैनधर्म के तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र की गौरव-गाथा से सम्बन्धित है। 'जिम्पर'का कथन है कि 'वे वर्द्धमान महावीर के निर्वाण के 246 वर्ष पहले विद्यमान थे।'¹ 'महावग्ग' में जिस वर्षावास का उल्लेख किया गया है, वह पार्श्वनाथीय परम्परा से प्रभावित होना चाहिए।² डॉ. हर्मन योकोबी ने भगवान् पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक पुरुष माना है।³ डॉ. ए. एम. घाटे ने लिखा है कि पार्श्वका ऐतिहासिकत्व जैन आगम ग्रन्थों से सिद्ध है।⁴ श्री विमलचरमला भी इसी मत के समर्थक हैं।⁵ जॉर्ज शार्पेण्टियर ने 'द हिस्ट्री ऑव जैनाज' में लिखा है कि प्रोफेसर योकोबी तथा अन्य विद्वानों के मत के आधार पर पार्श्व ऐतिहासिक पुरुष और जैनधर्म के सच्चे स्थापनकर्ता के रूप में माने जाने लगे हैं।⁶ भगवान् पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता इस बात से भी सिद्ध होती है कि— "भगवान् महावीर ने कहा था कि वे उस धर्म का प्रचार कर रहे हैं जिसका पहले तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने प्रचार किया था।"⁷ डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी ने अपनी कृति 'हिन्दू सिविलाइजेशन' में लिखा है कि— "पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष थे;

1 Zimmer H. Philosophies of India (kegan paul) 1953, p. 183

2 महावग्ग 2/1/1

3 That parsva was a historical person, is now admitted by all as very probable — The sacred book of the East vol. xiv Introduction, p. 22

4 हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव इण्डियन पीपुल, खण्ड 2 (जैनज्म) पृ. 412

5 इण्डालॉजिकल स्टडीज, भाग-3, पृ. 236-37

6 केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, जिल्द-1, पृ. 156

7 व्याख्या प्रज्ञप्ति 5/9, पृ. 227



क्योंकि उनके अनुयायी महावीर और बुद्ध के जीवनकाल में मौजूद थे, यहाँ तक कि महावीर के माता-पिता स्वयं चाक्ष के उपगमक और श्रमणों के अनुयायी थे।"

पौराणिक अनुश्रुतिवां के अनुसार पार्श्वनाथ को आयु 100 वर्ष की थी। वे बनारस के राजा अश्वसेन के पुत्र थे। उनकी माता का नाम वामा था। 30 वर्ष की अवस्था में उन्होंने राज्य का परित्याग कर जिनदीक्षा ग्रहण की और कठोर तपश्चरण किया। केवलज्ञान प्राप्ति के उपरान्त अपनी दिव्य ध्वनि के माध्यम से लगभग 70 वर्ष तक धर्म का प्रचार करते हुए 777 ई. पूर्व में 'सम्मोद शिखर' से निर्वाण प्राप्त किया। 'सम्मोद शिखर' को शाश्वत तीर्थ की संज्ञा प्राप्त है। यह स्थान बिहार राज्य में स्थित है, इसे आज भी 'परसनाथ पर्वत' कहते हैं। यह तीर्थ 20 तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि होने के कारण जन-जन की श्रद्धा का केन्द्र है।

भगवान पार्श्वनाथ का जीवन यद्यपि पौराणिकता से भरा हुआ है तथापि यह स्पष्ट है कि उनके अन्तिम अनेक जन्मों की कहानी प्रतिद्वन्द्वी कमठ के साथ संघर्ष की कहानी है, जिसमें कमठ अशुभ का और पार्श्वनाथ शुभ के प्रतीक हैं। कमठ के एकक्षीय वैर पर पार्श्वनाथ की क्षमा शीलता, अहिंसक भावना विजयी होती है तथा वे निर्वाण लक्ष्मी प्राप्त करते हैं और कमठ के जीव शङ्करासुर को भी जिन महिमा के प्रत्यक्षदर्शन के साथ आत्मान्वेषण का अवसर प्राप्त होता है। भगवान पार्श्वनाथ की समन्वृद्ध का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण एककवि ने इस रूप में किया-है-

कमठे धरणेन्द्रे च स्योचत कर्म कुर्वती।

प्रभोस्तुल्य मनोवृत्ति पार्श्वनाथ श्रियेडस्तुवः॥

भगवान पार्श्वनाथ के महान चरित्र को काव्यमयी शैली में गुम्फित करने वाले महाकवि रङ्गधू की कृति 'पासणाहचरित' ने मुझे प्रभावित किया। फलस्वरूप मैंने हिन्दी विषय में एम. ए. उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त पी. एच. डी. उपाधि हेतु शोधकार्य के लिये 'पासणाहचरितः एक समीक्षात्मक अध्ययन' विषय चुना, जिस पर रहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ. प्र.) द्वारा दिनांक 12 अगस्त सन् 1989 ई. को पी.एच.डी. उपाधि प्रदान की गयी।

उस शोध प्रबन्ध में मैंने भगवान पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र को तुलनात्मक दृष्टि एवं प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है साथ ही रङ्गधूकृत 'पासणाहचरित' में गर्भित साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं

सांस्कृतिक मणियों का अनुसन्धानकर सिलसिलेवार सजाने का प्रयास किया है। इसमें कुल आठ परिच्छेद हैं। भूमिका में जैनचरित काव्य परम्परा का उल्लेख करने के बाद प्रथम परिच्छेद में तोर्थकर पार्श्वनाथ के जीवनचरित का तुलनात्मक विवेचन तथा उनकी ऐतिहासिकता एवं विविध साहित्य में भगवान पार्श्वनाथ सम्बन्धी कथानकों का तुलनात्मक विवेचन किया है। द्वितीय परिच्छेद में 'पासणाहचरित' का परिचय शीर्षक से महाकवि रङ्गू का परिचय, रचनायें, पासणाहचरित का रचनाकाल, कथासार, मूलस्रोत आदि का विवेचन किया है। तृतीय परिच्छेद में 'पासणाहचरित' की भाषा-शैली, चतुर्थ परिच्छेद में 'पासणाहचरित' का महाकाव्यत्व सिद्ध करने के उपरान्त पञ्चम परिच्छेद में 'पासणाहचरित' में वर्णित सामाजिक जीवन, आर्थिक जीवन एवं सांस्कृतिक पक्ष को उद्घाटित किया है। षष्ठ परिच्छेद में राजनैतिक व्यवस्था एवं सप्तम परिच्छेद में धर्म और दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं का स्वरूप विश्लेषण किया है। अष्टम परिच्छेद में पार्श्वनाथचरित विषयक रचनाओं में रङ्गूकृत 'पासणाहचरित' का स्थान निर्धारित करते हुए इसे भारतीय साहित्य की अनुपम कृति निर्धारित किया है।

उक्त शोध प्रबन्ध के लेखन में मुझे जिन महान् लेखकों, कवियों, दार्शनिकों की रचनाओं का योगदान मिला, उनका मैंने यथाशक्य उल्लेख पादटिप्पणियों में किया है। प्राचीन रचनाओं के दिव्यालोक में नवीन रचनाओं का संबल पाकर मैं अपना शोध कार्य पूर्णता के शिखर पर ला सका इस हेतु मैं उन सब रचनाकारों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

जिस तरह मरुभूमि में उधरे चरण चिन्हों से धर्मित पथिक को मार्ग का दिशादर्शन मिलता है उसी तरह निर्देशक विषय से भटकाव को अपने दिशादर्शन से बचा लेता है। मेरे शोध निर्देशक डॉ. प्रेमचन्द जैन (प्राध्यापक हिन्दी विभाग, साहू जैन कालेज, नजीबाबाद उ. प्र.) अपभ्रंश एवं हिन्दी साहित्य के प्रमुख अभ्येता एवं अधिकारी विद्वान हैं। आपके कुशल निर्देशन एवं भ्रातृवत् स्नेह के कारण यह शोध ग्रन्थ पूर्ण हो सका। इस हेतु मैं डॉ. प्रेमचन्द जैन के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

महाकवि रङ्गू रचित साहित्यानुशीलन की साधना में अनेकवर्त संलग्न श्रद्धेय डॉ. राजाराम जैन (आरा) की कृतियों में मुझे भरपूर सहायता प्राप्त हुई। मेरे समग्र जीवन विकास के मूल स्रोत हैं प्रज्य पितामह स्व. सिं. भागचन्द जैन

सोरया, पूज्य पिताश्री सिं. शिखरचन्द्र जैन सोरया, पूज्या माँ श्रीमती अशफादेवी, बहिन अंगूरी देवी एवं श्रद्धास्पद अग्रजत्रय डॉ. रमेशचन्द्र जैन (बिजनौर), डॉ. अशोक कुमार जैन (लाडनू), डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन (सगावद)। तीनों भाई संस्कृत, प्राकृत एवं जैन विद्या के अधिकारी विद्वान्, सुलेखक एवं ख्यातिप्राप्त प्रवक्ता हैं। जिनका वरद आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा है। आज भी इनका पथप्रदर्शन मेरी उल्लेखनीय निधि हैं। इन सबको मैं प्रणाम करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य में भी आप सबका आशीर्वाद मेरे जीवन-पथ को कंटक रहित बनायेगा। प्रिय अनुजश्रीवीरेन्द्र कुमार जैन सोरया (मढ़ावरा) एवं सहधर्मिणी श्रीमती इन्द्रा जैन को भी उनके यथोचित सहयोग के लिए हार्दिक स्नेह से अभिसिंचित करता हूँ।

प्रस्तुत कृति का प्रकाशन

किसी भी मौलिक कृति का प्रकाशन इस अर्थ युग में अत्यन्त दुष्कर होता है किन्तु जहाँ पूज्यपाद गुरुओं का आशीर्वाद सुलभ हो वहाँ कोई कार्य दुष्कर कैसे हो सकता है? इस बीसवीं शती में सुयोग से समाज को परमपूज्य आचार्य श्री शान्ति सागर जी महाराज, परमपूज्य महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज, एवं परमपूज्य महाकवि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का प्रत्यक्ष/परोक्ष दिशा निर्देशन एवं प्रेरणात्मक आशीर्वाद प्राप्त होता रहा। परिणामतः श्रद्धा-ज्ञान एवं चारित्र के त्रिवेणी प्रावाहित हुई। इन्हीं पूज्यात्माओं की परम्परा में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सुशिष्य परमजिनधर्मप्रभावक, अध्यात्म प्रवक्ता, मूलाचार निर्देशित श्रमणसाधनारत, चारित्रपुंज परमपूज्य मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज ने प्रारम्भ से ही अपने सद्कर्मों व सद्प्रेरणाओं से समाज में यश तो अर्जित किया ही साथ ही जैन धर्म की प्रभावना में महनीय योगदान किया। शाकाहार क्रान्ति की योजना, तीर्थ संरक्षण और साहित्य लेखन इत्यादि अनेक क्षेत्र में वे सजग हैं। आपके संसर्ग में आने वाला व्यक्ति मंगलाचरण से प्रेरित हुए बिना नहीं रहता। मानव मानव बने यही आपका सदेश है। आपकी पावन प्रेरणा एवं शुभाशीर्वाद से मेरा यह शोधप्रबन्ध 'पासणाहचरितः एक समीक्षात्मक अध्ययन' प्रकाशित किया जा रहा है। इस शुभ अवसर पर मैं कृतज्ञतापूर्वक स्वात्मबोधलाभात्मक शुभाशीर्वाद की कामना के साथ पूज्य मुनि श्री के प्रति सादर नमोऽस्तु अर्पित करता हूँ।



इस कृति के प्रकाशक एवं मुद्रक बघाई के पात्र हैं जिन्होंने इसे सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रकाशित कर गरिमा प्रदान की। यह पुस्तक जिनके आर्थिक सौजन्य से प्रकाशित हो रही है, उन दानशील महानुभाव को हार्दिक धन्यवाद। अन्त में मैं सभी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोगियों के प्रति शुभभावना, शुभकामना व्यक्त करता हूँ।

मेरी भावना है कि -

जय णंतगुणायर भवतमभायर पास जिणेस पणहुभया।

अम्ह हैं दइ जिणवर पणवियसुरणर बोहिलाहु भवि-भवि जि सया॥

(पास. 4.10/70)

अनन्तगुणों के आकर, भवरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये भास्कर के समान तथा समस्त भयों से रहित हे पार्श्व जिनेश! आपकी जय हो। देवों एवं मनुष्यों द्वारा नमस्कृत हे जिनेश्वर, हमारे लिये भव-भवान्तर में सदैव बोधिलाभ दीजिए।

सेवा सदन महाविद्यालय

बुरहानपुर (म. प्र.)

भगवान महावीर जयन्ती 1997 ई.

विनम्र

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'





प्रकाशकीय

भारत के सांस्कृतिक विकास की कथा अति प्राचीन है। भारत वसुन्धरा के उद्यान में अनेक धर्म दर्शन और विचारधाराओं के विविधवर्ण-सुमन खिले हैं, जिनकी सुरभि से बेचैन को त्राण मिला है। तपःपूत आचार्यों/ऋषियों/मनीषियों का समग्र चिन्तन ही भारतीय संस्कृति का आधार है। जैन धर्म प्रवर्तक तीर्थङ्करों तथा जैनाचार्यों ने भारतीय संस्कृति के उन्नयन में, जो योगदान किया है, वह सदा अविस्मरणीय रहेगा। पुरातत्त्व, वास्तुकला, चित्रकला तथा राजनीति के क्षेत्र में इस धारा के अवदान को भूलकर हम भारतीय संस्कृति की पूर्णता को आत्मसात् कर ही नहीं सकते। साहित्यिक क्षेत्र की प्रत्येक विधा में उनके द्वारा सृजित महनीय ग्रन्थों से सरस्वती भण्डार की श्रीवृद्धि हुयी है।

अद्यावधि उपलब्ध जैनों के प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है कि जैन साहित्य लेखन की परम्परा कम से कम ढाई वर्षों से हजार व अविच्छन्न गति से प्रवाहशील है। इस अन्तराल में जैनाचार्यों ने सिद्धान्त धर्म दर्शन, तर्कशास्त्र, पुराण, आचारशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद, वास्तु-कला, ज्योतिष और राजनीति आदि विषयों पर विविध विधाओं में गम्भीर साहित्य का सर्जन किया है। जैनाचार्यों ने प्राकृत व अपभ्रंश के साथ युग की आवश्यकता के अनुसार किसी भाषा विशेष के बन्धन में न बँधकर सभी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा है।

कालदोष के कारण, समाज में अर्थ की प्रधानता के बढ़ने से साम्प्रदायिक व दुराग्रही संकीर्णमना राजाओं द्वारा दिगम्बर साधुओं के विचरण पर प्रतिबन्ध लगने से तथा अन्यान्य कारणों से जैन साहित्य-मंदाकिनी की धारा अवरूद्ध सी होने लगी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में महाकवि पं. भूरामल शास्त्री का उदय हुआ, जिन्होंने सिद्धान्त, धर्म दर्शन अध्यात्म के अतिरिक्त संस्कृत व महाकाव्यों का प्रणयन कर साहित्य-भागीरथी का पुनः प्रवाहित कर दिया और तब से जैन साहित्य रचना को पुनर्जीवन मिला और बीसवीं शताब्दी में अनेक सारस्वत आचार्यों/मुनियों/गृहस्थ विद्वानों ने गहन अध्ययन करते हुए महनीय साहित्य की रचना की और अब भी अनेक आचार्यों, मुनियों व विद्वान् गृहस्थों द्वारा यह परम्परा चल रही है।





ग्रन्थों की सर्जना मात्र से कोई संस्कृति विश्व साहित्य में अपना स्थान नहीं बन पाती। विश्व साहित्य में स्थापित होने के लिये इन ग्रन्थों में छिपे तत्त्वों को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है क्योंकि ये विश्व युगीन समस्याओं के समाधान करने में सक्षम हैं। इस दृष्टि से ग्रन्थ प्रकाशन, ग्रन्थालयों की स्थापना के साथ इन पर व्यापक और तुलनात्मक अध्ययन भी अपेक्षित है। हर्ष का विषय है कि सन्त शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज तथा उनके शिष्यों तपोधन मुनिवृन्द की अनुकरणीय ज्ञानाराधना (चारित्र्याराधना में तो उनका संघ प्रमाणभूत है ही) से समाज में ऐसी प्रेरणा जगी कि जैन-जैन विद्यार्थियों का बड़ा समूह अब विश्वविद्यालय शोधोपाधि हेतु जैन विद्या के अंगों को ही विषय बना रहा है, जो कि जैन साहित्य के विकास का सूचक है।

जैन संस्कृति के धर्मायतनों के सौभाग्य तब भी ज्यादा बढ़े जब इतिहास निर्माता, महान् ज्योतिषुज्ज, मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज के चरण राजस्थान की ओर बढ़े। उनके पदार्पण से सांगानेर और अजमेर की संगोष्ठियों की सफलता के पश्चात् ब्यावर में जनवरी, 95 में राष्ट्रीय ज्ञानसागर संगोष्ठी आयोजित की गयी, जहाँ विद्वानों ने आ. ज्ञानसागर वाङ्मय पर महानिबन्ध लेखन कराने, शोधार्थियों के शोध-कार्य में आगत बाधाओं के निराकरणार्थ उन्हें यथावश्यक सहायता प्रदान करने तथा जैन विद्या के शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन करने के सुझाव दिये। अतः विद्वानों के भावनानुसार परमपूज्य मुनिश्री के मंगलमय आशीर्ष से ब्यावर में "आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र" की स्थापना की गयी।

परमपूज्य मुनिवर श्री की कृपा व सत्प्रेणा से केन्द्र के माध्यम से बरकत उल्लाह खॉ विश्वविद्यालय, भोपाल, कुमार्यू विश्वविद्यालय, नैनीताल, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर व रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर से अनेक शोध छात्रों ने आ. ज्ञानसागर वाङ्मय को आधार बनाकर Ph. D. उपाधिनिमित्त पंजीकरण कराया है पंजीकरण हेतु आवेदन किया है। केन्द्र माध्यम से इन शोधार्थियों को मुनि श्री के आशीर्ष पूर्वक साहित्य व छात्रवृत्ति उपलब्ध करायी जा रही है तथा अन्य शोधार्थियों को भी पंजीकरणोपरान्त छात्रवृत्ति उपलब्ध करायी जाएगी।



केन्द्र द्वारा मुनिवर के आशीष से ही डेढ़ वर्ष की अल्पावधि में अनेकों ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा चुका है।

इसी क्रम में “पासणाहचरित”, एक समीक्षात्मक अध्ययन नामक शोध प्रबन्ध प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सेवासदन महाविद्यालय बुरहानपुर में हिन्दी प्रवक्ता के रूप में कार्यरत विद्वान् डॉ. सुरेन्द्र जैन भारती के योग्यता एवम् परिश्रम का सफल है, आपको प्रस्तुत ग्रन्थ पर रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय द्वारा पी.एच.डी. उपाधि प्रदान की गयी है। हम भाई सुरेन्द्र जी के साहित्यिक अव्यवसाय के प्रति उन्हें साधुवाद।

मैं पुनः अपनी विनयाञ्जलि एवम् श्रद्धा-भक्तिपूर्ण कृतज्ञता अर्पित करता हूँ, परम-प्रभावक व्यक्तित्व के धनी, जैन संस्कृति के सबल संरक्षक एवम् प्रचारक परमपूज्य मुनिपुंगव सुधासागर जी महाराज के चरणों में, जिनकी अहैतुकी कृपा-सुधा के माध्यम से ही केन्द्र द्वारा अल्पावधि में ही समय व श्रम साध्य दुरुह कार्य अनायास ही सम्पन्न हो सके।

चूँकि पूज्य महाराजश्री का भंगल-आशीष एवम् ध्यान जैनाचार्यों द्वारा विरचित अप्रकाशित, अनुपलब्ध साहित्य के साथ जैन विद्या के अंगों पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में किये शांष कार्यों के प्रकाशन की ओर भी गया है, अतः हमें विश्वास है कि साहित्य उन्नयन एवम् प्रसार के कार्यों में ऐसी गति मिलेगी, मानो सम्राट् खाखेल का समय पुनः प्रत्यावर्तित हो गया हो। एक बार पुनः प्रज्ञा एवम् चारित्र के पुञ्जीभूत देह के पावन कमलों में सादर सश्रद्ध नमोऽस्तु।

सुधासागर . चरण भ्रमर

अरुणकुमार शास्त्री ‘व्याकरणाचार्य’

निदेशक, आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर (राज.)





पुरोवाक्

डॉ. रमेशचन्द्र जैन

रीडर एवं अध्यक्ष

संस्कृत विभाग

वर्द्धमान कॉलेज, बिजनौर (उ.प्र.)

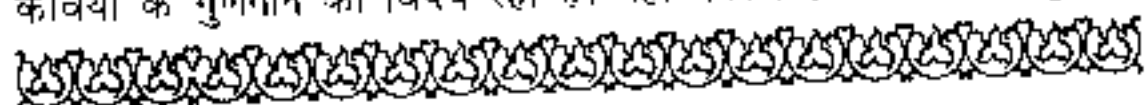
नीतिकारों ने कहा है - 'किंजीवितं? अनवद्यं' अर्थात् जीवन क्या है? इसके उत्तर में कहा गया है कि निर्दोष जीवित ही वास्तव में जीवन है। भगवान् पार्श्वनाथ के जीव ने निर्दोष जीवन जीने की अनेक जन्मों से साधना की थी। उन्हें अपनी साधना के लिए प्रत्येक जीवन में कठिन परीक्षा की घड़ियों से गुजरना पड़ा, यहाँ तक कि इस परीक्षा की कसौटी पर खरा उतरने के लिए अपने प्राणों का ठग्सर्ग भी करना पड़ा, तो भी वे अपने कर्तव्य से किञ्चित् मात्र भी विचलित नहीं हुए। उनकी वैरी कमठ के साथ अनेक जन्मों तक शत्रुता चलती रही। देवाधिदेव पार्श्वनाथ भगवान् का जीव शुभ का प्रतीक बनकर निरन्तर अच्छाई करता रहा, जबकि कमठ का जीव अशुभ का प्रतीक बनकर अच्छाई का बदला बुराई से चुकाता रहा। फलतः शुभ के प्रतीक को निर्वाण और अशुभ के प्रतीक को संसार मिला। बुराई के ऊपर अच्छाई की विजय भारतीय साहित्य और संस्कृति का मूल मन्त्र रहा है। इसी अच्छाई की सेवा और स्तुति के लिए धरणेन्द्र अपनी पत्नी के साथ आया और समीप में छत्र तानकर खड़ा हो गया। कुछ समय बाद भगवान् पार्श्वनाथ को केवल ज्ञान उपलब्ध हो गया। उनके सामने उपसर्गकर्ता कमठ था और स्तुतिकर्ता धरणेन्द्र भी था, किन्तु उनका दोनों के प्रति समभाव था। उनके इस समभाव ने ही उन्हें नमस्करणीय बना दिया। कहाँ भी है-

कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचिते कर्म कुर्वती ।

प्रभोस्तुत्य मनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तुवः ॥

अर्थात् कमठ और धरणेन्द्र दोनों ने अपने अपने स्वभाव के योग्य कर्म किया, किन्तु पार्श्वनाथ की दोनों के प्रति तुल्य मनोवृत्ति थी, ऐसे पार्श्वनाथ हमारे कल्याण के लिए होवें।

भगवान् पार्श्वनाथ की कठिन जीवन साधना और आत्मत्व की उपलब्धि कवियों के गुणगान का विषय रही है। यही कारण है कि आचार्य गुणभद्र,



जिनसेन, बादिराज सूरि, भट्टारक सकलकीर्ति, पं. भूधरदास प्रभृति अनेक दिगम्बर मनीषियों और अनेक श्वेताम्बर परम्परा के आचार्यों ने संस्कृत में उनके चरित्र का गुणगान किया है। उन पर प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा अनेक भारतीय भाषाओं में चरित वाग्व्य और भक्तिरस से ओत-प्रोत भुक्तक रचनायें लिखीं गयीं, जिनकी चर्चा डॉ. जयकुमार जैन ने अपने शोध प्रबन्ध 'पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन' में की है।

महाकवि रङ्गधू ने 'पासणाहचरित' नाम से अपभ्रंश में संक्षिप्त किन्तु सरस और मनोहर काव्य लिखा। जिसका योग्यतापूर्ण सम्पादन और हिन्दी अनुवाद कर श्री डॉ. राजाराम जैन, आरानिवासी ने 'रङ्गधू ग्रन्थावली' के प्रथम भाग के अन्तर्गत प्रकाशित कराया। अनुज डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन ने रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली से हिन्दी विषय में जब पी.एच.डी. करने की इच्छा व्यक्त की तो मैंने उन्हें रङ्गधूकृत 'पासणाहचरित' पर शोधकार्य करने की प्रेरणा दी। उन्होंने मेरे सुझाव को मानकर कार्य प्रारम्भ कर दिया, फलस्वरूप उन्होंने 'पासणाहचरित : एक समीक्षात्मक अध्ययन' ग्रन्थ रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया, जिस पर उन्हें पी.एच.डी. उपाधि से विभूषित किया गया। कार्य कैसा हुआ है? इसका निणय तो सुधी पाठक स्वयं करेंगे, किन्तु मैं इतना अवश्य कहता हूँ कि अपभ्रंश भाषा और साहित्य पर कार्य करने वाले विद्वान् उँगलियों पर ही गिनने लायक हैं, इनमें भी अपभ्रंश के अधिकारी विद्वान् तो दो चार ही हैं। ऐसी स्थिति में भाई सुरेन्द्र कुमार जैन का यह सत्प्रयास एक साहस ही है। अपनी योग्यता तथा बड़े जनों के अनुभवों का लाभ लेते हुए उन्होंने ग्रन्थ लिखने में पर्याप्त परिश्रम किया है, एतदर्थ उन्हें मेरा हार्दिक शुभाशीर्वाद है। उनके निर्देशक डॉ. प्रेमचन्द्र जैन (अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद (उ.प्र.) रहे हैं। जिनसे उन्हें पर्याप्त साहाय्य मिला है।

विद्वानों के लिए कल्पतरु परमपूज्य आचार्यश्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य अध्यात्मयोगी मुनिवर श्री १०८ सुधासागर जी महाराज, पूज्य शु. श्री गम्भीरसागर जी महाराज तथा पू.क्षु. श्री धैर्यसागर जी महाराज के पावन आशीर्वाद से यह ग्रन्थ पाठकों के हाथों में सौंपते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। आशा है, इससे साहित्य जगत् लाभान्वित होगा।

दशलक्षण पर्व

१०.९.१९९७ ई.



भूमिका

जैन चरित काव्य परम्परा

भारतीय महाकाव्यों की परम्परा में जैन चरित काव्यों का विशेष स्थान है। ये काव्य प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिखे गए हैं। वस्तुतः चरित काव्य कोई स्वतन्त्र विधा नहीं है, बल्कि यह महाकाव्य का ही एक रूप है। चरित नामान्त जैन महाकाव्यों से तात्पर्य उस प्रकार के महाकाव्यों से है, जिनमें किसी तीर्थंकर या पुण्य पुरुष का आख्यान, निबद्ध हो, साथ ही वस्तु व्यापारों का निबोधन काव्य शास्त्रीय परम्परा के अनुसार संगठित हुआ हो। अवान्तर कथाओं और घटनाओं में वैविध्य के साथ अलौकिक और अप्राकृतिक तत्त्वों का अधिक सन्निवेश न हो। दर्शन और आधार तत्त्व इस श्रेणी के काव्यों में अवश्य समन्वित रहते हैं। कथावस्तु व्यापक, मर्मस्पर्शी स्थानों से युक्त और भावपूर्ण होती है। इनमें रससिद्ध महाकाव्य, पौराणिक महाकाव्य और रोमांचक या कथात्मक महाकाव्य के लक्षणों का समन्वय होता है।¹

प्राकृत चरित काव्य :

प्राकृत चरितों की कथावस्तु राम, कृष्ण तीर्थंकर या अन्य महापुरुष के जीवन तथ्यों को लेकर निबद्ध की गई है। 'तिलोपपण्णती' में चरित काव्यों के प्रचुर उपकरण वर्तमान हैं। 'कल्पसूत्र' एवं जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण के 'विशेषावश्यक भाष्य' में चरित काव्यों के अर्द्धविकसित रूप उपलब्ध हैं।

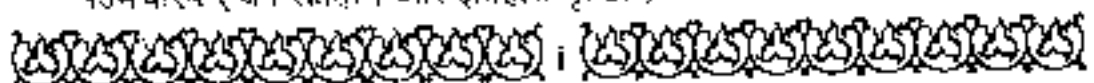
प्राकृत में सर्वप्रथम धिमलसूरि ने पठमचरिय की रचना की। ग्रन्थ में इसका रचनाकाल वीर नि. सं. 530 या वि. सं. 60 उल्लिखित है।² विद्वानों में इसके रचना काल के विषय में विवाद है। डॉ. हर्मन जेकोबी उसकी भाषा और रचना

1 डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री: संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ. 19

2 पंचेव वासवा दुसभाए तीसवरस संजुता ।

वीरे सिद्धिभुवगए तओ निवद्धं इमं चरियं ॥

पठमचरियं (जैन साहित्य और इतिहास पृ. 87)



शैली पर से अनुमान करते हैं कि वह ईसा की तीसरी चौथी शताब्दी की रचना है।³ डॉ. कीथ⁴, डॉ. बुलनर⁵ आदि इसे ईसा की तीसरी शताब्दी के लगभग की या उसके बाद की रचना मानते हैं; क्योंकि उसमें दोनार शब्द का और ज्योतिष शास्त्र सम्बन्धी कुछ ग्रीक शब्दों का उपयोग किया गया है। डॉ. च. केशवराव ध्रुव उसे और भी अर्वाचीन मानते हैं। इस ग्रन्थ के प्रत्येक उद्देश के अन्त में जो गहिणी, शरभ आदि छन्दों का उपयोग किया गया है, वह उनकी समझ में अर्वाचीन हैं। गीति में यमक और सगन्ति विमल शब्द का आना भी उनकी दृष्टि में अर्वाचीनता का द्योतक है।⁶ डॉ. दिनरम्बिल डॉ. तायमन आदि विद्वान वीर⁷ नि० सं. 530 को ही पडमचरिय का रचनाकाल मानते हैं।⁸ पडमचरिय रामकथा से सम्बद्ध सर्वप्रथम प्राकृत काव्य है। संस्कृत साहित्य में जो स्थान 'वाल्मीकि रामायण' का है, वही प्राकृत में 'पडमचरिय' का है। इसकी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है। विमलसूरि ने 'हरिवंशचरिय' भी लिखा था, जो अनुपलब्ध है। लगभग 11 वीं शताब्दी विक्रमी में लिखा हुआ 'जम्बूचरिय' जम्बूस्वामी के विषय में लिखा गया सुन्दर काव्य है। इसकी रचना नाइलागच्छीय वीरभद्रमुनि के शिष्य गुणपाल मुनि ने की। ग्रन्थ पर 'समराइच्छकहा' और 'कुवलयमाला' का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

धनेश्वर सूरि ने विक्रम संवत् 1095 की भाद्र पद कृष्ण द्वितीया को धनिष्ठा नक्षत्र में 'सुरसुन्दरी चरिय' काव्य की रचना की। यह एक प्रेमाख्यानक चरित काव्य है। इसमें 16 परिच्छेद हैं और प्रत्येक परिच्छेद में 250 पद्य हैं। कवि ने इस काव्य में जीवन के विविध पहलुओं के चित्रण के साथ प्रेम, विराग और पारस्परिक सहयोग का पूर्णतया विश्लेषण किया है। विक्रम सं. 1129 में 'आख्यानमणिकोश' के रचयिता नेमिचन्द्र ने "खणचूडराथ चरिय" की रचना की। इसमें देवपूजा और सम्यक्त्व आदि धर्मों का निरूपण है। यह संस्कृत से प्रभावित है, इसकी काव्य छटा दर्शनीय है।

3 एनाइक्लोपीडिया आफ रिन्सिजन एण्ड इथिक्स, भाग 7, पृ. 437 और मोडर्न रिन्सिजस, 1914 ई.

4 संस्कृत साहित्य का इतिहास (कांथ)

5 Introduction to Prakrit.

6 जैन साहित्य और इतिहास पृ. 91

7 वही पृ. 91



विक्रम सं. 1168 में गुणभद्रसूरि ने "पासणाहचरिय" की रचना की। प्राकृत गद्य-पद्य में लिखी गई इस रचना में समासान्त पदावलि और छन्द की विविधता देखने में आती है। पार्श्वनाथ के सम्पूर्ण चरित्र को इसमें निबद्ध किया गया है। गुणचन्द्रगणि ने वि. सं. 1139 में "महावीर चरिय" भी लिखा था। यह 12025 श्लोक प्रमाण है। इसमें आठ प्रस्ताव हैं, जिनमें से आधे भाग में भगवान महावीर के पूर्वभवों का वर्णन है, शेष में वर्तमान जीवन का वर्णन है।

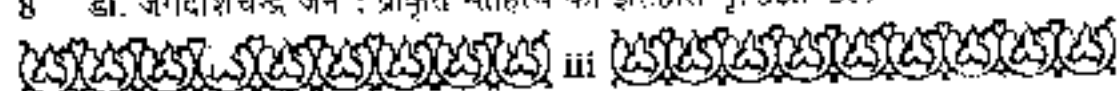
अभयदेवसूरि के शिष्य श्री चन्द्रप्रभ महत्तर ने वि. सं. 1127 में "सिरिजयचंद केवलचरिय" की रचना की। इस चरिय काव्य का उद्देश्य जिनपूजा का भाहात्म्य प्रकट करना है। इसमें अष्टद्रव्यों से पूजा किए जाने का उल्लेख है। प्रत्येक द्रव्य से पृथक्-पृथक् पूजा का फल बतलाने के लिए कथानकों का प्रणयन किया गया है।

विक्रम सं. 1199 में माघशुक्ल दशमी गुरुवार को पूर्णता को प्राप्त "सुपासनाहचरिय" भगवान सुपाश्वनाथ पर लिखित एक सुन्दर काव्य है। इसके रचयिता लक्ष्मण गणि हैं। उन्होंने आठ हजार गाथाओं में इसकी रचना पूर्ण की। समस्त काव्य तीन भागों में विभक्त है। पूर्वभव प्रस्ताव में सुपाश्वनाथ के पूर्वभवों का वर्णन किया गया है और शेष प्रस्तावों में उनके वर्तमान जीवन का वर्णन है।

1270 ई. के लगभग हुए श्री देवेन्द्रसूरि ने "सुदंसण चरिय" काव्य लिखा। इस में चार हजार पद्य हैं, जो कि आठ अधिकार और सोलह उद्देशों में विभक्त हैं। ग्रन्थ का नाम नायिका के नाम पर है।

1513 ई. में जिनमाणिक्य अथवा उनके शिष्य अनन्त हंस ने "कुम्मापुल्लचरिय" की रचना की। इसमें 198 प्राकृत पद्यों में कूर्मापुत्रचरित है।

उक्त काव्यों के अतिरिक्त चन्द्रप्रभमहत्तर (1070ई.) द्वारा रचित "चन्दकेवली चरिय", वर्द्धमान सूरि (1083ई.) द्वारा रचित 'मनोरमाचरिय' तथा 'आदिनाहचरिय', देवचन्द्रसूरि द्वारा रचित "संतिनाहचरिय, शान्तिसूरि (1104ई.) कृत 'पुहवचन्दचरिय', मलधारी हेमचन्द्र कृत 'नेमिनाहचरिय', श्रीचन्द्र (1135ई.) कृत 'मुणिसुव्वयसामिचरिय' देवेन्द्र सूरि के शिष्य श्रीचन्द्रसूरि (1157ई.) कृत 'सणयकुमारचरिय', हरिभद्र कृत 'चन्दणहचरिय', 'मल्लिनाहचरिय' तथा 'नेमिनाहचरिय', सोमप्रभसूरि कृत 'सुमतिनाहचरिय' तथा मुनिभद्र (1353ई.) कृत 'संतिनाहचरिय' तथा नेमिचन्द्रसूरिकृत 'अनन्तनाहचरिय' प्रमुख प्राकृत चरित काव्य हैं।⁸



संस्कृत चरित काव्य :

संस्कृत में जैन चरित काव्य लिखने का आरम्भ सबसे पहले आचार्य रविषेण ने किया। इन्होंने “पद्मचरित” की रचना 667 ई. में पूर्ण की। यह 18000 अनुष्टुप् श्लोक प्रमाण है और संस्कृत जैन कथा साहित्य सम्बन्धी प्रारम्भिक जैन रचना है। इसमें पद्म (राम) की कथा निबद्ध है। रामकथा सम्बन्धी यह सबसे प्रारम्भिक संस्कृत जैन रचना है। इसकी कथावस्तु 123 पर्वों में विभक्त है। सर्वप्रथम पं. दौलतराम जी ने इसका हिन्दी गद्यानुवाद किया था। इस अनुवाद को पढ़कर या सुनकर अनेक अजैनों ने जैनधर्म अपना लिया और जैनधर्म की बड़ी प्रभावना की।

सातवीं आठवीं सताब्दी के सन्धिखाल में उत्तराखण्ड नन्दि ने “परमेश्वरचरित” की रचना की। इसमें श्रीकृष्ण के समकालीन राजकुमार वरांग का जीवन संस्कृत पद्यों में सरल भाषा में निबद्ध किया गया है। इसमें 31 सर्ग हैं। बीच-बीच में धर्म तत्त्व का वर्णन है।

898 ई. में उत्तरपुराण के कर्ता आचार्य गुणभद्र ने नवसर्गात्मक “जिनदत्तचरित” की रचना की। जिनदत्त अंगदेश के वसन्तपुर नगर के निवासी सेठ जीवदेव के पुत्र थे। इनका चरित्र इसमें निबद्ध है।

950-999 ई. में हुए आचार्य वीरनन्दि ने “चन्द्रप्रभचरित” की रचना की। इसमें जैनधर्म के आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभका चरित निबद्ध है। इसकी काव्यशैली प्रौढ़ है और काव्यरसिकों तथा विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित करती है।

लाटवागड़ संघ के आचार्य महासेन ने 947 ई. में “प्रद्युम्नचरित” की रचना की। इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का चरित निबद्ध है। काव्य 14 सर्गों में पूर्ण हुआ है।

महाकवि असग ने ‘वर्द्धमानचरित’ और ‘शान्तिनाथ चरित’ नामक महाकाव्यों की रचना की। इन्होंने 988 ई. में ‘वर्द्धमानचरित’ की रचना पूर्ण की। इसका कथानक भगवान् महावीर सम्बन्धी है। ‘शान्तिनाथचरित’ में भगवान् शान्तिनाथ का जीवन चरित्र वर्णित है।

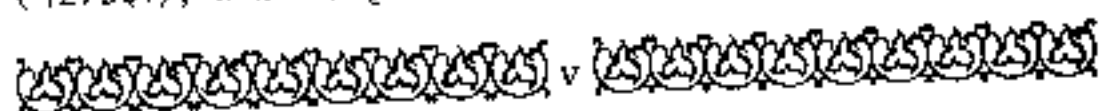
1025 ई. में वादिराज सूरि ने ‘पार्श्वनाथचरित’ की रचना की। वादिराज सूरि प्रसिद्ध तार्किक और कवि थे। न्याय एवं दर्शन सम्बन्धी उनकी प्रौढ़ता का दिग्दर्शन कराने में ‘न्यायविनिश्चय विवरण’ एवं ‘प्रमाण निर्णय’ पूरी तरह समर्थ हैं। वादिराज का ‘पार्श्वनाथचरित’ भगवान् पार्श्वनाथ के समग्र जीवन पर विस्तृत

रूप से लिखा गया प्रथम महाकाव्य है। उनके द्वारा लिखा गया एक अन्य ग्रन्थ 'यशोधरचरित' आगामी जैन कथा लेखकों एवम् श्रोताओं का कण्ठहार बन गया है।

वादिराज सूरि के समसामयिक आचार्य मल्लिवेण ने 'नागकुमारचरित' की रचना की। इसकी रचना पाँच सर्गों में हुई। इसमें श्रुतपञ्चमी का माहात्म्य दिखलाया गया है।

विक्रम सं. 1216-1228 में आचार्य हेमचन्द्र ने 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' की रचना की। इसमें जैनधर्म के 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण तथा 9 प्रतिनारायण; इन 63 शलाकापुरुषों के जीवन का वर्णन किया गया है। श्वेताम्बर परम्परा में यह बहुत लोकप्रिय है। हेमचन्द्राचार्य ने जैन राजा कुमारपाल पर भी एक काव्य लिखा, जिसे 'द्वयात्रय काव्य' या 'कुमारपाल चरित' कहते हैं। इसमें 18 सर्ग हैं, जिनमें 10 संस्कृत भाषा में और 8 प्राकृत में हैं।

उपर्युक्त काव्यों के अतिरिक्त जैन परम्परा में संस्कृत में अन्य अनेक चरितकाव्य लिखे गए, जिनमें संवत् 1216 में नेमिचन्द्र रचित 'धर्मनाथचरित', गुणभद्रमुनि (12वीं शताब्दी ई.) रचित 'धन्यकुमार चरित', मुनिरत्नसूरि कृत अभय 'स्वामिचरित' (1195ई.), देवप्रभसूरि (12-13वीं शताब्दी) कृत 'पाण्डवचरित' और 'मृगावतीचरित', जिनपाल उपाध्याय (13वीं शताब्दी) कृत 'सदत्कुमारचरित', भाणिक्यचन्द्रसूरि विरचित 'पार्श्वनाथचरित' (1229ई.) तथा 'शान्तिनाथचरित', उदयप्रभसूरिविरचित 'संघमत्तिचरित' (1233ई.) अमरसूरि (13वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) कृत 'चतुर्विंशतिजिनेन्द्र चरित' तथा 'अम्बडचरित', पूर्णचन्द्र सूरि कृत 'धन्यशालिभद्रचरित' (1228 ई.) तथा 'अतिमुक्तक चरित', वल्लभमानसूरि कृत 'वासुपूज्यचरित' (1282 ई.) अहंदास कवि (तेरहवीं शताब्दी ई.) विरचित 'मुनि सुव्रतचरित', अजितप्रभसूरि कृत 'शान्तिनाथचरित' (1250ई.) लक्ष्मीतिलक गणि कृत 'प्रत्येकबुद्धचरित' (1254 ई.) चन्द्रतिलक उपाध्याय कृत 'अभयकुमारचरित' (1555ई.) विनयचन्द्र सूरि (1229-1288ई.) कृत 'मल्लिनाथचरित' तथा 'पार्श्वनाथचरित', सर्वानन्द सूरि (13वीं शताब्दी) कृत 'पार्श्वनाथचरित', 'चन्द्रप्रभ-चरित' तथा 'जगडुचरित', मुनिदेव सूरि कृत 'शान्तिनाथ चरित' (वि. सं. 1322) मानतुंगसूरि कृत श्रेयांसनाथचरित (1275ई.), प्रभाचन्द्र कृत 'प्रभावक चरित' (1277ई.), जिनप्रभसूरिकृत



'श्रेणिकचरित' (1298ई.) रामचन्द्र मुमुक्षु कृत 'शान्तिनाथ चरित', धर्मकुमार
 कृत 'शालिभद्र चरित' (1277ई.), देवेन्द्रसूरि (तेरहवीं शताब्दी ई.) कृत
 'श्रेणिकचरित', विक्रम (13वीं शती) कृत 'नेमिचरित', कमलप्रभसूरि कृत
 'पुण्डरीकचरित' (1315ई.), मेरुतुंग सूरि (14 वीं शताब्दी), कृत
 'महापुरुषचरित', 'कामदेवचरित' तथा 'संभवनाथचरित', मुनिभद्रसूरि कृत
 'शान्तिनाथचरित' (1353 ई.), भावदेवसूरिकृत 'पार्श्वनाथचरित' (वि. सं.
 1412), कीर्तिराज उपाध्याय कृत 'नेमिनाथ चरित्र' (1358ई.), वर्द्धमान
 भट्टारक (14 वीं 15 वीं सदी) कृत 'वरांगचरित', जयसिंहसूरि कृत
 'कुमारपालचरित' (1265ई.), पद्मनन्दि (14 वीं शताब्दी) कृत 'वर्द्धमान
 चरित', भद्रगुप्त कृत 'धन्यशालिभद्रचरित' (1371ई.), जय शेखरसूरि कृत
 'जम्बू स्वामिचरित' (1381ई.), जयतिलसूरि कृत 'मलयसुन्दरीचरित',
 'हरिविक्रमचरित' तथा 'सुलसाचरित्र' वाग्भट्ट कृत 'ऋषभदेवचरित', जयानन्द
 सूरि (14वीं सदी ई.) कृत 'रघूदत्तचरित', भट्टारक सत्त्वराजकीर्ति (1393-
 1453 ई.) विरचित 'शान्तिनाथचरित', 'वीर वर्द्धमानचरित', 'ऋषभदेवचरित',
 'धन्यकुमारचरित', 'सुकुमालचरित', 'सुदर्शनचरित', 'श्रीपालचरित' तथा
 'मल्लिनाथचरित', माणिक्यचन्द्र सूरि कृत 'श्रीधरचरित' (1406ई.), ब्रह्मजिनदास
 (15वीं शताब्दी का प्रारम्भ) कृत 'जम्बूस्वामिचरित' तथा 'रामचरित', मुनि
 सुन्दरसूरि कृत 'जयानन्द केवलिचरित' (1421-1446 ई.), चारित्रसुन्दरगणि
 कृत 'महीपालचरित' तथा 'कुमारपालचरित', रामचन्द्र कृत 'विक्रमचरित्र'
 (1433ई.), जयसागर कृत 'पृथ्वी चन्द्रचरित' (1446 ई.) जयानन्दकृत
 'धन्यकुमारचरित' (1453ई.) तथा 'स्थूलभद्रचरित', राजवल्लभ (15वीं
 शताब्दी) कृत भोजचरित्र, 'चित्रसेन पद्मावती चरित्र', शीलसिंहगणि कृत
 'श्रीचन्द्रकेवलिचरित' (1437ई.), जिनहर्षगणि कृत 'वस्तुपालचरित्र'
 (1440ई.) धर्मधर कृत 'नागकुमारचरित' (1454ई.) तथा 'श्रीपालचरित',
 विद्यानन्दि (1432-1481) कृत 'सुदर्शनचरित', सत्त्वराज गणि कृत
 'पृथिवीचन्द्रचरित' (वि.सं. 1535) तथा 'श्रीपालचरित', भुवनकीर्ति (1451-
 1470ई.) कृत 'अंजनाचरित', ज्ञानसागर कृत 'विमलनाथचरित' (1459ई.),
 इन्द्रहंसगणि कृत 'भुवनभानुचरित्र' (1497ई.), सोमकीर्ति (1469-1493ई.)
 कृत 'प्रद्युम्नचरित', 'वशोधरचरित' तथा 'सप्तव्यसनचरित्र', भावचन्द्रसूरि कृत
 'शान्तिनाथचरित' (1478ई.) श्रुतसागर सूरि (15वीं शताब्दी) कृत

‘यशोधरचरित’ तथा ‘श्रीपालचरित’, ब्रह्मअर्जित (15वीं शताब्दी) कृत ‘हनुमाच्चरित’, लब्धिसागर कृत पृथिवी चन्द्रचरित (वि.सं.1558) रत्न कीर्ति (15-16वीं शताब्दी) कृत ‘भद्रबाहुचरित’, ब्रह्मनेमिदत्त कृत ‘श्रीपालचरित’ (1528 ई.), ‘धन्यकुमारचरित’ तथा ‘प्रोत्तिकंर महामुनिचरित’, भट्टारक शुभचन्द्र (1535-1556 ई.) कृत ‘चन्द्रप्रभचरित’, ‘करकण्डुचरित’, ‘चन्दनचरित’, ‘जीवन्मरचरित’ तथा ‘श्रेणिकचरित’, पं. जिनदास कृत ‘होलिरेणुकाचरित’ (1551ई.), विनयसागर गणिकृत ‘शालिभद्रचरित’ (1566ई.), कवि राजमल्ल कृत ‘जम्बूस्वामी चरित’ (1575ई.) हेमविजयकृत ‘पार्श्वनाथचरित’, रत्नसागर गणिकृत ‘साम्ब प्रद्युम्न चरित’ (1588ई.), विद्या भूषण भट्टारक कृत ‘जम्बूस्वामिचरित’ (1596ई.), पदमसुन्दरकृत ‘भविष्यदत्त चरित’ (1557ई.) तथा ‘पार्श्वनाथचरित’, उदयवीरगणि कृत ‘पार्श्वनाथचरित’, चारुचन्द्र (16वीं शताब्दी) कृत ‘उत्तमकुमारचरित’, भट्टारक वादिचन्द्र (1580-1607ई.) कृत ‘सुलोचना-चरित’ तथा ‘यशोधरचरित’, दीडचूय (16वीं शताब्दी) कृत ‘भुजबलिचरित’, देव-विजयगणि कृत ‘पाण्डवचरित’ (वि. सं. 1660) तथा ‘रामचरित्र’, गुणविजयगणि कृत ‘नेमिनाथचरित’ (1611ई.), रत्नचन्द्रगणि कृत ‘प्रद्युम्नचरित’ (1617ई.) ब्र. कामराज (17वीं शती) कृत ‘जयकुमारचरित’, ज्ञानविमलसूरि कृत ‘श्रीपालचरित’ (1688ई.), जगन्नाथ (17वीं शती) कृत ‘सुषेणचरित’, विश्वभूषण भट्टारक (अठ्ठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) कृत ‘भक्तामरचरित’, रूपचन्द्रगणि (1795 ई.) कृत ‘गौतमचरित’, रूपविजयगणि कृत ‘पृथिवीचन्द्रचरित’ (1825 ई.) तथा ज्ञानसागर महाराज (जन्म 1891 ई.) कृत समुद्रदत्तचरित, तथा महावीरचरित (बोरोदय काव्य) प्रमुख हैं। कुछ चरित्रनामान्त ऐसे काव्य भी मिलते हैं, जिनका काल अज्ञात है। इनमें ऋद्धिचन्द्र कृत ‘मृगाङ्कचरित’, हर्ष कुन्जर उपाध्याय कृत ‘सुमित्रचरित्र’ शुभवर्द्धनगणिकृत ‘पाण्डवचरित्र’, हर्षवर्द्धनगणिकृत ‘सदय वत्सचरित्र’, जिनसूरि कृत ‘रूपसेनचरित्र’ त्रैलोक्य सागर कृत ‘रत्नसरचरित्र’, मतिवर्द्धनगणिकृत ‘समरादित्य चरित्र’ तथा वत्सराज मुनि विरचित ‘शान्तिनाथ चरित्र’ के नाम आते हैं।⁹

9 चरितकाव्यों के विशेष विवरण के लिए देखिए (1) डॉ. जयकुमार जैन द्वारा लिखित पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन (2) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग 5 (3) भगवान् महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (4) भट्टारक सम्प्रदाय आदि।



अपभ्रंश चरित काव्य :

पठमचरित, रिट्टणेमिचरित, सोद्धयचरित, पंचमिचरित

अपभ्रंश का प्रथम महाकवि होने का श्रेय स्वयम्भू को प्राप्त है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जैसे महारथियों ने स्वयम्भू को हिन्दी का प्रथम महाकवि एवं उनके 'पठमचरित' को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य स्वीकार किया है। उनके अनुसार संस्कृत काव्य गगन में जो स्थान कालिदास का है, हिन्दी में तुलसी जिस स्थान पर हैं, प्राकृत में जो स्थान "हाल" ने प्राप्त किया, अपभ्रंश के सारे काल में 'स्वयम्भू' वही स्थान रखते हैं।¹⁰ महाकवि स्वयम्भू ने छः कृतियों को लिखने का गौरव प्राप्त किया, लेकिन अभी तक 'पठमचरित', 'रिट्टणेमिचरित' एवं 'स्वयम्भू छन्द' वे तीन रचनायें ही प्राप्त हो सकी हैं और 'सोद्धयचरित', 'पंचमिचरित' एवं 'स्वयम्भू' व्याकरण जैसी कृतियाँ अभी तक अनुपलब्ध हैं। 'पठमचरित' रामकथा पर आधारित श्रेष्ठ महाकाव्य है, जो 90 सन्धियों में पूर्ण होता है। इनमें से 83 संधियाँ स्वयं स्वयम्भू द्वारा तथा शेष 7 उसके पुत्र त्रिभुवन स्वयम्भू द्वारा निबद्ध हैं। 'रिट्टणेमिचरित' 'हरिवंशपुराण' के नाम से प्रसिद्ध है। यह 112 संधियों में पूर्ण होता है। इस महाकाव्य का 18000 श्लोक प्रमाण आकार है। इस काव्य में 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ, श्रीकृष्ण एवं पाण्डवों का वर्णन मिलता है।¹¹ स्वयम्भू का काल 8 वीं शताब्दी ई. माना जाता है।

णायकुमार चरित तथा जसहरचरित :

अपभ्रंश भाषा के सन्दर्भ में महाकवि पुषपदन्त (10वीं शताब्दी ई.) का स्थान महाकवि स्वयम्भू के समान प्रमुख है। इन्होंने 'महापुराण', 'णायकुमारचरित' एवं 'जसहरचरित' की रचना कर अपभ्रंश भाषा के इतिहास में अपना अमर स्थान बनाया है। 'णायकुमारचरित' में नव सन्धियों में श्रुतपञ्चमी का माहात्म्य बतलाने के लिए नागकुमार का चरित वर्णित है। 'जसहरचरित' में यशोधर की कथा के माध्यम से जीव-बलि का विरोध किया गया है।

पासणाहचरित :

शक संवत् 999 में पद्मकीर्ति ने भगवान् पाशनाथ की कथा को आधार बनाकर 'पासणाहचरित' की रचना की। इस काव्य में महाकाव्य के सभी लक्षण

10 अ. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ पृ. 413

11 जैनविद्या (स्वयम्भू विशेषाङ्क) पृ. 19-20

विद्यमान हैं। कवि ने काव्य को 18 सन्धियों में विभक्त किया है। संधि कडवकों में विभक्त हैं। प्रत्येक संधि में कडवकों की संख्या भिन्न है। समूचे ग्रन्थ में 315 कडवक हैं। 'पासणाहचरित' का प्रधान रस शान्त है। 11वीं और 12वीं संधियों को छोड़कर शेष में से प्रत्येक सन्धि में मुनि की शान्त तपस्या, आत्मोत्सर्ग का उपदेश तथा मुनि और श्रावकों के शुद्ध चरित्रों का विस्तृत वर्णन है। ग्रन्थ की अन्तिम चार संधियों में पार्श्वनाथ की पवित्र जीवनचर्या एवं ज्ञानमय उपदेशों से केवल शान्तरस की ही निष्पत्ति हुई है।

जम्बूसामिचरित :

वीर कवि ने अपनी रचना "जम्बूसामिचरित" की समाप्ति वि. सं. 1076 में की थी, जम्बू स्वामी इस काल के अन्तिम केवली थे एवं उन्होंने महावीर निर्वाण के 64 वर्ष पश्चात् 463ई. पूर्व में निर्वाण प्राप्त किया था। जम्बूस्वामी की कथा अत्यन्त रोचक है। यही कारण है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं में उन पर 100 से अधिक ग्रन्थ रचे गए। महाकवि वीर ने भी एक वर्ष में जम्बूस्वामी की ही आधार बनाकर अपना काव्य रचा। इसमें यह कहा गया है कि मनुष्य जो कुछ होता है, अपनी अतीत की घटनाओं का फल होता है। धार्मिक अनुष्ठान से वह अपने भविष्य को संज्ञा रखता है और वर्णमान धर्म संगमित रखने में समर्थ होता है। इस प्रकार समूची कथा प्रतीक रूप में गृहीत है।¹²

करकंडचरित :

ग्यारहवीं शती के मध्य भाग में मुनि कनकामर ने 'करकंडचरित' की रचना की। इसमें कलिंग के राजकुमार करकण्डु का जीवन चरित निबद्ध किया गया है। करकण्डु भगवान् पार्श्वनाथ के तीर्थ में हुए थे। बौद्ध इन्हें महात्मा बुद्ध से पूर्व हुए स्वीकार करते हैं। इसमें एक कथा के अन्तर्गत कई कथाएँ वर्णित हैं।

सुदसंघचरित :

कविवर नयनन्दि ने संवत् 1100 में सुदसंघचरित की रचना की। इसमें पंच नमस्कार मन्त्र के माहात्म्य स्वरूप सेठ सुदशन की कथा का वर्णन है। घटनाओं की योजना प्रसंगतः धार्मिक, स्वाभाविक तथा प्रभावोत्पादक है। यद्यपि इसकी बाह्य रचना अलंकृत एवं शास्त्रीय प्रतीत होती है, किन्तु अन्तरंग में भाषा और शैली की मधुरता तथा लोकजीवन का पूरा पुट मिलता है। श्लिष्ट तथा अलंकृत

शैली में जहाँ कवि एक ओर बाणभट्ट के निकट दिखाई देता है। वहीं लोकजीवन के यथार्थ चित्रण में स्वयम्भू का स्मरण हो जाता है।¹³

पद्मसिरीचरित :

कवि धाहिल विरचित 'पद्मसिरीचरित' (पद्मश्रीचरित) चार सन्धियों की रचना है। यद्यपि कवि ने इसे धर्मकथा कहा है, किन्तु यह एक प्रेम कथा काव्य है, जिसमें अमुद्रदत्त और पद्मश्री के प्रेम व्यापारों का सुन्दर वर्णन है। रचना छोटी होने पर भी काव्यात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भावानुभावों का बहुत ही सुन्दर चित्रण इस काव्य में हुआ है। वस्तुवर्णन अलंकृत होने पर भी ग्वाभाविक है। लोकजीवन की झलक भी इसमें मिलती है। वर्णन विस्तृत तथा मधुर है।¹⁴ पद्मसिरीचरित की हस्त लिखित प्रति सं. 1191 विक्रम की लिखित मिलती है। अतः उसके पहले धाहिल का समय निश्चित है।¹⁵

सुकुमालचरित :

महाकवि श्रीधर ने 'सुकुमालचरित', 'पासणाहचरित' और 'भविसयत्तचरित' ये तीन अपभ्रंश रचनाएँ कीं। 'सुकुमालचरित' की रचना अगहण कृष्ण तृतीया चन्द्रवार विक्रम सं. 1208 में हुई। सुकुमालचरित में छः सन्धियाँ हैं। इसमें सुकुमाल स्वामी के पूर्व जन्मों की कथा दी है। पासणाहचरित में 12 सन्धियाँ हैं और परम्परा से प्रसिद्ध कथा के आधार पर ही तीर्थंकर की कथा कवि ने प्रस्तुत की है।

भविसयत्तचरित :

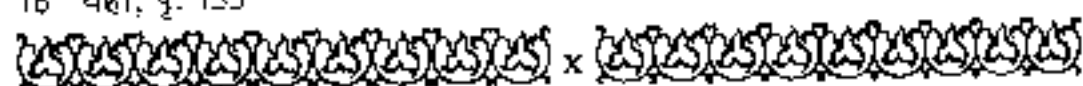
भविसयत्तचरित में श्रुतपञ्चमी व्रत के फल को प्रकट करने के लिए कवि ने भविष्यदत्त की प्रसिद्ध कथा उपस्थित की है। जिसमें कथा की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं है। भाषा, छन्द, शैली सब कुछ अपभ्रंश के अन्य जैन चरित काव्यों के समान है।¹⁶

13 डॉ. देवेन्द्र कुमार शारत्री : भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथाकाव्य पृ. 330

14 डॉ. देवेन्द्रकुमार शारत्री : भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथाकाव्य, पृ. 333

15 प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी पर प्रभाव (राम सिंह तोमर) पृ. 132

16 वही, पृ. 133



सुलोचनाचरित :

प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के पुत्र भरत के सेनापति जयकुमार की पत्नी सुलोचना के चरित का लेकर देवसेन ने सुलोचनाचरित की 23 सन्धियों में रचना की। कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों में पुण्यदन्त का भी उल्लेख किया है। अतः ये पुण्यदन्त के बाद और 1315 ई. से पूर्व ही किसी समय उत्पन्न हुए माने जा सकते हैं।

पञ्जुणचरित :

'पञ्जुणचरित' सिंह विरचित 15 सन्धियों का अप्रकाशित काव्य है। इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का चरित्र ग्रथित है। प्रो. हीरालाल जैन ने ग्रन्थ का काल ईसा की 12 वीं सदी का पूर्वार्द्ध माना है।¹⁷

गेमिणाहचरित :

श्वेताम्बर आचार्य हरिभद्रसूरि ने 'गेमिणाहचरित' की रचना की उसी का एक अंश डॉ. हर्मान जैकोबी ने जर्मनी से 'सनत्कुमारचरित' के नाम से प्रकाशित किया है। कवि ने ग्रंथरचना अणाहल पाटल पत्तन में वि.सं. 1216 में की थी कृति की भाषा प्राचीन गुज्जती के चिह्नों से युक्त गुर्जर अपभ्रंश है।

जिनदत्तचरित :

जिनदत्त की कथा को आधार बनाकर कविवर लाखू ने 'जिनदत्तचरित' की रचना की। इसमें श्रीमती और जिनदत्त के प्रेम की परीक्षा होती है और दोनों अपने प्रेम में दृढ़ रहते हैं तथा अन्त में मिलते हैं। कवि पुया वंशोद्भूत सिरिधर धामु विरदा के पुत्र थे। इन्होंने विह्वरामपुर में कृति की रचना वि. सं. 1275 में की थी।¹⁸

गेमिणाहचरित :

कवि लक्ष्मण ने बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ को लेकर 'गेमिणाहचरित' की रचना की। इस कृति में धर्म और उपदेश के उपकरणों के साथ नगरों के वर्णन, राजमती के वियोग वर्णन में काव्य की पर्याप्त झलक मिलती है। प्रत्येक सन्धि की पुष्पिका में कवि ने अपने को रयण (रत्न) का पुत्र कहा है।¹⁹ इस ग्रन्थ की

17 हरिवंश कोछड़ : अपभ्रंश साहित्य पृ. 221, 222

18 प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 145-146

19 वही पृ. 148-149

हस्त लिखित प्रति वि.सं. 1510 की लिखी उपलब्ध हुई है। अतः ग्रन्थ रचना इससे पूर्व अवश्य हुई।

बाहुबलिचरित :

18 सन्धियों में समाप्त बाहुबलिचरित धनपाल की महत्वपूर्ण कृति है। इसमें प्रथम कामदेव बाहुबलि का चरित्र ग्रथित है। कृति की रचना कवि ने गुर्जर देशान्तर्गत चन्दवाड नगर के राजा सारंग के मन्त्री यदुवंशी वासाहर की प्रेरणा से की थी और उन्हीं को कृति समर्पित की है। कृति वैशाख शुक्ल त्रयोदशी सोमवार स्वाति नक्षत्र सं. 1454 विक्रमी में समाप्त हुई²⁰

चंदप्पहचरित :

ग्यारह सन्धियों में विभक्त "चंदप्पहचरित" यशः कीर्ति की रचना है। इसमें कवि ने भगवान चन्द्रप्रभ के चरित्र का वर्णन किया है। कृति में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता है। कहीं-कहीं कुछ काव्यात्मक स्थल भी मिल जाते हैं।

महाकवि रङ्गू के चरित काव्य :

महाकवि रङ्गू ने अनेक रचनाओं का प्रणयन किया। इनमें से बलहृदचरित, मेहेसरचरित, जसहरचरित, पञ्जुणचरित, करकण्डचरित, सावयचरित, सुकोसलचरित, पासणाहचरित, सम्मदइजिणचरित, सुदंसणचरित, घण्णकुमारचरित, अरिट्ठणेमिचरित, जीमंधरचरित तथा संतिणाहचरित नामक चरित काव्य प्रसिद्ध हैं। इनमें से पञ्जुणचरित, सुदंसणचरित तथा करकण्डचरित अनुपलब्ध हैं।

संतिणाहचरित :

कवि महिन्दु ने संतिणाहचरित की रचना की। यह योगिनीपुर (दिल्ली) में बादशाह बाबर के राज्यकाल में वि.सं. 1587 ई. में हुई। इसमें चोपाई, सोरठा आदि छन्दों का प्रयोग कवि ने किया है²¹

सिरिवालचरित :

नरसेन विरचित सिरिवालचरित 82 कंडवकों की एक सुन्दर प्रेमकथा है। आत्मविश्वास, दृढ़ साहसी, धार्मिक तथा अनेक गुणों से युक्त श्रीपाल का चरित्र

20 प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 149-150

21 अनेकान्त वर्ष 5, किण्व 6-7, पृ. 153-156

कृति का मुख्य विषय है। सिरिवालचरित को एक हस्तलिखित प्रति 1512 वि. की लिखित मिलती है। अतः नरसेन विक्रम की पन्द्रहवीं शती के पीछे नहीं हो सकते।²²

णायकुमारचरित :

माणिक्यराज ने 'णायकुमार चरित' तथा 'अमरसेन चरित' की रचना की। 'णायकुमारचरित' में नौ सन्धियाँ हैं और पुष्पदन्त की कृति के समान कथा है, कोई परिवर्तन नहीं है। 'अमरसेन चरित' में सात सन्धियाँ हैं। 'णायकुमारचरित' की रचना सम्वत् 1579 वि. में हुई।²³

हरिसेण चरित :

किसी अज्ञात कवि द्वारा रचित हरिसेणचरित 4 सन्धियों में लिखा गया है। इसमें हरिषेण चक्रवर्ती की कथा निबद्ध है। इसकी हस्तलिखित प्रति सं. 1583 की है, अतः कृति का रचनाकाल इससे पूर्व होना चाहिए।²⁴

मयंगलेहाचरित :

भगवतीदास ने वि. सं. 1700 में 'भृगाङ्क लेखा चरित' की रचना की। ये अग्रवाल दिगम्बर जैन थे और दिल्ली के भट्टारक महेन्द्रसेन के शिष्य थे। ग्रन्थ में केवल 4 सन्धियाँ हैं। इसकी रचना घत्ता कडवक शैली में की गई है, किन्तु बीच-बीच में दोहा, सोरठा तथा गाय छन्द भी मिल जाते हैं।²⁵

उपर्युक्त काव्यों के अतिरिक्त अमरकीर्तिगणिकृत गेमिणाहचरित, सुलोचनाचरित तथा जसहरचरित, देवदत्त कृत पासणाहचरित, तेजपाल कृत समभवणाहचरित तथा वरागंचरित, मुनि पूर्णभद्र विरचित सुकुमालचरित, सागरदत्त सूरि विरचित जंबुसामिचरित, शुभकीर्ति कृत संतिणाहचरित, अमवाल कृत पासणाहचरित, अभयगणिकृत सुभद्राचरित, जिनप्रभसूरिकृत वज्रनाभिचरित, तेजपाल कृत पासचरित, श्रीधर कृत वड्ढमाणचरित तथा सुकुमालचरित एवं कवि ठाकुर कृत संतिणाहचरित प्रमुख अपभ्रंश चरित नामान्त कृतियाँ हैं।

22 रामसिंह तोमर : प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 161-162

23 राम सिंह तोमर : प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 163-165

24 वही पृ. 165-166

25 हरिवंश कोछड़ : अपभ्रंश साहित्य पृ. 244



प्रथम परिच्छेद

तीर्थंकर पार्श्वनाथ : तुलनात्मक अनुशीलन

तीर्थंकर विषयक मान्यता

जैनधर्म एक प्रागैतिहासिक एवं अनादि धर्म है। जैन परम्परा कालचक्र को मान्यता देती है। काल दो माने गए हैं एक अवसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी। एक काल में तीर्थंकरों की संख्या 24 होती है। धर्मतीर्थ के कर्त्ता को तीर्थंकर कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि तीर्थंकर ही केवलज्ञान की उत्पत्ति के बाद धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं। तीर्थङ्कर की उत्पत्ति का काल चतुर्थकाल ही निश्चित है। तीर्थ शब्द की अष्टांगानुकूल परिभाषा हमें इस प्रकार मिलती है :-

जो इस अपार संसार समुद्र से पार करे, उसे तीर्थ कहते हैं; ऐसा तीर्थ भगवान् जिनेन्द्रदेव का चरित्र ही होता है, अतः उसके कथन करने को तीर्थाख्यान कहते हैं।¹ 'तिलोयपण्णत्ति' में तीर्थङ्कर को समस्त लोकों का अधिपति (स्वामी) कहा गया है।²

वर्तमान काल के चौबीस तीर्थङ्करों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :-

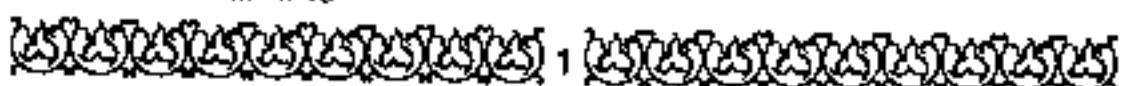
1. श्री ऋषभनाथ जी, 2. श्री अजित नाथ जी, 3. श्री संभवनाथ जी, 4. श्री अभिनन्दन नाथ जी, 5. श्री सुमतिनाथ जी, 6. श्री पद्मप्रभु जी, 7. श्री सुपार्श्वनाथ जी, 8. श्री चन्द्रप्रभु जी, 9. श्री पुष्पदन्त जी, 10. श्री शीतलनाथ जी, 11. श्री श्रेयांसनाथ जी, 12. श्री वासुपूज्य जी, 13. श्री विमलनाथ जी, 14. श्री अनन्तनाथ जी, 15. श्री धर्मनाथ जी, 16. श्री शान्तिनाथ जी, 17. श्री कुन्धुनाथ जी, 18. श्री अरहनाथ जी (श्री अरनाथ जी), 19. श्री मल्लिनाथ जी, 20. श्री मुनिसुव्रतनाथ जी, 21. श्री नमिनाथ जी, 22. श्री नेमिनाथ जी,

1 षट्खण्डागम, भाग 8, पृ. 9।

2 संसाराब्धेपारस्य तरणे तीर्थीमंष्यते ।

चेष्टितं जिननाथानां तस्योक्तिस्तीर्थसंकथः ॥ भगवज्जिनसेनाचार्य कृत आदि पुराण 4/8

3 तिलोयपण्णत्ती 1/48



23. श्री पार्श्वनाथ जी तथा 24. श्री महावीर जी। इस समय अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर का ही शासन चल रहा है।

23वें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ :

जैनधर्म के तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ थे। वे अपने अनुपम बाहुबल से रिपुवर्ग को सिद्ध (नष्ट) करने वाले माण्डलिक राजा हुए हैं।⁵ जैन तीर्थङ्करों में भगवान् पार्श्वनाथ का चरित सर्वसाधारण में लोकप्रिय रहा होगा, यही कारण है कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी के जैनकवियों ने भगवान् पार्श्वनाथ विषयक अनेक रचनाएँ लिखीं। भ. पार्श्वनाथ विषयक अनेक चरित काव्यों, समस्त सम्प्रदायों की विभिन्न मान्यताओं, ऐतिहासिक प्रमाणों आदि का अध्ययन करने पर उनके जीवन का जो विवरण प्रकाश में आता है, वह इस प्रकार है :-

भगवान् पार्श्वनाथ का गर्भावतरण :

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में काशी देश में वाराणसी नगरी स्थित है।⁶ वहाँ अश्वसेन नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम वामा देवी था। एक दिन रानी वामा देवी ने वैशाख कृष्ण द्वितीया के दिन विशाखा नक्षत्र में रात्रि के पिछले प्रहर में सोलह स्वप्न देखे, जिनका फल जानकर अश्वसेन ने बताया कि तुम्हारी कुक्षि से भावी तीर्थङ्कर जन्म लेगा। यह स्वप्नफल जानकर रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई और सुखों का उपभोग करने लगीं। इधर भव भ्रमण का विनाश करने वाली सोलह भावनाएँ भाकर, तीर्थङ्कर गोत्र को बाँधकर एवं वैजयन्त स्वर्ग में जो तेजोराशि वाला देव हुआ था, वही बत्तीस सागर

4 अ. ऋषभोऽजितनाथश्च संभवश्चाभिनन्दनः ।
सुपतिः पद्मभासश्च सुपाश्वः शशभूत्प्रभः ॥
सुबुद्धिः शीतलः श्रेयान् वासुपूज्योऽमलप्रभुः ।
अनन्तो धर्म शान्ती च कुन्सुदेवो महानरः ॥
मल्लिः सुव्रतनाथश्च नमिनेमिश्च तीर्थंकृत् ।
पार्श्वोऽयं पश्चिमो वीरो शासनं यस्य वर्तते ॥

- पद्मपुराणे विंशतितमं पर्व/श्लोक 8 से 10, पृ. 424

ब. द. तिलोयपण्णत्ती/यत्तिवृषभाचार्य 1/512-513 पृ. 206

5 तिलोयपण्णत्ती, हिन्दी टीका 4/606

6 वर्तमान में वाराणसी भारतवर्ष के उत्तरप्रदेश का एक प्रमुख जिला है जिसमें काशी भी सम्मिलित है।

की आयु भोगकर वैशाख कृष्ण द्वितीया के दिन वामा देवी के गर्भ में अवतरित हुआ।⁷

तिलोयपण्णत्ती में भगवान् पार्श्वनाथ को प्राणत कल्प से अवतरित माना गया है।⁸ उत्तरपुराण में भी अच्युतस्वर्ग में प्राणत विमान में इन्द्र होने का उल्लेख मिलता है।⁹ इस विषय में मतैक्य नहीं है।

भगवान् पार्श्वनाथ के माता-पिता :

भगवान् पार्श्वनाथ के माता-पिता के नामों के सम्बन्ध में आगम ग्रन्थों में समानता नहीं मिलती। 'तिलोयपण्णत्ती' में पार्श्वनाथ के पिता का नाम अश्वसेन और माता का नाम वर्मिला बताया गया है।¹⁰ श्वेताम्बर ग्रन्थ समवायांग¹¹ और आवश्यक निर्युक्ति¹² में पार्श्व के पिता का नाम "आससेण" तथा माता का नाम "वामा" बताया गया है। उत्तरपुराणकार ने पार्श्व के पिता का नाम "विश्वसेन" और माता का नाम "ब्राह्मी" बताया है।¹³ संस्कृत पार्श्वनाथ चरित के रचयिता श्री वादिराज ने पार्श्व के पिता के नाम के लिए तो उत्तरपुराण का ही अनुसरण किया किन्तु माता का नाम "ब्रह्मदत्ता" बताया है।¹⁴ महाकवि रङ्गधू ने पार्श्व के पिता का नाम अश्वसेन और माता का नाम वामा बताया है;¹⁵ किन्तु कहीं-कहीं हयसेन¹⁶ भी आया है। मेरी दृष्टि में "अश्व" और "हय" दोनों समानार्थी हैं अतः कोई भेद नहीं किया जा सकता। 'पद्मपुराण' में पार्श्व की माता का नाम वर्मा¹⁷ है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि "वर्मिला" या "वर्मा" शब्द "वामा" को संस्कृत में रूपान्तर करने का परिणाम है। आधुनिक लेखक अश्वसेन और वामा को ही मान्यता प्रदान करते हैं।

7 पासणाहचरित (रङ्गधू) 2/5

8 तिलोयपण्णत्ती 4/524

9 उत्तरपुराण 73/68

10 तिलोयपण्णत्ती 4/548

11 समवायांग 247

12 आवश्यक निर्युक्ति 388

13 उत्तरपुराण 73/74

14 श्री पार्श्वनाथ चरित (वादिराज) 9/95

15 पासणाहचरित (रङ्गधू) 1/10

16 वही 2/7

17 पद्मपुराणे विशंतितमं पर्व/59, पृ. 427



भ. पार्श्वनाथ का वंश :

महापुराण¹⁸ एवं तिलोयपण्णत्ति¹⁹ में भ. पार्श्वनाथ के वंश का नाम "उग्रवंश" बताया गया है। उत्तरपुराण²⁰ में पार्श्व के पिता को "काश्यपगोत्री" कहा गया है। 'आवश्यक निर्युक्ति' के सन्दर्भ में पार्श्व को काश्यप गोत्री माना जा सकता है, क्योंकि इस ग्रन्थ में मुनिसुव्रत तथा अरिष्ट नेमि तीर्थङ्करों को गौतम वंश का कहकर शेष सभी तीर्थङ्करों को "कासव-गुप्त" अर्थात् "काश्यपगोत्री" कहा गया है²¹ श्री देवसूरि ने सिरिपासनाह-चरियं में आससेण (पार्श्व के पिता) को "इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न" बताया है²² 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम्' में भ. पार्श्व के वंश का नाम इक्ष्वाकु ही मिलता है²³ चादिराज सूरि तथा रङ्गू ने पार्श्व के वंश का कोई कथन नहीं किया है। 'समवायांग' और 'कल्पसूत्र' भी इस विषय में मौन ही हैं।

भ. पार्श्व का जन्मस्थल :

भ. पार्श्वनाथ का जन्म किस नगर में हुआ था, इस बात पर दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के सभी लेखक एकमत हैं। सभी ने काशी देश की वाराणसी नगरी को ही इनका जन्म स्थल स्वीकार किया है। जम्बूद्वीप की जो दस राजधानियाँ थीं; वाराणसी उन्हीं में से एक थी²⁴ विशेष पुष्टि के लिए तिलोयपण्णत्ति²⁵, पद्मपुराण²⁶, समवायांग²⁷, उत्तरपुराण²⁸, पासणाहचरिउ²⁹ आदि देखे जा सकते हैं। आज भी वाराणसी भ. पार्श्व के जन्म स्थान के रूप में पूजी जाती है।

18 महापुराण : पुष्पदन्त 94/22 23

19 तिलोयपण्णत्ति 4/550

20 उत्तरपुराण, पर्व 73/75

21 आवश्यक निर्युक्ति 381

22 सिरिपासनाहचरियं, पृ. 135

23 त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम्, पृ. 93-94

24 स्थानाङ्ग 995

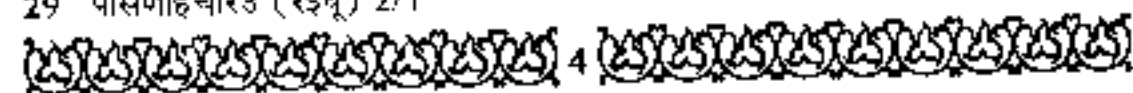
25 तिलोयपण्णत्ति 4/548

26 पद्मपुराणे विंशतितमं पर्व, श्लोक 59, पृ. 427

27 समवायांग 250/24

28 उत्तरपुराण 73/75

29 पासणाहचरिउ (रङ्गू) 2/1





जन्म-तिथि :

तिलोयपण्णत्ति के अनुसार भ. पार्श्वनाथ का जन्म पौषकृष्णा एकादशी के विशाखा नक्षत्र में हुआ था।³⁰ किन्तु उत्तरपुराण में पौष कृष्णा एकादशी के दिन अनिलयोग में जन्मोत्पत्ति बताई है।³¹ रङ्गधू ने नक्षत्र के नाम का तो उल्लेख नहीं किया, किन्तु उस नक्षत्र को शुभ माना है।³² पद्मपुराण में भी जन्म नक्षत्र विशाखा ही उल्लिखित है।³³

नामकरण :

भ. पार्श्वनाथ के नामकरण के सम्बन्ध में उत्तरपुराण³⁴, पासणाहचरित³⁵, पार्श्वपुराण³⁶ आदि में यह उल्लेख मिलता है कि जन्माभिषेक के पश्चात् इन्द्र ने ही बालक का "पार्श्व" ऐसा नाम रखा। आवश्यक निर्युक्ति में उल्लेख है कि जब पार्श्व वामा देवी के गर्भ में थे तब वामा देवी ने पार्श्व (बाजू) में एक काला सर्प देखा अतः बालक का नाम "पार्श्व" रखा गया।³⁷ दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थकार आवश्यक निर्युक्ति का नामकरण के सम्बन्ध में अनुसरण करते हैं।

भ. पार्श्व के शरीर का वर्ण :

भ. पार्श्वनाथ किस वर्ण के थे उन पर विद्वानों में मतभेद पाये जाते हैं।

भ. पार्श्वनाथ "हरित" वर्ण के थे, ऐसा तिलोयपण्णत्ति³⁸ में उल्लेख आया है। 'उत्तरपुराण' के अनुसार उनके शरीर की कान्ति धान के छोटे पौधे के समान हरे रंग की थी।³⁹ पद्मपुराण⁴⁰ और पठमचरित⁴¹ से भी इस बात की

30 तिलोयपण्णत्ति 4/548

31 उत्तरपुराण पर्व 73/90

32 पास. (रङ्गधू) 2/5

33 पद्मपुराणे विंशतितमं पर्व/श्लोक 59 पृ. 427

34 उत्तरपुराण, पर्व 73/92

35 रङ्गधू - पासणाहचरित 2/14

36 पार्श्वपुराण : भूधरदास 6/126

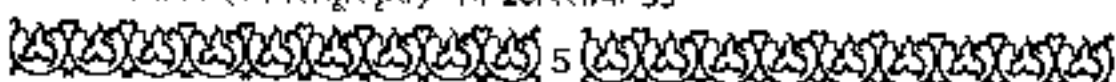
37 आवश्यक निर्युक्ति 1091

38 तिलोयपण्णत्ति 4/588

39 उत्तरपुराणम् पर्व 23/श्लोक 94

40 पद्मपुराणे विंशतितमं पर्व श्लोक 64/पृ. 428

41 पठमचरित (विमलसूरिकृत) पर्व 20/श्लोक 55



पुष्टि होता है। तिलोयसार⁴² और पार्श्वपुराण⁴³ (हिन्दी) में पार्श्व का वर्ण 'नील' बताया गया है। वादिराज ने स्वलिखित पार्श्वनाथ चरित में पार्श्व प्रभु को 'श्यामवर्ण'⁴⁴ का और मरकत की तरह 'हरित वर्ण'⁴⁵ का माना है। सुप्रसिद्ध कल्याणमन्दिर स्तोत्र में पार्श्वनाथ का 'श्याम वर्ण' बताया है।⁴⁶ भक्ति गीतों में 'सांवलिया पारसनाथ' कहकर भी पार्श्वनाथ का अनेक जगह गुणगान किया जाता है और वर्तमान में मिलने वाली अधिकांश पार्श्वनाथ की जैन मूर्तियाँ श्याम वर्ण की ही हैं, इससे भी उनके श्याम वर्ण होने का आभास मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन से पार्श्व के तीन वर्ण मिलते हैं - हरित, नील और श्याम। लेकिन एक ही व्यक्ति के तीन रंग होना सम्भव नहीं है। इस विषय में श्रीमान पं. रतनलाल मिलापचन्द्र कटारिया ने लिखा है कि - काला, नीला और हरा; ये तीनों रंग एक (कृष्ण) ही माने जाते हैं।⁴⁷ फिर भी युक्तिवाद का आश्रय लें तो निम्न तथ्य सामने आता है -

"काले वर्ण के मनुष्य तो देखे जाते हैं, किन्तु हरे और नीले रंग के मनुष्य कहीं भी देखने में नहीं आते।" हाँ नीली आँखों वाले मनुष्य अवश्य देखे जाते हैं।⁴⁸

उपर्युक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि पार्श्वनाथ का वर्ण न्यूनाधिक श्याम ही रहा होगा।

शरीर का उत्सेध (ऊँचाई) :

भ. पार्श्वनाथ के शरीर की ऊँचाई नव हस्त (नौ हाथ) प्रमाण थी,⁴⁹ ऐसा तिलोयपण्णत्ती में उल्लेख मिलता है। परवर्ती एवं पूर्ववर्ती सभी ग्रन्थकार इससे सहमत हैं। रङ्गधू भी यही मानते हैं।⁵⁰

42 तिलोयसार (नेमिचन्द्रकृत) श्लोक 847

43 पार्श्वपुराण (भूधरदास) 7/30 (नीलवर्ण नौ हाथ उत्तंग)

44 पार्श्वनाथचरित (वादिराज) 1/9 एवं 10/69

45 पार्श्वनाथचरित (वादिराज) 10/68, 11/23 एवं 45

46 कल्याणमन्दिर स्तोत्र, श्लोक 23

47 द्र. श्री पं. मिलापचन्द्र रतनलाल कटारिया द्वारा लिखित लेख "तीर्थङ्करों के शरीर का वर्ण" (जैन निबन्ध रत्नावली) पृ. 135

48 वही पृ. 138

49 तिलोयपण्णत्ती 4/587

50 रङ्गधू : पास. 2/15



कुमार काल :

भ. पार्श्वनाथ का कुमार काल तीस वर्ष था।⁵¹

राज्य भोग :

भ. पार्श्वनाथ ने राज्यभोग नहीं किया था।⁵²

भ. पार्श्वनाथ का विवाह नहीं हुआ :

जैन परम्परा के किसी भी ग्रन्थ में भ. पार्श्वनाथ के विवाह की सूचना नहीं मिलती है। जैन अनुयायियों में भी "पंच बालयति" में से एक भ. पार्श्वनाथ को मान्यता दी गई है।

रङ्गधू कृत "पासणाहचरित" में पार्श्व द्वारा अर्ककीर्ति को उनकी पुत्री प्रभावती के साथ विवाह हेतु स्वीकृति देने का उल्लेख आया है,⁵³ किन्तु तभी नाग-नागिनी का प्रसंग उपस्थित हो जाने और तज्जन्य वैराग्य से उनके विवाह का कार्य सम्पन्न नहीं हो सका।

भ. पार्श्व के वैराग्य का कारण :

जिस प्रकार प्रत्येक तीर्थंकर के वैराग्य में कोई न कोई कारण अवश्य रहा, उसी प्रकार पार्श्व के वैराग्य में भी कुछ कारण मिलते हैं। उत्तरपुराण⁵⁴ के अनुसार - "पार्श्व जब तीस वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके तब अयोध्या के राजा जयसेन द्वारा उनके पास एक भेंट दूत के माध्यम से भेजी गई। पार्श्वनाथ ने जब उस दूत से अयोध्या की विभूति के बारे में पूछा तो उस दूत ने पहले तो अयोध्या में उत्पन्न प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव का वर्णन किया और फिर अयोध्या के अन्य समाचार बताए। भ. ऋषभदेव के वर्णन से पार्श्व को जातिस्मरण हो गया और वे संसार से विरक्त हो गए।" पार्श्वपुराण में भी यही उल्लेख है।⁵⁵ महाकवि रङ्गधू ने पार्श्व के वैराग्य का कारण कमठ तपस्वी के साथ हुई घटना तथा सर्प सर्पिणी की मृत्यु को पार्श्व की वैराग्य भावना का

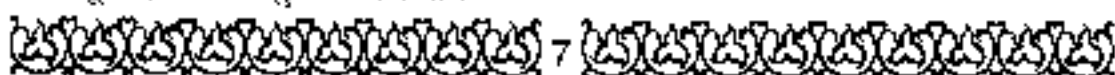
51 तिलोयपण्णत्ती 4/584, उत्तरपुराण 73/119, रङ्गधू : पास. 2/15

52 तिलोयपण्णत्ती 4/603

53 रङ्गधू : पासणाहचरित 3/11

54 उत्तरपुराण 73/119 से 124

55 भूधरदास : पार्श्वपुराण 7/74 से 79



कारण बताया है।⁵⁶ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित⁵⁷ तथा पद्मकीर्ति के पासणाहचरित⁵⁸ से रङ्गू द्वारा बताए कारण को पुष्टि होती है। 'उत्तरपुराण' में उक्त घटना का वर्णन अवश्य किया गया है पर उसे पार्श्व की वैराग्यभावना का कारण नहीं माना है। 'उत्तरपुराण' के अनुसार तो यह घटना उस समय घटित हुई जब पार्श्व की आयु केवल सोलह वर्ष की थी।⁵⁹ वादिराज ने भी कमठ के साथ हुई घटना का उल्लेख तो किया है किन्तु इसे वैराग्योत्पत्ति में कारण न मानते हुए स्वभावतः ही उन्हें संसार से विरक्त होना दिखाया है।⁶⁰

वैराग्य के सन्दर्भ में एक और घटना देवभद्रसूरि ने सिरिपासणाहचरियं में दी है, जिसके अनुसार पार्श्व ने बसन्त समय में उद्यान में जाकर भ. नेमिनाथ के भित्ति चित्रों का अवलोकन किया, जिन्हें देखकर पार्श्व को वैराग्य हो गया।⁶¹

इस उल्लेख के सन्दर्भ में मेरा अनुमान है कि पार्श्व के मन में इस घटना के पूर्व ही वैराग्य के अंकुर फूट चुके होंगे, क्योंकि बसन्त के समय में, जबकि समस्त जन कामोत्सव आदि मना रहे होते हैं ऐसे समय में भ. नेमिनाथ के भित्ति चित्रों का अवलोकन उनके सांसारिक जंजाल से विरक्त होने की पुष्टि करता है। अतः यह ज्यादा सम्भव है कि कमठ के साथ हुई वार्ता और नाग-नागिनी की मृत्यु ही सर्वप्रथम वैराग्य का कारण बनी हो और बाद में हुई घटनाओं से उनकी वैराग्यभावना अपने शीर्ष स्तर पर पहुँची हो अतः कमठ और नाग-नागिनी की घटना ही वैराग्य भावना का प्रबल कारण माना जाना चाहिए।

भ. पार्श्वनाथ द्वारा दीक्षा ग्रहण :

तिलोयपण्णत्ती के अनुसार भ. पार्श्वनाथ ने काशी⁶² (वाराणसी) में माघ शुक्ला एकादशी को पूर्वाह्न काल में विशाखा नक्षत्र के रहते षष्ठ भक्त⁶³ के

56 पासणाहचरित 3/13

57 त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित 9/3/215 से 232

58 पद्मकीर्ति : पासणाहचरित

59 उत्तरपुराण 73/95

60 वादिराज कृत पार्श्वनाथचरितम्

61 सिरिपासणाहचरियं (देवभद्रसूरि) 162

62 तिलोयपण्णत्ती 4/643

63 छठी भोजन वेला में पारणा करने को षष्ठ भक्त कहते हैं।

साथ अश्वत्थ वन में दीक्षा को ग्रहण किया।⁶⁴ गुणभद्र ने दीक्षा का विस्तृत वर्णन करते हुए लिखा है कि मतिज्ञानावरण कर्म के बढ़ते हुए क्षयोपशम के वैभव से उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त हो गया और लौकान्तिक देवों के आकर उन्हें (पार्श्व को) सम्बोधित किया। उसी समय इन्द्र आदि देवों ने आकर प्रसिद्ध दीक्षा कल्याणक का अभिषेक आदि महोत्सव मनाया, तदनन्तर भगवान् विश्वास करने योग्य युक्तियुक्त वचनों के द्वारा भाई-बन्धुओं को विदाकर विमला नाम की पालकी पर सवार होकर अश्ववन में पहुँचे। वहाँ अतिशय-धीर-वीर भगवान् तैला का नियम लेकर एक बड़ी शिलातल पर उत्तर दिशा की ओर मुख करके पर्यङ्कासन से विराजमान हुए। इस प्रकार पौष कृष्ण एकादशी के दिन प्रातःकाल के समय उन्होंने सिद्ध भगवान् को नमस्कार कर तीन सौ राजाओं के साथ दीक्षा रूपी लक्ष्मी स्वीकृत कर ली। भगवान् ने पंचमुखियों के द्वारा उखाड़कर जो केश फैक दिए थे, इन्द्र ने उनकी पूजा की तथा बड़े आदर से ले जाकर क्षीरसमुद्र में उन्हें डाल दिया।⁶⁵

श्री रङ्ग ने पार्श्व के दीक्षा की तिथि पौष मास की दशमी बतायी है।⁶⁶

‘कल्पसूत्र’ के अनुसार पार्श्व ने 30 वर्ष की आयु पूरी होने पर पौष कृष्ण एकादशी को आश्रम पद नामक उद्यान में दीक्षा ग्रहण की थी।⁶⁷

समवायांग⁶⁸ तथा कल्पसूत्र⁶⁹ में पार्श्व जिस शिविका (पालकी) में बैठकर नगर से बाहर आए थे उसका नाम विशाखा बताया गया है।

पुष्पदन्त के अनुसार दीक्षा वन का नाम अश्वत्थवन था।⁷⁰

‘पद्मपुराण’ के अनुसार भगवान् ने जिस वृक्ष के नीचे दीक्षा ली, वह धव (घो) का वृक्ष था।⁷¹

64 तिलोयपण्णत्ती 4/666

65 उत्तरपुराण पर्व 73/124 से 131

66 हिमपडलपयासहिं पूसहिं मासहिं दहमिहिं गुण-गण सेणि-धर ।

मिरि पासकुमारें विणिहियमारें धारिड तें णिक्खमण-धर ॥

- पासणाहचरित / घत्ता 53

67 कल्पसूत्र 157

68 समवायांग 250

69 कल्पसूत्र 157

70 महापुराण 94/22/10

71 पद्मपुराणे विंशतितमं पर्व (59) पृ. 427



दीक्षा तिथि के सम्बन्ध में रइधू का अन्य पुराणों से मतभेद मिलता है लेकिन रइधू के पूर्व लिखित सभी ग्रन्थ पौष कृष्ण एकादशी ही गनते हैं अतः यही समीचीन प्रतीत होती है। इतिहासकारों ने भी पौषकृष्ण एकादशी के प्रातः का समय दीक्षा तिथि, पालकी का नाम विमला, अश्व वन और साथ में दीक्षा लेने वाले राजाओं की संख्या 300 बताया है।⁷² इसे ही निष्कर्ष मानना चाहिए।

दीक्षा के समय पार्श्व की अवस्था :

भ. पार्श्वनाथ की दीक्षा के समय अवस्था 30 वर्ष थी, ऐसा दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं को मान्य है।

पार्श्व प्रभु का प्रथम आहार :

उत्तरपुराण के अनुसार भ. पार्श्वनाथ पारणा के दिन आहार ग्रहण करने के लिए गुल्मखेट नामक नगर में गये, वहाँ श्यामवर्ण वाले धन्य नामक राजा ने अष्ट मंगल द्रव्यों के द्वारा पड़गाहकर उन्हें शुद्ध आहार दिया।⁷³ रइधू ने लिखा है कि भगवान पार्श्व आठ उपवासोपरान्त (दीक्षा के बाद) चर्या (आहार) हेतु निकले और हस्तिनापुर (हथिणापुर) में वणिक्श्रेष्ठ बरदत्त द्वारा प्रदत्त आहार ग्रहण किया तभी पंचाश्रय्य हुए।⁷⁴ कविवर भूधरदास⁷⁵ एवं श्री बलभद्र जैन⁷⁶ ने, जहाँ प्रथम आहार हुआ उसका नाम गुल्मखेट ही बताया है किन्तु भूधरदास जी ने आहारदान देने वाले राजा का नाम ब्रह्मदत्त बताया है।⁷⁷ वैसे अनेक ग्रन्थकार उत्तरपुराण के वर्णन को ही मान्यता देते हैं।

पंचाश्रय्य⁷⁸ :

तीर्थङ्कर के आहार ग्रहण करते ही पंचाश्रय्य होते हैं जो तिलोयपण्णत्ती⁷⁹ में निम्न प्रकार वर्णित हैं :

72 विशेष के लिए देखें- "जैन धर्म का प्राचीन इतिहास" प्रथम भाग, ले. बलभद्र जैन, पृ. 353

73 उत्तरपुराण पर्व 73/132 133

74 रइधू : पासणाहचरित 4/3

75 "गुल्मखेटपुर पहुँचे नाह" - भूधरदास कृत पार्श्वपुराण 8/3

76 जैन धर्म का प्राचीन इतिहास भाग - 1, पृ. 353

77 पार्श्वपुराण - भूधरदास 8/4

78 रइधू : पासणाहचरित 4/3

79 तिलोयपण्णत्ती - गाथा 672-674



1. पारणा (आहार) के दिन सब दाताओं के यहाँ आकाश से उत्तम रत्नों की वर्षा होती है, जिसमें अधिक से अधिक पाँच के धन से गुणित दश लाख प्रमाण अर्थात् साढ़े बारह करोड़ और कम से कम इसके हजारवें भाग प्रमाण रत्न बरसते हैं।
2. दान विशुद्धि की विशेषता को प्रकट करने के निमित्त देव मेघों से अन्तर्हित होते हुए रत्नवृष्टिपूर्वक दुन्दुभी बाजों को बजाते हैं।
3. उसी (आहार के) समय दान का उद्घोष अर्थात् जय-जय शब्द फैलता है।
4. सुगन्धित एवं शीतल वायु चलती हैं।
5. आकाश से दिव्य फूलों की वर्षा होती है।

भ. पार्श्वनाथ का तप :

जिन नाथ (पार्श्व) संसार से पार उतारने वाले, त्रस एवं स्थावर जीवों की रक्षा करने में तत्पर तथा इन्द्रियरूपी भुजङ्ग के विष दर्प का हरण करने वाले दुस्सह तप को करने लगे। तेरह प्रकार के चारित्र से मण्डित शरीर वे जिनेन्द्र अहर्निश गहनवन में रहते हुए तथा पन्द्रह प्रकार के प्रमाद से मुक्त होकर निरन्तर ध्यानाश्रित रहने लगे, फिर सोलह कषायों को क्षीण करके विहार करते हुए वे कैलिवन पहुँचे और वहाँ हाथों को लटकाकर ध्यान करने लगे, मानो वही शाश्वतनगर अर्थात् मोक्ष का निवास हो।⁸⁰

संवर देव द्वारा उपसर्ग :

भ. पार्श्वनाथ चार मास से शुद्धात्मा में स्नान होकर जब तप के द्वारा अपने कर्मों की निर्जरा कर रहे थे तभी कमठ का जीव संवर नामक देव अपनी भार्या के साथ आकाश मार्ग से कहीं जा रहा था कि उसका रथ वहीं रुक गया, तब उसने नीचे ध्यान में मग्न भ. पार्श्व को देखा और अपने पूर्व भव के वैर का जिसे जातिस्मरण हो गया है, ऐसे उस संवर देव ने भयंकर जल वर्षा, छोटे-मोटे पहाड़ों को समीप में गिराना इत्यादि उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया किन्तु पार्श्व अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए, सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुष प्रतिकूल परिस्थितियों में भी संयम रखते हैं। इस प्रकार

के भयंकर उपसर्ग कमठ ने सात दिन तक किए।⁸¹ रश्मि ने संवर देव द्वारा किये गये भयंकर उपसर्ग का चित्रण स्वाभाविक रूप में करते हुए लिखा है कि - "उसने विक्रिया ऋद्धि से मेघों का निर्माण कर जल बरसाना प्रारम्भ किया कि कोई भी उसे रोकने में समर्थ नहीं हो सका। आकाश में प्रचण्ड बज्र तड़तड़ाने, गरजने, घड़घड़ाने और दर्पपूर्वक चलने लगा। तड़क-धड़क करने हुए उसने सभी पर्वत समूहों को खण्ड-खण्ड कर डाला। हाथियों की गुराहट से मदोन्मत्त सांड चीत्कार कर भागने लगे। आकाश भ्रमर, काजल, ताल और तमाल वर्ण के मेघों से उसी प्रकार आच्छादित हो गया जिस प्रकार कुपुत्र अपने अपयश से। मृगकुल भय से व्रस्त होकर भाग पड़े और दुःखी हो गए, जल धाराओं से पक्षियों के पंख छिन्न भिन्न हो गये। नदी, सरोवर, गुफायें, पृथ्वी मण्डल एवं वनप्रान्त सभी जल से प्रपूरित हो गए। वहाँ मार्ग एवं कुमार्ग का किसी को भी ज्ञान न रहा लेकिन इससे पार्श्व प्रभु रन्वमात्र भी विचलित नहीं हुए। दुर्जनों की कलह के समान उस (संवर) ने कहीं भी मर्यादा नहीं रखी और वह पापी भगवान पर मनमाना उपसर्ग करने लगा। विक्रियाऋद्धि धारण कर अपनी शक्तिभर उसने अनेकविध क्लिष्ट एवं भयानक रूप निर्माण करके दिखलाए।⁸² पुनः जलधर को बरसाया, प्रलयकालीन मेघ का गर्जन होने लगा, पर्वत खड़खड़ा उठे, कायर व्यक्ति डर गये। विस्तीर्ण जलधाराओं से पृथ्वी खण्डित हो गई। जल कल्लोलें पृथ्वी को रेलती-पेलती हुई जिन भगवान के शरीर के पास तक पहुँच गईं, फिर भी प्रलयकालीन पवन से आहत धाराओं से व्याप्त होने पर भी पार्श्वप्रभु की योगमुद्रा भङ्ग नहीं हुई। अत्यन्त दुस्सह जल सम्मुख दौड़ पड़ा और जिनेन्द्र (पार्श्व) के कण्ठ तक पहुँच गया।⁸³

उपसर्ग कर्ता कौन :

इस प्रकार पार्श्व के ऊपर भयंकर उपसर्ग किए जाने का तो सभी ग्रन्थकारों ने वर्णन किया है किन्तु उपसर्गकर्ता के नाम के बारे में भिन्नता है। जहाँ उत्तरपुराण में उसका नाम "संवर"⁸⁴ बताया है, वहीं वादिराजसूर ने

81 उत्तरपुराण 73/138

82 रश्मि : मासगाहचरित 4/8

83 वही 4/9

84 उत्तरपुराण 73/136

उनका नाम "भूतानन्द" बताया है।⁸⁵ पद्मकीर्ति ने अपने 'पासणाहचरित' में विघ्नकर्त्ता (उपसर्गकर्त्ता) का नाम "मेघमालिन" दिया है।⁸⁶ श्वेताम्बर परम्परा में लिखे हुए सिरिपासनाहचरियं, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित आदि ग्रन्थ इसी नाम को स्वीकार करते हैं। रङ्गधू ने उत्तरपुराण की तरह उपसर्गकर्त्ता का नाम संवर ही लिखा है।⁸⁷ वैसे सभी इस बात पर एक मत हैं कि वह कमठ का जीव ही था।

उपसर्ग का कारण :

संवर देव द्वारा भ. पार्श्व पर किए गए उपसर्ग का कारण दोनों के पूर्व जन्म का वैर था। संवर देव ने जब आकाश से पार्श्व को तपस्या रत देखा तो उसने इस प्रकार सोचा - "तुम पूर्वभव में कमठ नाम के जो ब्राह्मण थे उसे इसी दुष्ट (पार्श्व के पूर्वभव का जीव - मरुभूति) के कारण नगर से निकाल दिया गया था। यही महादोषी है। मैं इसे ध्यानावस्था में ही यम के घर भेज देता हूँ।"⁸⁸ इससे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।

धरणेन्द्र - पद्मावती द्वारा उपसर्ग निवारण :

जब संवर देव (कमठ का जीव) भ. पार्श्व पर भयंकर उपसर्ग कर रहा था, तभी सुरेश्वर (धरणेन्द्र-नाग का जीव) का आसन कम्पायमान हुआ। अवधि ज्ञान का प्रयोग करके वह अपनी प्रिया से बोला - "हे प्रिये! जिसकी कृपा से सुरपद प्राप्त हुआ, जिसने वह परमाक्षर मन्त्र (जमोकार मंत्र) दिया था, उसी श्री पार्श्वप्रभु के ऊपर पृथ्वीतल पर अत्यन्त दुखकारी उपसर्ग हो रहा है।"⁸⁹ ऐसा कहकर वे दोनों पवित्र मन वाले देव एवं देवी चल पड़े और वहाँ आये जहाँ पार्श्व प्रभु स्थित थे। तीन प्रदक्षिणायेँ देकर, दोनों हाथ

85 श्री पार्श्वनाथ चरितम् 10/88

86 पासणाहचरित : पद्मकीर्ति 14/5

87 रङ्गधू : पासणाहचरित 4/घत्ता 57

88 क. हो तुहउ आसि कम्मट्ट जो बंधणो,

एण दूदुठेण णिद्धाडियो तं पुणो ।

एहु दोसी महो जाइ किं दिट्ठओ,

णेमि अंतस्स गेहम्मि ज्ञाणट्ठिओ ॥ पासणाहचरित - रङ्गधू 4/7/7-8

ख. विशेष के लिए देखें - वही 6/2 से 8 तक

89 जसु पसाईं पिए सुरपउ पाविउ, जेण आसि भरमक्खर दाविउ ।

तहु सिरि पासजिणहुँ बहु दुहयरु, महिवट्ठइ उवसगु महायरु ॥

- रङ्गधू : पासणाहचरित 4/9/7-8

जोड़कर उन्होंने उनके चरण युगल में प्रणाम किया⁹⁰ और फिर उपसर्ग को दूर करने के लिए कमलासन का निर्माण किया और पार्श्वप्रभु को उस पर विराजमान किया। सात फणों का छत्राकार बनाया और जिन भगवान के शीर्ष पर उसे मण्डलाकार स्थित कर दिया। इस प्रकार फणीश्वर जब पार्श्व के शरीर की रक्षा कर रहा था, उस समय पद्मावती अपने प्रिय में आशक्तमन होकर वहीं स्थिर थी। उसे देखकर संवरदेव कुपित हो गया और दुगुना-तिगुना उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। उसने पुनः पत्थरों के ढेर बरसाये और बहुत धूलि और बालुकण प्रकट किये।⁹¹ जैसे-जैसे उस पापी एवं दुष्ट कमठ ने उपसर्ग किए, वैसे-वैसे नागेश ने अपने उठाए हुए फण से उन सभी को क्षणमात्र में ही निरस्त कर दिया।⁹²

पार्श्व का छद्मस्थ काल :

जिन दीक्षा के पश्चात् केवलज्ञान की उत्पत्ति तक के मध्य के समय को छद्मस्थकाल कहते हैं।

‘तिलोयपण्णत्ती’ में पार्श्व का छद्मस्थकाल चार मास⁹³ और ‘कल्पसूत्र’ में 83 दिन⁹⁴ की अवधि का बताया गया है छद्मस्थकाल के विषय में दिगम्बराचार्यों/ग्रन्थकारों ने ‘तिलोयपण्णत्ती’ का और श्वेताम्बरों ने कल्पसूत्र का अनुसरण किया है।

केवलज्ञान की प्राप्ति, तिथि और स्थान :

पार्श्व को चैत्र कृष्ण चतुर्थी के पूर्वाह्नकाल में विशाखा नक्षत्र के रहते शक्रपुर में केवलज्ञान हुआ, ऐसा ‘तिलोयपण्णत्ती’ में उल्लिखित है।⁹⁵

महाकवि रङ्गधू ने केवल्योपलब्धि का विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया है:
“धरणेन्द्र के फणिमण्डल के द्वारा कमठ के उपसर्ग के निवारित होने पर पार्श्व जिनेन्द्र निश्चल एवं नासाग्रदृष्टि से स्थिर हो गये। तब उन्होंने उन

90 वही, घत्ता 60

91 रङ्गधू : पास. 4/11

92 जिहँ जिहँ कम्मडुँ दुहँ, उवसगाईँ चँडँजियईँ ।

जिहँ-तिहँ पाएसँ उट्टिय-भीसँ-खणि फिरत्थ सयलईँ कियईँ ॥ - वही, घत्ता - 62

93 तिलोयपण्णत्ती 4/678

94 कल्पसूत्र 158

95 तिलोयपण्णत्ती 4/700

अनन्तानुबन्धी कषायों (क्रोध, मान, माया और लोभ) के चक्र का घात किया, जिससे संसार दुर्गति पथ में पड़ता है। दर्शन मोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियों का घात किया, फिर आयु कर्म की तीन प्रकृतियों को काट डाला। (इस प्रकार उन्होंने अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्व, तिर्यञ्चायु, देवायु, नरकायु; इन दस कर्मप्रकृतियों को चतुर्थ गुणस्थान से सप्तम गुणस्थान के मध्य क्षय कर दिया; ऐसा जानना चाहिए (उसके बाद इन्द्र द्वारा प्रणम्यचरण जिनेश्वर अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान पर आरूढ़ हो गए और एक अन्तर्मुहूर्त तक उस स्थिति में रह कर जिनेश्वर अनिवृत्तिकरण नामक नौवें गुणस्थान पर चढ़ गये। इसके प्रथम अंश में जिनेश्वर ने नामकर्म की उन तेरह प्रकृतियों का क्षय किया, जिनके द्वारा सारा जग व्याकुल रहता है। अनन्तर दर्शनावरण की तीन कर्म प्रकृतियों - निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला एवं स्त्यानगृद्धि का नाश किया। (इस प्रकार पार्श्व ने नौवें गुणस्थान के प्रथम चरण में निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय रूप चार जातियों, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यगगति, तिर्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, इन सोलह कर्म-प्रकृतियों को नष्ट किया)

इसी के द्वितीय अंश में उन्होंने आठ प्रकार की (अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानरूप कषायें जो चारित्र की घातक कही गई हैं) मध्यम कषायों का क्षय किया और उसके कारण चैतन्यरस का ध्यान किया।

इसी नौवें गुणस्थान के तृतीय भाग में पार्श्व ने नपुंसक वेद और चतुर्थ भाग में स्त्रीवेद का क्षय किया, पुनः पंचम भाग में चारों गतियों में दुःखदायक हास्यादि (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा) कषायें नष्ट कीं। छठवें भाग में पुरुष वेद को भी दूर कर दिया तथा सप्तम भाग में संज्वलन (सूक्ष्म क्रोध) को भी नष्ट कर दिया तथा अष्टम भाग में संज्वलन मान का क्षय किया और नौवें भाग में संज्वलन माया को नष्ट किया।⁹⁶ इस प्रकार संसार रूपी अन्धकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान जिनेश्वर (पार्श्व) भवन में निवास कराने वाले छत्तीस प्रकृतियों के समूह को अनिवृत्तिकरण नामक

(नवम) गुणस्थान के नौ अंशों में नाशकर दसवें गुण स्थान पर आरुढ़ हुए,⁹⁷ तो वहाँ संज्वलन लोभ का नाश किया। (इस प्रकार समस्त मोहनीय कर्म को नष्ट किया, उपशान्तमोह नामक यह 11वां गुणस्थान कहलाता है) और फिर क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान में आरुढ़ हुए और उसमें सोलह प्रकृतियों (निद्रा, प्रचला = 2 कर्म प्रकृतियों + पाँच ज्ञानावरण + चार दर्शनावरण + पाँच अन्तराय कर्म प्रकृतियों = 16 प्रकृतियों) को नष्ट किया।

इस प्रकार प्रथमतः उन्होंने सैंतालीस कर्म प्रकृतियों का उच्छेद किया और फिर सोलह कर्म प्रकृतियों का निवारण किया, इस प्रकार कुल (47-16 = 63) त्रैसठ कर्म प्रकृतियों का निवारण किया। (फिर 12वें गुणस्थान में आरोहण किया।

त्रैसठ प्रकृतियों के समूह को भग्न करने पर पार्श्व को केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। एक खम्भे के समान महान त्रिलोक और अलोक को भी ज्ञान से प्रत्यक्ष देख लिया। जो त्रिलोक सूक्ष्म एवं स्थूल जीवों से भरा हुआ है, वह सब केवल ज्ञान के होते ही विस्फुरायमान हो उठा।⁹⁸

आत्मा के स्वरूप का सहभावी, शाश्वत एवं मनरहित, अनिन्द्य, अलक्ष्य, श्रेष्ठ, इन्द्रियसुखरहित एवं कर्म से अपराभूत परम आनन्द हुआ,⁹⁹ जिससे वे पार्श्व तीनों लोकों में महान, विचित्र, पवित्र एवं अचिन्त्य परमात्म पद में लीन होकर स्थित हो गये। विकल्प रहित समाधि में लीन, कर्मों की त्रैसठ प्रकृतियों से सहित सयोगी जिनेन्द्र एक शुद्धात्म में लीन हो गये। इस प्रकार चैत्र के पवित्र कृष्ण पक्ष में चतुर्थी के दिन शोभन नक्षत्र में जिनेन्द्र (पार्श्व) ने केवलज्ञान प्राप्त किया।¹⁰⁰

‘उत्तरापुराण’ में भी इसी काल का उल्लेख आया है।¹⁰¹

मेरे विचार से रश्मि ने किसी नक्षत्र का नाम न लेते हुए जो सोभन-रिविख (शोभन नक्षत्र) का प्रयोग किया है उसका तात्पर्य शुभ नक्षत्र से ही जानना चाहिए।

97 रश्मि : पासणाहचरित, 4/12, घत्ता 63

98 वही; 4/13

99 वही घत्ता 64

100 वही 4/14

101 उत्तरपुराण 73/143 144

केवल ज्ञानोपरान्त तीर्थङ्कर की स्थिति :

केवलज्ञान की उत्पत्ति हो जाने पर तीर्थंकरों का परमौदारिक शरीर पृथ्वी से पाँच हजार धनुष प्रमाण ऊपर चला जाता है ऐसा यतिवृषभ ने लिखा है।¹⁰² अन्य शास्त्रों का भी यही मत है।

केवलज्ञान महोत्सव :

शुक्ल ध्यान के प्रभाव से मोहनीय कर्म का क्षय हो जाने पर तीर्थङ्कर को समस्त लोक और अलोक को प्रकट करने वाला केवलज्ञान जब प्रकट हो जाता है तभी इन्द्र का आसन कम्पायमान होने लगा, जिससे इन्द्र ने भगवान के केवलज्ञानोत्पत्ति को जान लिया और स्वयं ही वहाँ आकर उसने मन, वचन, काय रूप त्रिशुद्धिपूर्वक स्तुति कर स्तोत्रपाठ किया एवं उनके चरणों में नमस्कार किया।¹⁰³ इस प्रकार सभी देव एवं मनुष्यों ने भक्तिभावपूर्वक उनके केवलज्ञान की पूजा की और हर्ष मनाया।

पार्श्व का केवलि काल :

भ. पार्श्व जिनेन्द्र के केवलि काल की संख्या आठ मास अधिक उनहत्तर वर्ष प्रमाण है।¹⁰⁴

पार्श्व का चिह्न :

भ. पार्श्वनाथ का चिह्न सर्प था।¹⁰⁵

पार्श्व का संघ :

महाकवि रङ्गधू ने पार्श्वनाथ के गणधरों की संख्या दस बताई है।¹⁰⁶ तिलोयपण्णत्ती¹⁰⁷ तथा आवश्यक निर्युक्ति¹⁰⁸ में भी पार्श्व के दस गणधरों के होने की पुष्टि होती है। यही संख्या समस्त उत्तरवर्ती ग्रन्थकारों को मान्य है। गणधरों के नामों के विषय में ग्रन्थकाल एकमत नहीं हैं। 'तिलोयपण्णत्ती' में

102 तिलोयपण्णत्ती 4/705

103 रङ्गधू : पासणाहचरित 4/14

104 तिलोयपण्णत्ती 4/960

105 वही 4/605

106 पासणाहचरित 7/2

107 तिलोयपण्णत्ती 4/963

108 आवश्यक निर्युक्ति 290

पार्श्व के प्रथम गणधर का नाम स्वयम्भू बताया है¹⁰⁹, किन्तु सिरिपासनाहचरियं में उसका नाम आर्यदत्त दिया है।¹¹⁰ रङ्ग ने प्रथम गणधर के प्रसंग का वर्णन इस प्रकार दिया है:-

“सभी सुरों एवं खेचरों के द्वारा संस्तुत वह मुनि स्वयम्भू पार्श्व जिनेन्द्र की भव्य जनों के मन को शतावधि संशयों का हरण करने वाली वाणी का धारक प्रथम गणधर हुआ।”¹¹¹

रङ्ग ने पार्श्वनाथ की प्रथम शिष्या तथा प्रधान आर्यिका का नाम प्रभावती बताया है, वर्णन इस प्रकार है :

“प्रभावती नाम की जो श्रेष्ठ कन्या कही गई है वह वहाँ श्रेष्ठ आर्यिका बनी। शील लक्ष्मी के निवास की शिखरध्वजा के समान वह कन्या समस्त आर्यिका संघ की प्रधान बनी।”¹¹²

पार्श्व प्रभु के निर्वाणोपरान्त प्रभावती आर्यिका ने भी अपने शरीर को त्याग कर अच्युत स्वर्ग को प्राप्त किया।¹¹³

‘समवायांग’ में पार्श्व की प्रथम शिष्या का नाम पुष्पचूला कहा गया है,¹¹⁴ जबकि ‘कल्पसूत्र’ में पुष्पचूला को पार्श्व की मुख्य आर्यिका बताया गया है।¹¹⁵ सम्भवतः दोनों एक ही हों। ‘तिलोयपण्णत्ती’ के अनुसार मुख्य आर्यिका का नाम सुलोका था।¹¹⁶ ‘उत्तरपुराण’ में उसका नाम सुलोचना आया है।¹¹⁷ इस प्रकार मुख्य आर्यिका के नाम पर ग्रन्थकारों में मतभेद पाया जाता है।

भ. पार्श्वनाथ के चतुःसंघ में मुनि, आर्यिका आदि की स्थिति जो प्रमुख 4 ग्रन्थों में निर्दिष्ट है, वह इस प्रकार है :

109 तिलोयपण्णत्ती 2/975

110 सिरिपासनाहचरियं 15/12/4 पर दी गई टिप्पणी द्रष्टव्य है।

111 रङ्ग : पासनाहचरिउ 4/20

112 वही 4/20

113 वही 7/5

114 समवायांग

115 कल्पसूत्र

116 तिलोयपण्णत्ती 4/11-80

117 उत्तरपुराण 73/153



नाम	कल्पसूत्र	तिलोयपण्णत्ती	आवश्यक निर्युक्ति	पास. रइधू
ऋषि	1600	1600	1600	-
पूर्वधर	350	350	-	414
शिक्षक		10900	-	-
अवधिज्ञानी	1400	1400	-	1500
केवली	10000	10000	-	13500
विक्रियाधारी	1100	1000	-	4500
विपुलमतिधारी	750	750	-	-
वादि	600	600	-	-
आर्यिका	38000	38000	38000	38000
श्रावक	165000	100000	-	-
श्राविका	300000	327000	-	300000
गणधर	8	-	-	10
शिष्य	-	-	-	1800
मनःपर्ययज्ञानधारी	-	-	-	900
व्रती	-	-	-	100000
वागेश्वर	-	-	-	800
मुक्ति को प्राप्त करने वाली स्त्रियों की संख्या	-	-	-	1090

भ. पार्श्वनाथ का विहार :

भ. पार्श्व ने बारह सभाओं के साथ घमोपदेश करते हुए पाँच माह कम सत्तर वर्ष तक विहार किया और अन्त में जब उनकी आयु का एक माह शेष रह गया तब वे विहार बन्द करके सम्मेदाचल के शिखर पर छत्तीस मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हो गये।¹¹⁸

भ. पार्श्वनाथ का निर्वाण :

महाकवि रइधू ने पार्श्व का निर्वाण क्षेत्र सम्मेद शिखर माना है।¹¹⁹ पूर्ववर्ती एवं पश्चाद्वर्ती सभी ग्रन्थकार इस विषय पर एकमत हैं। यह “सम्मेद

118 उत्तरपुराण 73/154-156

119 रइधू : पास. 7/2-3

शिखर" नाम से विख्यात पर्वत भारतवर्ष के बिहार राज्य के गिरिडीह जिले में स्थित है तथा आज भी जैन धर्मानुयायियों का प्रमुख तीर्थ एवं वन्दनास्थल है। जैनतेर समाज में वह "पार्श्वनाथगिरि" के नाम से भी प्रसिद्ध है।

पार्श्व की निर्वाणतिथि :

श्री रङ्ग ने भगवान् पार्श्वनाथ की निर्वाणतिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी मानी है¹²⁰ 'कल्पसूत्र' के अनुसार पार्श्वनाथ को विशाखा नक्षत्र में श्रावण शुक्ला अष्टमी को पूर्वाह्न में पोष प्राप्त हुई।¹²¹ 'तिलोयपण्णती' के अनुसार वह समय श्रावण शुक्ला सप्तमी का प्रदोषकाल है।¹²²

निर्वाणतिथि के विषय में दिगम्बर लेखक 'तिलोयपण्णती' का और श्वेताम्बर लेखक कल्पसूत्र का अनुसरण करते आ रहे हैं।

भ. पार्श्वनाथ की आयु :

भ. पार्श्वनाथ की आयु के सम्बन्ध में सभी ग्रन्थकार एक मत हैं। सभी के अनुसार उन्होंने सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया।

भ. पार्श्व के साथ मोक्ष गए मुनियों की संख्या :

भ. पार्श्वनाथ के साथ मोक्ष को प्राप्त हुए मुनियों की संख्या 36 (छत्तीस) है।¹²³

तीर्थङ्कर पार्श्व के निर्वाणोपरान्त देवों द्वारा की गई क्रियायें :

तीर्थङ्कर पार्श्व का निर्वाण जानकर इन्द्र सुरवृन्द सहित वहाँ आया। उस धीर ने विक्रिया ऋद्धि से मायामय धीर शरीर बनाया और उसे सिंहासन पर विराजमान किया। पुनः अष्ट प्रकार से पूजा की, जो सभी के हृदयों को अतिमनोज्ञ लगी। गोशीर्ष प्रमुख देवदारु, श्रीखण्ड और नाना प्रकार के काष्ठ मिलाकर उससे शैया (चिता) निर्मित की और उस पर पार्श्व का मायामय शरीर रखा। जब देवगण उसकी तीन प्रदक्षिणायें देकर प्रणाम करके समीप में खड़े थे तभी अग्निकुमारों ने (पार्श्व के) चरणों में प्रणाम करके उनके शीर्ष-

120 रङ्ग : पासणाहचरित; 7/3

121 कल्पसूत्र

122 तिलोयपण्णती 2/1218

123 रङ्ग : पास. 7/4

किरीट के आगे जाकर चिता प्रज्वलित कर दी, जिससे आकाश का मार्ग अवरुद्ध हो गया और संसार ने जिनवर (पार्श्व) के मोक्षगमन को जान लिया।¹²⁴

सम्पूर्ण भुवन को क्षुब्ध करने वाले अनेकतूर्यों के गिनादपूर्वक वह इन्द्र उन (पार्श्व) के प्रशंसाकारक भस्म को ग्रहण करके अपने सिर पर रखकर क्षीरसागर (समुद्र) को गया।¹²⁵ यहाँ भस्म को ग्रहण कर इन्द्र बर्तित आया और श्री गणधर को प्रणाम करके अपनी भक्ति के अनुसार अन्तिम श्रेष्ठ कल्याणक (मोक्ष) करके स्वर्ग को चला गया।¹²⁶

तीर्थङ्कर पार्श्व का तीर्थकाल :

पूर्ववर्ती तीर्थङ्कर से लेकर उत्तरवर्ती तीर्थङ्कर के जन्म तक का समय पूर्व तीर्थङ्कर का तीर्थ कहा जाता है। तीर्थ से तात्पर्य इस बात से है जिसमें एक तीर्थङ्कर के उपदेश का ठसी रूप में पालन किया जाता रहा हो। पार्श्वनाथ स्वामी का वह तीर्थ काल दो सौ अटहत्तर वर्ष प्रमाण है।¹²⁷

तीर्थङ्कर पार्श्व का समय :

जैन शास्त्रों की मान्यतानुसार तीर्थङ्कर भगवान पार्श्वनाथ के 250 वर्ष बीत जाने पर भगवान महावीर का जन्म हुआ था।¹²⁸ चौर निर्वाण सम्बत् और ईस्वी सन् में 527 वर्ष का अन्तर है। जैन शास्त्रानुसार अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर की सम्पूर्ण आयु कुछ कम 72 वर्ष की थी।¹²⁹ अतः $527 - 72 = 599$ वर्ष ई. पू. में महावीर का जन्म सिद्ध होता है और यह निर्विवाद भी है। भ. महावीर के जन्म के 250 वर्ष पूर्व अर्थात् $599 + 250 = 849$ ई. पू. पार्श्वनाथ का निर्वाण समय है।

भगवान पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता :

जैन परम्परा कालचक्र को स्वीकार करती है तथा जैन सिद्धान्तों की नित्यता को भी। इन सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार अपने समय में तीर्थङ्करों ने

124 रङ्धू : पास. 7/4/5-12

125 वही, षष्ठा - 131

126 वही 7/5/1-2

127 तिलोत्पण्णती 4/1274

128 पार्श्वेशतीर्थसन्ताने पञ्चाशतीतिदशतब्दके ।

तदभ्यन्तरवर्त्यायुर्महावीरोऽयं जातवान् ॥ - उत्तरपुराण 74/279

129 द्वासप्ततिसप्ताः किञ्चिद्दूनास्तस्यायुषः स्थितिः । उत्तरपुराण 74/280

किया। भगवान पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थङ्कर थे। भ. पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता सामान्यतः प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकार की है, न केवल जैन साहित्य अपितु बौद्ध साहित्य से भी इसकी पुष्टि होती है। भ. पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता के विवेचन से पूर्व हम संक्षिप्त में उनका जीवन वृत्त लिखना आवश्यक समझते हैं, वह इस प्रकार है :-

भगवान महावीर के 350 वर्ष पूर्व वाराणसी के राजा अश्वसेन और माता वामादेवी के पुत्र के रूप में पार्श्वनाथ का जन्म हुआ। पंद्रह वर्ष की आयु तक वे राजकुमारावस्था में अपने पिता के पास रहे, फिर संसार से उदासीन होकर उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। अनन्तर कठोर तपश्चर्या के बाद केवल-ज्ञान प्राप्त किया और अपने उपदेशामृत से जनसामान्य को लाभान्वित करते रहे। तप और उपदेश की अवधि सत्तर वर्ष सभी पुराण व ग्रन्थकार स्वीकार करते हैं। सौ वर्ष की आयु पूरी होने पर 777 ईसवी पूर्व में उन्हें निर्वाणपद प्राप्त हुआ। जिस स्थान से उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई, वह सम्पेद शिखर था। सम्पेद शिखर पश्चिम बिहार में अवस्थित है। इस पहाड़ी को अब भी पार्श्वनाथ पर्वत (पहाड़ी) कहते हैं। पार्श्वनाथ के जीवन में हम देखते हैं कि बुराई के ऊपर अच्छाई निरन्तर प्रतिष्ठापित होती रही। पार्श्वनाथ के साथ कमठ के जीव का पूर्व जन्मों में निरन्तर संघर्ष हुआ, नौवें भव में वे पार्श्वनाथ हुए। प्रथम भव में मरुभूति और कमठ दो भाई थे। कमठ बड़ा भाई था, जो कि अपने छोटे भाई मरुभूति के प्रति ईर्ष्या और घृणा से भरा हुआ था। मरुभूति अन्त में तार्थिकर हुआ। दुराचार के फलस्वरूप कमठ को उसके पैतृक घर से निकाल दिया गया। सम्मानहीन तथा अपमानित कमठ ने तप करना प्रारम्भ किया। इस तप का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति न होकर देवत्व की प्राप्ति करना था ताकि वह अपने भाई से बदला ले सके। उसने सूर्य के प्रखर प्रकाश में खड़े होकर तपस्या करना प्रारम्भ किया, अपने ऊपर वह एक बड़ा पत्थर लिये रहता था। मरुभूति क्षमा याचना के उद्देश्य से नमस्कार करने हेतु जैसे ही कमठ के चरणों में झुका, कमठ ने आक्रोश और बदले की भावना से उसके ऊपर पत्थर पटक दिया, जिससे मरुभूति की मृत्यु हो गई। बदले की यह कहानी आगे प्रत्येक जीवन में कमठ की ओर से घटित होती रही तथा इसकी इतिश्री पार्श्वनाथ की क्षमा भावना के साथ हुई। प्रारम्भ में मरुभूति बज्रघोष नामक हाथी हुआ, उसका भाई कमठ अजगर हुआ। बज्रघोष हाथी ने पवित्र रुख

को अपनाया। एक बार उस सर्प ने हाथी के मस्तक पर काट लिया, जिससे वह मर गया। जीवन की श्रेणियाँ और तदनुसार बदले की भावना से पूर्ण संघर्ष चलता रहा। मरुभूति प्रत्येक जन्म में शान्ति और सद्गुणों को अर्जित करता गया, जबकि कमठ का जीव बदले की भावना के पाप पङ्क में निमग्न होता रहा। इस प्रकार अच्छाई और बुराई का संघर्ष हुआ, अन्त में अच्छाई की विजय हुई।

पार्श्वनाथ के उपर्युक्त जीवन चरित को ध्यान में रखकर ही उनकी ऐतिहासिकता खोजने का प्रयास किया गया, जिसके फलस्वरूप यह निश्चित है कि पार्श्वनाथ एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे। सर्वप्रथम डॉ. हर्मन जेकोबी ने भगवान पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक व्यक्ति प्रमाणित किया।¹³⁰ डॉ. जेकोबी के इस मत की पुष्टि अनेक विद्वानों ने की। बौद्ध साहित्य को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि बुद्ध से पहले एक निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय अस्तित्व में था, निम्न बातों से इसकी पुष्टि होती है¹³¹ :

अंगुत्तर निकाय में यह उल्लेख मिलता है कि वप्प नाम का एक शाक्य निर्ग्रन्थों का भक्त था। इसी सुत्त की अट्ठकथा में यह निर्देशित है कि यह वप्प बुद्ध का चाचा था। इस वृत्त से भी भगवान महावीर के पूर्व निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय का अस्तित्व प्रमाणित होता है।

'मज्झिम निकाय' के महा सिंहनादसुत्त¹³² में बुद्ध ने अपने प्रारम्भिक कठोर तपस्वी जीवन का वर्णन करते हुए तप के वे चार प्रकार बतलाये हैं, जिनका उन्होंने स्वयं सेवन किया था। वे चार तप हैं - तपस्विता, रुक्षता, जुगुप्सा और प्रविविक्तता। तपस्विता का अर्थ है - नग्न रहना, हाथ में ही भिक्षा-भोजन करना, केश-दाढ़ी के बालों को उखाड़ना, कण्टकाकीर्ण स्थल पर शयन करना। रुक्षता का अर्थ है - शरीर पर मैल धारण करना या स्नान न करना। अपने मैल को न अपने हाथ से परिमार्जित करना और न दूसरे से परिमार्जित कराना। जुगुप्सा का अर्थ है - जल की बूंद तक पर दया करना और प्रविविक्तता का अर्थ है - वनों में अकेले रहना।

130 The Sacred Books of The East, Vol. XLV, Introduction, P.21.

131 चतुष्कनिपात बग - 5

132 मज्झिम निकाय, महासिंहनादसुत्त, पृ. 48-50, प्रकाशक - महाबोधि समा, सारनाथ



उपर्युक्त चारों तपों का निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय में पालन किया जाता था। भगवान् महावीर ने स्वयं इनका पालन किया था तथा अपने निर्ग्रन्थों के लिए भी इनका विधान किया था। अब यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्ध के दीक्षा लेने से पूर्व महावीर का निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय अस्तित्व में नहीं आया था अतः अवश्य ही वह उनके पूर्व भ. पार्श्वनाथ का होगा, जिसके उक्त चार तपों को बुद्ध ने धारण किया था किन्तु बुद्ध ने कठोर तपश्चर्या में कुछ सार न मानते हुए इन तपों का परित्याग कर दिया था, हो सकता है ऐसा उन्होंने अपने धर्म को निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय से मूलतः पृथक् करने हेतु किया हो।

‘उत्तराध्ययन सूत्र’ के 23 वें अध्ययन से पार्श्व के शिष्य केशी और महावीर शिष्य गौतम के बीच वार्तालाप का उल्लेख है जिसमें केशी ने गौतम से धर्म के सम्बन्ध में पहला प्रश्न किया, जो इस प्रकार था :-

हे महामुनि! चातुर्यामि धर्म का उपदेश पार्श्व ने किया और पञ्च-शिक्षा रूप धर्म का उपदेश वर्द्धमान ने किया, एक ही मोक्षरूपी कार्य के लिए प्रवृत्त इन दोनों धर्मों में भेद का कारण क्या है? 133

इस कथन से स्पष्ट है कि चातुर्यामि धर्म के उपदेष्टा भ. पार्श्व थे, और भगवान् महावीर के समय में भी पार्श्वनाथ के अनुयायी (शिष्य) भारी संख्या में विद्यमान थे।

श्वेताम्बरीय जैन आगम ग्रन्थों में “पासावचिज्ज” (पार्श्वपत्थीय) कहे जाने वाले अनेक व्यक्तियों का उल्लेख है। प्रो. दत्तसुख मालवणिया ने उनकी संख्या पाँच सौ दस बतलायी है, उनमें से 503 साधु थे। 134 टीकाकारों ने “पासावचिज्ज” शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है - (क) पार्श्वपत्थस्य पार्श्वस्वामि शिष्यस्य अपत्यं शिष्यः पार्श्वपत्थीयः। 135 (ख) पार्श्वजिनशिष्याणामयं पार्श्वपत्थीयः। 136 (ग) पार्श्वनाथ शिष्यशिष्यः। 137 (घ) चातुर्यामिक साधो। 138

133 चाउज्जामो य ओ धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।

देसिओ वड्ढम्मणेण, पासेण य महामुणी ॥

एकं अ पवण्णार्णं, त्रिसेसे किं नु कारणं । - उत्तराध्ययनसूत्र 23/23-24

134 जैन प्र. का उत्थान महावीराङ्क, पृ. 47

135 आचारांग 2, 7, 4

136 भगवतीसूत्र (व्याख्याप्रज्ञप्ति) 1-9

137 स्थानाङ्ग 9

138 भगवती सूत्र 15



उपर्युक्त व्याख्याओं से पासावचिञ्ज शब्द के दो अर्थ निकाले जा सकते हैं:-

- (क) पार्श्वपत्नीय भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी थे।
- (ख) वे चार यामों का पालन करते थे।

आचाराङ्ग 139 में “समणस्य णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावचिञ्जा समणो वासगाया वि होत्था” ऐसा कथन आया है, इससे सिद्ध है कि भ. महावीर के पिता सिद्धार्थ पार्श्वपत्नीय श्रमणोपासक और माता त्रिशला श्रमणोपासिका थी।

डॉ. विमलचरण लॉ के अनुसार - भगवान् पार्श्व के धर्म का प्रचार भारत के उत्तरवर्ती क्षत्रियों में था, वैशाली उसका मुख्य केन्द्र था।¹⁴⁰ वृज्जिगण के प्रमुख महाराज चेटक भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी थे।¹⁴¹ कपिलवस्तु में भी पार्श्व का धर्म फैला हुआ था, वहाँ “न्यग्रोधाराम” में शाक्य निर्ग्रन्थ श्रावक “वप्प” के साथ बुद्ध का संवाद हुआ था।¹⁴² बुद्ध भगवान् महावीर के समकालीन थे, इससे सिद्ध है कि भगवान् महावीर से पूर्व जैनधर्म के सिद्धान्त स्थिर हो चुके थे।

डॉ. चार्ल्स सरपेटियर ने लिखा है कि - हमें इन दो बातों का भी स्मरण रखना चाहिए कि जैन धर्म निश्चितरूपेण महावीर से प्राचीन है, उनके प्रख्यात पूर्वगामी पार्श्व प्रायः निश्चित रूप से एक वास्तविक व्यक्ति के रूप में विद्यमान रह चुके हैं एवं परिणामस्वरूप मूल सिद्धान्तों की मुख्य बातें महावीर से बहुत पहले सूत्र रूप धारण कर चुकी होंगी।¹⁴³

हर्मस्वर्थ ने भगवान् पार्श्वनाथ को गौतम बुद्ध और महावीर से पूर्ववर्ती पुरुष के रूप में स्वीकार करते हुए लिखा है कि - “नातपुत्त (श्री महावीर) के पूर्वगामी उन्हीं की मान्यता वाले अनेक तीर्थङ्करों में उनका

139 आचारांग 1006

140 Kshatriya Clans in Buddhist India, P.82.

141 वैशालीस पुरीष सिरिपासजिणेषसासणसणाहो ।

हेहयकुलसंभूओ चेडगनामानिवोअसि । - उपदेशमाला, श्लोक 92

प्रकाशक - मास्टर उमेशचन्द्र रामचन्द्र, अहमदाबाद, सन् 1933

142 अंगुत्तर निकाय, चतुष्कनिपात, महावग्ग, वप्पसुत्त, भाग- 2, पृ. 210-213

143 The Uttaradhyayana Sutra, (Uppsala 1922) : Jarl Charpentier, P.H.D., Introduction, P.21.


 (जैनधर्मानुयायियों का) विश्वास है और इनमें से अन्तिम पार्श्व या पार्श्वनाथ के प्रति वे विशेष श्रद्धा व्यक्त करते हैं। उनकी यह मान्यता ठीक भी है, क्योंकि अन्तिम व्यक्ति पौराणिक से अधिक है। वह वस्तुतः जैनधर्म के राजवंशी संस्थापक थे जबकि उनके अनुयायी महावीर कई पीढ़ियों से उनसे छोटे थे और उन्हें मात्र सुधारक ही माना जा सकता है। गौतम (बुद्ध) के समय में ही पार्श्व द्वारा स्थापित निगन्थ (निर्ग्रन्थ) नाम से प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ एक पूर्व संस्थापित सम्प्रदाय था और बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार उसने बौद्धधर्म के उत्थान में अनेक बाधायें डालीं।¹⁴⁴

यूनान में एक नया सम्प्रदाय 600 ई.पू. में पैदा हुआ। जो कहा जाता है कि भगवान् पार्श्वनाथ के आशोर्वाद से बना। वे केवल सफेद वस्त्र धारण करते थे, अहिंसा पर विश्वास करते थे, ब्रह्मचर्य पर विश्वास करते थे, अपरिग्रह पर विश्वास करते थे, मांस भक्षण उन्होंने बन्द कर दिया था। यूनानी नाटककार ने उनके सम्बन्ध में लिखा है - "दे वर विजीटेबिल दे सुड वाथड डाउन इन द रीवर।" वे यूनानी दार्शनिक भारत आये और भारत आकर के यूनानी किंवदन्तियों के अनुसार उन्होंने भगवान् पार्श्वनाथ से साक्षात्कार किया था, साक्षत्कार करने के बाद वह लौटकर यूनान गये और यूनान जाकर उन्होंने भगवान् पार्श्वनाथ की शिक्षाओं का प्रचार किया।¹⁴⁵

उपर्युक्त विवेचन एवं जैन-जैन दार्शनिक विद्वानों के मतों से स्पष्ट है कि भगवान् पार्श्व जो कि जैन धर्म के तेईसवें तीर्थंकर थे, एक ऐतिहासिक महापुरुष थे। उनके सिद्धान्तों का गौतम बुद्ध और भगवान् महावीर पर व्यापक प्रभाव था जिसे बाद में उन्होंने कुछ सुधार करके जनहित और देशकाल को ध्यान में रखते हुए प्रचारित एवं प्रसारित किया था।" किसी भी व्यक्ति की ऐतिहासिकता परखने की कसौटी उस समय का साहित्य ही होता है और जबकि उस समय का साहित्य लुप्त प्राय हो तो परम्परा ग्रन्थों का अनुसरण किया जाता है," इस आधार पर जब हम जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य एवं देशी-विदेशी विद्वानों के शोध साहित्य का अध्ययन करते हैं तो हमें भगवान् पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

144 Harmswarth; History of the World, Vol. II, P. 1198.

145 पार्श्वज्योति (पाक्षिक) पृ. 5 वर्ष 2 अंक 11 (दि. 1 फरवरी 1987 ई.) में प्रकाशित महामहिम श्री विश्वदम्भरनाथ पाण्डे, राज्यपाल उड़ीसा का भाषण दि. 5 10-86 (अहिच्छन्ना महात्सव के अवसर पर)

बौद्ध साहित्य में भगवान पार्श्वनाथ :

दीघनिकाय के सामञ्जसलसुत्त में निगण्ठनातपुत्त (ज्ञातृपुत्र भगवान महावीर) का परिचय चातुर्याम संवर के उपदेशक के रूप में दिया गया है - निगण्ठ चार (प्रकार के) संवरों से संवृत (आच्छादित, संयत) रहता है। निगण्ठ चार संवरों से कैसे संवृत रहता है 1. निगण्ठ जल के व्यवहार का वारण करता है (जिसमें जल के जीव न मर जायें) 2. सभी पापों का वारण करता है, 3. सभी पापों का वारण करने से धृतपाप (पाप रहित) होता है, 4. सभी पापों के वारण करने में लगा रहता है। निगण्ठ इस प्रकार चार संवरों से संवृत रहता है, इसीलिए वह निर्ग्रन्थ, गतात्मा (अनिच्छुक), यतात्मा (संयमी) और स्थितात्मा कहलाता है¹⁴⁶

जैकोबी ने कहा है कि नातपुत्त के उपदेशों का यह सन्दर्भ बड़ा अस्पष्ट है¹⁴⁷ सामञ्जसलसुत्त में जो चातुर्याम संवर कहा गया है, ये जैनो की चार विशेषतायें हैं।¹⁴⁸ यथार्थ चातुर्याम संवर, जिसका पार्श्वनाथ की परम्परा से सम्बन्ध है, पालि आगमों में अन्यत्र उल्लिखित है।

बुद्ध के प्रश्न के उत्तर में असिबन्धक पुत्त गामिणी ने कहा था कि निर्ग्रन्थ नातपुत्त ने अपने श्रावकों को प्राणातिपात (हिंसा) अदत्तादान (चोरी) मिथ्या कामनायें तथा मृषाभणिति (झूठ बोलना) छोड़ने का उपदेश दिया था।¹⁴⁹

अंगुत्तरनिकाय में निगण्ठनातपुत्त ने पाप में गिरने के पाँच मार्ग बतलाए हैं - प्राणातिपात, अदत्तादान, अब्रह्मचर्य, मृषावाद तथा मादक पदार्थों का सेवन।¹⁵⁰

ये सन्दर्भ न तो सही रूप में और न क्रमिक रूप से लिखे गए हैं. निकाय पार्श्व नाथ और महावीर के व्रतों के विषय में भ्रमित हैं। पार्श्वनाथ की परम्परा में परिग्रह को चौथा पाप बतलाया गया था, जिसमें कि अब्रह्मचर्य सम्मिलित था, का उल्लेख निकायों में नहीं है, जबकि अब्रह्मचर्य, जिसे निगण्ठनापुत्त ने परिग्रह से पृथक् किया था; का उल्लेख यहाँ किया गया है।

146 दीघ निकाय - 1

147 जैन सूत्राज भाग - 2 (सेक्रिट बुक ऑफ द इस्ट) भूमिका, पृ. 20-21

148 संयुत निकाय - 4

149 दीघ निकाय - 1

150 अंगुत्तर निकाय - 3



पालि आगमों में निगण्ठनातपुत्र का वयोवृद्ध तीर्थिक के रूप में उल्लेख है। ये पार्श्वनाथ की परम्परा की कुछ विशेषताओं से भी परिचित हैं।

जैनों के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ, जो कि महावीर या निगण्ठनातपुत्र से 250 वर्ष पूर्व बनारस में हुए, राजा अश्वसेन और उनकी रानी वामा से बनारस में जन्मे थे। उन्होंने सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त किया। सम्मेदशिखर को आजकल पारस नाथ पर्वत कहते हैं।¹⁵¹ जातकों में वाराणसी के ब्रह्मदत्त, उगगसेन, धनञ्जय, संयम, विरससेन तथा उदयभद्र राजाओं का वर्णन है।¹⁵² पार्श्वनाथ उग्रवंश के थे, उग्रवंश का नामकरण उगगसेन के नाम पर किया गया होगा। विस्ससेन की पहिचान भगवान पार्श्वनाथ के पिता अश्वसेन से की जा सकती है। ब्रह्मदत्त भी जैन राजा था, जिसने अपना सारा जीवन जैनधर्म के लिए समर्पित किया। वप्प (मनोरथपूरणी) जो कि बुद्ध के चाचा थे, पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी थे।

पालि साहित्य से जैन धर्म के विभिन्न सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त होता है। ये सिद्धान्त अधिक प्राचीन न माने जायें, तो भी इनका सम्बन्ध पार्श्वनाथ और अरिष्टनेमि से है। अंगुत्तर निकाय में पार्श्वनाथ को पुरिसाजानीय (The distinguished man) के रूप में जाना गया है। 'धर्मोत्तर प्रदीप' में भी पार्श्वनाथ और अरिष्टनेमि का उल्लेख है। चातुर्यामसंवर जो कि सामञ्जफलसुत्त में निगण्ठनाथपुत्त का कहा गया है, यथार्थ में पार्श्वनाथ का उपदेश है। कुछ निगण्ठ, जिनका पालि साहित्य में निर्देश है, प्रत्यक्ष रूप से पार्श्वनाथ के अनुयायी हैं। उदाहरणार्थ- वप्प¹⁵³, उपालि¹⁵⁴, अभय¹⁵⁵, अग्निवेस्सायन सच्चक¹⁵⁶, दीघतपस्सी¹⁵⁷, असिबन्धकपुत्त गोमिनी¹⁵⁸, देवनिक¹⁵⁹,

151 महावंश - 10

152 अंगुत्तर निकाय - 1

153 अंगुत्तर निकाय - 2

154 मज्झिम निकाय - 1

155 वही

156 वही

157 वही

158 संयुत्त निकाय - 4

159 निक या निख एक ही देव है जो अनेक देवों के साथ बुद्ध के पास जाता है और निगण्ठनातपुत्त की प्रशंसा में एक गीत गाता है।

उपतिक्ख¹⁶⁰, सीह¹⁶¹, श्रावक हैं, जबकि सच्चा, तोला अववादिका तथा पटचारा¹⁶² इत्यादि पार्श्वनाथ की परम्परा की श्राविकायें हैं। बाद में ये निगण्ट नातपुत्त¹⁶³ के अनुयायी हो गए।

शाक्यों का राजनैतिक रूप से स्वतन्त्र अस्तित्व था। कपिलवस्तु बुद्ध की जन्म भूमि थी, किन्तु शाक्य उनके सिद्धान्तों के अधिक पक्ष में नहीं थे। दूसरी ओर यहाँ जैन धर्म काफ़ी लोकप्रिय था, क्योंकि बुद्ध के माता-पिता और उनके आदमी पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी थे किन्तु बुद्ध और उनके अनुयायियों ने प्रयास किया कि लोग अपना धर्मपरिवर्तन कर लें। महानाम, जो कि सम्भवतः बुद्ध का सम्बन्धी निगण्टनातपुत्त के धर्म का अनुयायी था, से बुद्ध ने कृच्छ्र साधना की व्यर्थता का वर्णन करते हुए उसके धर्मपरिवर्तन का प्रयास किया। यथार्थ में वे ऐसा करने में सफल भी हो गए। चूलदुक्खवर्खंध सुत्त तथा सेख सुत्त का महानाम के मध्य प्रचार किया गया।

जैन स्रोतों से ज्ञात होता है कि विजय द्वारा आर्यीकरण किए जाने के पूर्व लङ्का में यक्ष और राक्षस रहते थे। वे मानव थे, उनकी अति विकसित सम्यता थी और वे जैन थे।¹⁶⁴ विविधतीर्थकल्प से ज्ञात होता है कि लङ्का की किष्किन्धानगरी के त्रिकूटगिरि पर एक भव्य जैन मन्दिर था, इसे रावण ने अलौकिक शक्ति प्राप्त करने हेतु बनवाया था। रावण ने अपनी पट्टरानी मन्दोदरी की इच्छा के अनुसार जवाहरातों की एक जैन मूर्ति बनवाई थी। ऐसा कहा जाता है कि रामचंद्र से रावण के हारने पर यह समुद्र में फेंक दी गई। कन्नड़ प्रदेश के कल्याणनगर के राजा शंकर को यह बात मालूम हुई। उसने जैनों की प्रमुख देवी पद्मावती की सहायता से इस मूर्ति को निकाला।¹⁶⁵

ऐसा कहा जाता है कि पार्श्वनाथ की वह मूर्ति, जिसकी आज भी श्रीपुर अन्तरिक्ष में पूजा होती है, को माली और सुमाली विद्याधर लङ्का से लाए

160 महावग

161 संयुत्तनिकाय - 1

162 जातिक - 3

163 पश्चिम निकाय - 1

164 हरिवंश पुराण, पद्मचरित आदि।

165 विविधतीर्थ कल्प पृ. 93

थे।¹⁶⁶ तेजपुर की गुफा में जो पार्श्वनाथ की प्रतिमा है, उसके विषय में भी कहा जाता है कि उसे लङ्का से लाया गया था।¹⁶⁷ 'करकण्डुचरित' में इस बात का वर्णन है कि कैसे मलय के जैन राजा अमितवेग ने रावण के घनिष्ठ मित्र के रूप में लंकाद्वीप का भ्रमण किया। रावण ने मलय में एक जैन मन्दिर बनवाया था।¹⁶⁸ इस मलय की पहिचान लङ्का के मध्य पर्वतीय देश मलाया से हो सकती है।

आचार्य देवसेन (8वीं शती) ने कहा है कि बुद्ध मुनि पिहितास्रव के बड़े विद्वान शिष्य थे। इनका नाम उन्होंने बुद्धकीर्ति रखा था। पिहितास्रव पार्श्वनाथ की परम्परा के संघ के मुनि थे। कुछ समय बाद बुद्ध ने कच्चा मांस और मरी हुई मछलियाँ खाना शुरू कर दीं और गेरुआ वस्त्र धारण कर लिए तथा अपने निजी धर्म का यह कहकर प्रचार किया कि इस प्रकार का भोजन करने में कोई हानि नहीं है।¹⁶⁹

यद्यपि उपर्युक्त तथ्य की किसी बौद्ध ग्रन्थ में स्वीकृति नहीं है, तथापि बुद्ध की 6 वर्ष की तपस्या के विवरण से इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि वे जैन सिद्धान्तों से प्रभावित थे। इस बात की भी सम्भावना है कि बुद्ध का मांसाहार के प्रति दृष्टिकोण तथा मानवीय व्यवहारों पर जैनों का कठोर नियन्त्रण आदि ने बुद्ध को एक नया धर्म चलाने हेतु प्रेरित किया हो, जहाँ कि अत्यधिक आत्मनियन्त्रण को व्यर्थ सिद्ध किया गया है।

दीर्घ निकाय के सामज्यफलसुत्त में चातुर्याम संवर का निगण्ठनातपुत्त के उपदेशों के अङ्ग के रूप में जो उल्लेख किया गया है, वही सही उल्लेख नहीं है। चातुर्याम संवर पार्श्वनाथ का है, निगण्ठनात पुत्त का नहीं है। पार्श्वनाथ के चार व्रतों का निगण्ठनातपुत्त ने संशोधन किया। उन्होंने चार व्रतों के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य का नाम अलग जोड़ा। इस प्रकार निगण्ठनातपुत्त ने पंचयाम धर्म चलाया।¹⁷⁰ बौद्ध लोग इस नवीनीकरण से बेखबर थे। उन्होंने पार्श्वनाथ के चातुर्याम संवर को निगण्ठनातपुत्त का समझा। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि कुशील, जिसे परिग्रह से पृथक् किया गया था, जिसे पालि में

166 वही 102

167 हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश पृ. 200

168 करकण्डुचरित पृ. 44-69

169 दर्शनसार 6-9

170 ठाणांग 4/1 (टीका)

“कामोसुमिच्छाचरति” कहा गया है, का चार संवरों में उल्लेख किया गया है। इसका तात्पर्य है कि बौद्ध लोग निगण्ठनातपुत्त ने पार्श्वनाथ के धर्म में जो सुधार किया था, उससे परिचित थे। यथार्थ में कुशील ने परिग्रह का स्थान नहीं लिया था अपितु कुशील को अलग से जोड़ा गया था, जिसे स्पष्टतया बौद्ध नहीं समझ सके।

जैन धर्म में पाँच व्रतों का सन्दर्भ अंगुत्तर निकाय में है।¹⁷¹ इसमें निर्देश है कि निगण्ठनातपुत्त ने पाप में पड़ने के पाँच मार्ग बतलाये हैं :

1. प्राणातिपात, 2. अदत्तादान, 3. अब्रह्मचर्य, 4. मृपावाद, 5. सुरामैरियमद्यप्रमादस्थान।

यह भी आंशिक सत्य है। पहले चार पाप सही कहे गए हैं, यद्यपि वे जैन क्रम से नहीं हैं। पाँचवाँ परिग्रह है, जिसका उल्लेख किया जाना चाहिए था।

जैन नीतिकार के अनुसार -

“सुरामैरियमद्यप्रमादस्थान” द्विसा का ही रूप है, अलग श्रेणी नहीं। इस प्रकार इस क्रम में परिग्रह छूट गया है।

ये उल्लेख दो निष्कर्षों पर पहुँचाते हैं :-

1. पार्श्वनाथ की परम्परा में चार व्रत थे।
2. निगण्ठनातपुत्त ने अन्तिम का विभाजन अपरिग्रह और अकुशील के रूप में किया।

पालि उल्लेखों में दो दोष हैं :

1. व्रतों के नाम जैनों के पारम्परिक क्रम के अनुसार नहीं दिए गए हैं।
2. परिग्रह, जो कि अन्तिम पाप है, पालि साहित्य में उपेक्षित है। पालि त्रिपिटकों के सम्पादक या तो निगण्ठनातपुत्त के सुधार से परिचित नहीं थे अथवा उन्होंने उसे अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझा।

सारे पालि प्रसंगों में परिग्रह की भूल उल्लेखनीय है। भारतीय नीतिशास्त्र में परिग्रह त्याग का योग जैनों का महत्वपूर्ण योगदान है। यह एक नया विचार था, जो पहले-पहल पार्श्वनाथ के सिद्धान्तों में जोड़ा गया।

जैकोबी ने कहा है - बौद्धों ने नातपुत्त महावीर के सिद्धान्तों का वर्णन करने में भूल की है, सम्भवतः ये महावीर के पूर्ववर्ती पार्श्वके सिद्धान्त थे। यह

ठहरेखनीय भूल है ; क्योंकि बौद्ध इन शब्दों का प्रयोग निगण्ठों के धर्म के वर्णन के समय नहीं कर सकते थे, यदि उन्हें यह सिद्धान्त पार्श्वनाथ के अनुयायियों से सुनने को न मिलते और बुद्ध के स्थान महावीर द्वारा किए गए सुधारों को निगण्ठ अपना लेते तो बौद्ध (पार्श्वनाथ के उपदेशों का निगण्ठों के धर्म के रूप में) इनका प्रयोग न करते¹⁷² :-

"The Buddhists, I suppose have made a mistake in ascribing to Natputta Mahaviras doctrine which probably belonged to his predecessor Parshwa. This is significant mistake: for the Buddhists could not have used the above term as descriptive of Nigantha creed unless they had heard it from followers of Parshwa, and they would not have used it if the reformers of Mahavira had already generally adopted by the Niganthas at the time of Buddha."

निकायों में सच्चक का इस रूप में वर्णन है कि वह शास्त्रार्थों में लगा रहता है। वह विरोधी विद्वान था, जिसकी सामान्य व्यक्ति अत्यधिक प्रशंसा करते थे।¹⁷³ उसने सारे छह तीर्थंकरों के साथ शास्त्रार्थ किया था, जिसमें निगण्ठ नातपुत्र महावीर भी सम्मिलित थे। यद्यपि सच्चक निगण्ठ नातपुत्र का सुदृढ़ अनुयायी था। इससे प्रकट है कि वह पार्श्वनाथ की परम्परा का अनुयायी था। चूंकि निगण्ठ नातपुत्र जैन धर्म के तीर्थंकर हुए, अतः सच्चक ने उनसे वार्तालाप कर उनका परीक्षण किया होगा, तब उनका धर्म स्वीकार कर लिया होगा।¹⁷⁴

एक स्थान पर बुद्ध ने महानाम से कहा था कि उन्होंने राजगृह की ऋषिगिरि काल शिला पर निर्ग्रन्थों की कृच्छ्र तप करते हुए देखा था। तब उन्होंने उनसे कहा - आप लोग ऐसा क्यों करते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि निर्ग्रन्थ नातपुत्र सर्वज्ञ हैं और उन्होंने कहा था कि कृच्छ्र तप के द्वारा समस्त पूर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं और नए कर्मों का आगमन रुक जाता है। इस मार्ग से वे मुक्ति प्राप्त करेंगे। तब बुद्ध ने उनसे पूछा - क्या आप सब अपना और अपने कर्मों का भूत और भविष्य जानते हैं? आप सब लोग नहीं जानते हैं कि आपने किस प्रकार के पाप किए हैं? आप नहीं जानते हैं कि मन की

172 जैन एण्टीक्वेरी, भाग-13, नं. 2, पृ. 2

173 मण्डिम निकाय 1

174 वही 23

अज्ञान अवस्थाओं से आप कैसे छुटकारा पा सकते हैं और ज्ञान की अवस्थाओं का उत्कर्ष कैसे कर सकते हैं। उनसे निषेधात्मक उत्तर प्राप्त कर बुद्ध ने कहा था¹⁷⁵ :-

वे निर्ग्रन्थ, जिन्हें बुद्ध ने ऋषिगिरि काल शिला पर कृच्छ्र तप करते हुए देखा था, पूर्व परम्परा के पार्श्वनाथ के अनुयायी होना चाहिए। सम्पूर्ण जैन परम्परा यह मानती है कि जैन तीर्थंकर सर्वज्ञ हुए हैं, इसके अतिरिक्त वे अन्यो की सर्वज्ञता का निषेध करते रहे हैं। 'भगवती सूत्र' में कहा है कि पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायियों ने निगण्ठनातपुत्र को तब तक तीर्थंकर स्वीकार नहीं किया, जब तक वह सिद्ध नहीं हो गया कि वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं।¹⁷⁶

'मज्झिम निकाय' में दीघनख का उल्लेख आता है, जो तीन प्रकार के सिद्धान्तों को मानता था¹⁷⁷ :-

1. सब्बं मे खमति (मैं सब (विचारों) से सहमत हूँ)
2. सब्बं मे न खमति (मैं सब (विचारों) से सहमत नहीं हूँ)
3. एकच्चं मे खमति, एकच्चं मे न खमति (मैं कुछ विचारों से सहमत हूँ और दूसरे विचारों से सहमत नहीं हूँ)

बुद्ध दीघनख के विचारों की विभिन्न प्रकार से आलोचना करते हैं और समस्या के प्रति अपने विचार व्यक्त करते हैं। दीघनख के विचार स्याद्वाद के भङ्ग हैं और प्रथम तीन भङ्गों का इस प्रकार प्रतिनिधित्व करते हैं -

सब्बं मे खमति - स्यादस्ति ।

सब्बं मे न खमति - स्यान्नास्ति ।

एकच्चं मे खमति एकच्चं मे न खमति - स्यादस्तिनास्ति ।

समस्या यह विचार करने की है कि दीघनख किसी विचारधारा से सम्बन्धित था। मज्झिम निकाय की टीका के अनुसार वह उच्छेदवाद¹⁷⁸ के विचारों का था, जो कि बुद्धघोष की दृष्टि से स्याद्वाद का भाग है। वह संजय के परिव्राजकों के मत का हो सकता है, जो कि पार्श्वनाथ की परम्परा के थे

175 जैतिज्म इन बुद्धिस्ट लिट्रैचर, पृ. 148

176 वही पृ. 150

177 मज्झिम निकाय . 1

178 मज्झिम निकाय अट्टकथा

और बाद में नातपुत्र के धर्म में परिवर्तित हो गए थे। अब तक ये बौद्ध नहीं बने थे।¹⁷⁹ दीघनख संजय का भान्जा था। अतः यह प्रतीत होता है कि वह जैन धर्मानुयायी था। इस अनुमान की पुष्टि हो सकती है, यदि यह सिद्ध हो जाय कि उसकी मज्झिम निकाय के उपालिसुत्त के “दीघतपस्सी” से एकरूपता हो जाय, जो कि निगण्ठ नात पुत्र का अनुयायी था।

उत्तराध्ययन सूत्र में वर्णित भगवान पार्श्वनाथ :

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में दार्शनिक, नैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि सिद्धान्तों के प्रतिपादन पर विचार-विमर्श करने हेतु वाद-विवाद आयोजित होते थे। वाद-विवादों की सम्पन्नता हेतु भिक्षु (साधु) अपने शिष्यों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान तक भ्रमण करते थे। “उत्तराध्ययन सूत्र” के 23वें अध्याय (अध्याय) से इस कथन की पुष्टि होती है। उत्तराध्ययन सूत्र के 23वें अध्याय में भ. पार्श्वनाथ के शिष्य केशी और भ. महावीर के शिष्य गौतम के संवाद का वर्णन किया गया है। इसी ग्रन्थ के अनुसार केशी और गौतम श्रावस्ती नगर के तिन्दुक नामक उद्यान में मिले। जिज्ञासावश श्रावक तथा दूसरे अन्य लोग दोनों के संवाद को सुनने हेतु एकत्रित हुए। संवाद का अभिप्राय भ. पार्श्व और भ. महावीर इन दोनों परम्पराओं के अनुयायियों को धर्म के मूल सिद्धान्तों के विषय में प्रतिबुद्ध करना था। पार्श्वनाथ चातुर्याम धर्म के प्रचारक माने गये हैं। ये चार धर्म हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह। इन चार व्रतों में भ. महावीर ने एक पाँचवाँ ब्रह्मचर्य भी जोड़ दिया। यह उत्तराध्ययन सूत्र के निम्नलिखित सूत्र से स्पष्ट है -

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।

देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥¹⁸⁰

अर्थात् जो चातुर्याम धर्म है, उसका प्रतिपादन महामुनि पार्श्व ने किया है और यह जो पंच शिक्षात्मक धर्म है, उसका प्रतिपादन महामुनि वर्धमान ने किया है।

179 मज्झिम निकाय टीका।

180 उत्तराध्ययन सूत्र 23/12



आचाराङ्ग सूत्र¹⁸¹ के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि महावीर के माता-पिता पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म का पालन करते थे। यहाँ पर “याम” शब्द महाव्रत के अर्थ में प्रयोग किया गया है। बाद में हम पाते हैं कि “योगदर्शन” में यह शब्द आठ व्रतों की गणना में प्रथम स्थान रखता है। इस प्रकार “यम” शब्द जैन साहित्य से योग दर्शन में प्रविष्ट हुआ है। “याम” शब्द संस्कृत भाषा की यम् धातु से बना है, जिसका अर्थ नियन्त्रण या रोक है। अतः हिंसा, झूठ, चोरी और परिग्रह पर नियन्त्रण या रोक ही चातुर्याम धर्म माना गया।

डॉ. जेकोबी का मत है कि पालि चातुर्याम प्राकृत चाउज्जाम ही है तथा बौद्ध परम्परा में यह पार्श्वनाथ की परम्परा से आया। बाद में महावीर ने अपने अनुयायियों के अनैतिक कार्यों के कारण ब्रह्मचर्यव्रत को और जोड़ा आचारांग¹⁸² से भी हमें भ. महावीर के केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद पंचमहाव्रतों के देने की भी पुष्टि होती है।

वृहद्कल्पभाष्य में कहा गया है कि बौद्ध भिक्षुओं ने साध्वियों का अपहरण किया। इस प्रकार के व्यवहारों से हो सकता है पाँचवाँ व्रत ब्रह्मचर्य जोड़ने की आवश्यकता पड़ी हो। केशी तथा गौतम के संवाद के मध्य गौतम ने यह कहा कि प्रथम तीर्थंकर के अनुयायी ऋजु तथा जड़ थे, किन्तु महावीर के अनुयायी वक्र जड़ थे। इसी कारण व्रतों की संख्या में भिन्नता है :

पुरिमा उज्जुजडा उ वंक्रजडा य पच्छिमा ।

मज्झिमा उज्जुन्नाउ तेण धम्मो दुहा कए ॥¹⁸³

केशी तथा गौतम का यह संवाद स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है कि सिद्धान्तों के विषय में पूरी तरह से विचार-विमर्श होने के बाद पार्श्वनाथ के अनुयायी केशी ने महावीर के 5 व्रतों को अपनाया। इस प्रकार पार्श्वनाथ की परम्परा के शिष्य महावीर के शिष्यों के साथ मिले। यह कथन इस प्रकार हुआ है -

181 आचारांग सूत्र 11/16

182 वही 2 15, 10 24

183 उत्तराध्ययन सूत्र 23/26



पंचमहव्वयधम्मं पडिवज्जइ भावओ ।

पुरिमस्स पच्छिमंमी, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥184

दूसरी शंका यह थी कि पार्श्वनाथ ने अपनी परम्परा के साधुओं को वस्त्र पहनने की अनुमति दी थी, किन्तु महावीर ने इसका निषेध किया था :

अचेलगो य जो धम्मो जो इमो सन्तरुसरो ।

देसिओ वद्धमाणेण पासेण य महामुणी॥185

हम अचेलक तथा निर्ग्रन्थ में भेद कर सकते हैं। अचेलक वस्त्रों से रहित को कहते हैं, किन्तु निर्ग्रन्थ वह है जो कुछ भी नहीं रखता है। ग्रन्थ शब्द चौदह मार्गणाओं का द्योतक है। इसी के अन्तर्गत वस्त्र धारण करना भी परिगणित नहीं है। निर्ग्रन्थ अचेलक हो, ऐसा आवश्यक नहीं। संवाद के मध्य पुनः नग्नता के विषय में महावीर के शिष्य गौतम का स्पष्ट उत्तर नहीं है। वह कहते हैं कि भिन्न-भिन्न प्रकार के बाह्य चिह्न इसलिए रखे गये हैं कि लोग उन्हें विशेष रूप से पहचान सकें। यह विशेषतायें धार्मिक जीवन की उपयोगिता तथा उनके विशिष्ट चरित्रों पर निर्भर हैं -

पच्चयत्थं च लोगस्स नाणाविह विगप्पणं ।

जत्तत्थं गहणत्थं च लोगे लिंगप्पओयणं ॥186

पुनः यह निश्चित किया गया कि बाह्य चिह्न मुक्ति के मार्ग न होकर ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य ही मुक्ति के मार्ग हैं -

अह भवे पइन्ना उ मोक्खसब्भूयसाहणे ।

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं चेव निच्छए ॥187

इस प्रकार केशी और गौतम का यह संवाद भ. पार्श्वनाथ की धार्मिक शिक्षाओं पर प्रकाश डालता है। जैनधर्म के मौलिक रूप को समझने में यह अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त भ. पार्श्वनाथ के इन धर्मों का अध्ययन जैन सम्प्रदाय के प्रारम्भिक चित्र को संक्षिप्त रूप में समझने में सहायक है।

184 उत्तराध्ययन सूत्र 23/87

185 वही 23/29

186 वही 23/32

187 वही 23/33

कल्पसूत्र में वर्णित भगवान पार्श्वनाथ :

श्रुतकेवली भद्रबाहुराचत "कल्पसूत्र" ग्रन्थ में वैसे तो मुख्य रूप से भ. महावीर के जीवन चरित का ही वर्णन है, किन्तु भ. महावीर की पूर्व परम्परा में भ. पार्श्वनाथ का भी संक्षिप्त जीवन चरित्र इसमें वर्णित है। वर्णन इस प्रकार है -

भगवान पार्श्वनाथ के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान एवं मोक्ष ये पाँचों कल्याणक विशाखा नक्षत्र में ही हुए थे, इसलिए वे पंच विशाखा वाले कहलाते थे। भ. पार्श्व का जन्म चैत्र कृष्ण चतुर्थी के दिन वाराणसी नगरी के राजा अश्वसेन की रानी वामादेवी के गर्भ से हुआ था। यह जीव प्राणत कल्प से चयकर आया था। भ. पार्श्व जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी थे, वे माता के गर्भ में नौ माह साढ़े सात रात दिन रहे थे। तीस वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहने के बाद पौष कृष्ण एकादशी के दिन विशाला नामक शिविका में बैठकर देवों, मनुष्यों एवं असुरों के साथ जाकर उन्होंने आश्रमपदनामक उद्यान की ओर अशोक वृक्ष के नीचे पंचमुष्टि केशलोच किया और एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर तीन सौ पुरुषों के साथ अनगर अवस्था को प्राप्त किया। उन्होंने तप काल के 83 दिनों तक विभिन्न उपसर्गों को सहन करते हुए 84 वें दिन चैत्र कृष्ण चतुर्थी को पूर्वाह्न में आंवले (घातको) के वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान को प्राप्त किया।

भ. पार्श्वनाथ के आठ गणधर थे - 1. शुंभ, 2. अज्जघोष (आर्यघोष), 3. बसिष्ठ, 4. ब्रह्मचारी, 5. सोम, 6. श्रीधर, 7. वीरभद्र तथा 8. यश। आर्यदत्त आदि सोलह हजार श्रमण साधु थे, पुष्पचूला आदि 38 हजार आर्यिकायें थीं, सुनन्द आदि एक लाख चौंसठ हजार श्रमणोपासक थे, सुनन्दा आदि तीन लाख सत्ताईस हजार श्रमणोपासिकायें थीं। 14 पूर्वधारी, चौदह सौ अवधिज्ञानी एक हजार केवलज्ञानी, ग्यारह सौ वैक्रियक लब्धि वाले, छह सौ ऋजुमति ज्ञान वाले थे। भ. पार्श्व के संघस्थ एक हजार श्रमण और दो हजार आर्यिकायें सिद्ध हुई। साढ़े सात सौ विपुल मत्तियों की, छह सौ वादियों की, बारह सौ अनुत्तर विमान में जाने वालों की संख्या भगवान पार्श्व के संघ में थी।

भ. पार्श्वनाथ के समय में चतुर्थ युगपुरुष तक युगान्तकृतभूमि थी अर्थात् चतुर्थ पुरुष तक मुक्ति मार्ग चला था। उनको केवलज्ञान हुए तीन वर्ष व्यतीत

होने पर किसी साधक ने मुक्ति प्राप्त की, यह उनके समय की पर्यायान्तकृत भूमि थी।

भ. पार्श्वनाथ तीस वर्ष गृहवास करके 83 रात्रि-दिन छद्मस्थ पर्याय में रह करके कुछ कम सत्तर वर्ष तक केवलीपर्याय में रहकर कुल सौ वर्ष अपनी आयु पूर्णकर दुष्म-सुष्म नामक अवसरिणी काल के बहुत बीत जाने पर श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन सम्पेद शिखर पर्वत से, अपने सहित चौंतीस (34) पुरुषों के साथ मासिक भक्त का अनशन कर पूर्वाह्न के समय ध्यानमुद्रा में मुक्ति को प्राप्त हुए।

कल्पसूत्र और पासणाहचरिउ में असमानता :

श्रुतकेवली भद्रबाहु रचित "कल्पसूत्र" और महाकवि रङ्गू द्वारा रचित "पासणाहचरिउ" में यद्यपि अधिकांश समानतायें भ. पार्श्वनाथ के सन्दर्भ में मिलती हैं, किन्तु कुछ असमानतायें भी हैं, जो इस प्रकार हैं :

'कल्पसूत्र' के अनुसार पार्श्व का जीव प्राणत कल्प से माता वामा देवी के गर्भ में अवतरित हुआ था,¹⁸⁸ जबकि 'पासणाहचरिउ' के अनुसार वह वैजयन्त स्वर्ग से अवतरित हुए थे।¹⁸⁹ इसी में आगे इस जीव का चौदहवें स्वर्ग में देव होने का भी उल्लेख है।¹⁹⁰ 'तत्त्वार्थसूत्र' के अनुसार चौदहवां स्वर्ग प्राणत ही है।¹⁹¹

"कल्पसूत्र" के अनुसार भ. पार्श्व का जन्म पौषमास के कृष्णपक्ष की दशमी के दिन सन्धिबेला अर्थात् जब रात्रि का पूर्वभाग समाप्त और पिछला भाग प्रारम्भ होने जा रहा था, हुआ।¹⁹² जबकि 'पासणाहचरिउ' के अनुसार भ. पार्श्व का जन्म पौषमास के कृष्णपक्ष की एकादशी के दिन हुआ।¹⁹³ (यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि जन्म तिथि की भ्रान्ति इस कारण हुई हो क्योंकि जहाँ कल्पसूत्रकार ने जन्म के समय रात्रि का पिछला भाग प्रारम्भ होने जा रहा था, ऐसा मानकर दशमी को स्वीकार किया, वहीं रङ्गू ने रात्रि के पिछले भाग में ही जन्म होना मानते हुए एकादशी को जन्म तिथि माना हो)

188 कल्पसूत्र 149

189 रङ्गू : पासणाहचरिउ 2/5-3

190 वही, पन्ना 125

191 तत्त्वार्थसूत्र 4/19

192 कल्पसूत्र 151

193 रङ्गू, पासणाहचरिउ 2/5-11



“कल्पसूत्र” में दीक्षा हेतु ले जाने वाली शिविका (पालकी) का नाम विशाला बताया है¹⁹⁴, जबकि “पासणाहचरित” में शिविका का नामोल्लेख नहीं है।¹⁹⁵

“कल्पसूत्र” के अनुसार भ. पार्श्व को दीक्षा हेतु वाराणसी नगरी के मध्य से निकलते हुए आश्रमपद नामक उद्यान की ओर अशोक वृक्ष के नीचे ले जाया गया¹⁹⁶, जबकि “पासणाहचरित” के अनुसार अहिच्छत्रानगर ले जाया गया,¹⁹⁷ ऐसा उल्लेख है।

“कल्पसूत्र” के अनुसार भ. पार्श्व ने एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर अनगर अवस्था को प्राप्त किया¹⁹⁸, जबकि “पासणाहचरित” में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है।¹⁹⁹

“कल्पसूत्र” में दीक्षातिथि पौषकृष्ण एकादशी का उल्लेख है²⁰⁰, जबकि पासणाहचरित में मात्र पौषमास की दशमी का उल्लेख है, पक्ष का नहीं²⁰¹

“कल्पसूत्र” में भ. पार्श्व के द्वारा उपसर्ग सहने का तो उल्लेख है किन्तु उपसर्गकर्ता के नाम का उल्लेख नहीं²⁰², जबकि “पासणाहचरित” में उपसर्गकर्ता का नाम संवरदेव आया है।²⁰³

“कल्पसूत्र” के अनुसार भ. पार्श्वनाथ के प्रथम गणधर का नाम सुंभ है²⁰⁴, जबकि “पासणाहचरित” के अनुसार प्रथम गणधर का नाम संभु (स्वयम्भू) है।²⁰⁵

“कल्पसूत्र” के अनुसार भ. पार्श्व के आठ गणधर थे²⁰⁶, जबकि “पासणाहचरित” के अनुसार उनकी संख्या दस थी²⁰⁷

194 कल्पसूत्र 153

195 रडधू : पास. 4/1-6

196 कल्पसूत्र 153

197 रडधू : पास. 4/1 7

198 कल्पसूत्र 153

199 रडधू : पास. 4/1

200 कल्पसूत्र 153

201 रडधू : पास. घत्ता 53

202 कल्पसूत्र 154

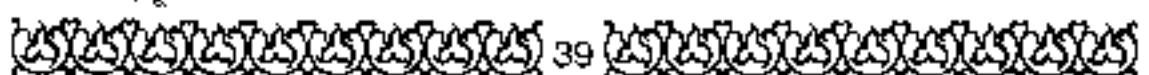
203 रडधू : पास. 4/7

204 कल्पसूत्र 156

205 रडधू : पास. 4/20-1

206 कल्पसूत्र 156

207 रडधू : पास. 7/2 6





“कल्पसूत्र” के अनुसार आर्यिका प्रधान पुष्पचूला थी²⁰⁸, जबकि ‘पासणाहचरिउ’ के अनुसार उसका नाम प्रभावती था²⁰⁹

“कल्पसूत्र” के अनुसार भ. पार्श्वनाथ ने श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन निर्वाण प्राप्त किया²¹⁰, जबकि ‘पासणाहचरिउ’ के अनुसार उन्होंने श्रावणशुक्ला सप्तमी के दिन निर्वाण प्राप्त किया²¹¹

‘कल्पसूत्र’ और ‘पासणाहचरिउ’ (रइधू) के आधार पर भ. पार्श्वनाथ के मंघ की तुलना :

पद का नाम	कल्पसूत्र ²¹²	पासणाहचरिउ ²¹³
साधु	16000	1800
पूर्वधर	350	414
अवधिज्ञानी	1400	1500
केवली	1000	21500
विक्रियाधारी	1100	4500
विपुलमतिधारी	750	900
		(मनःपर्यय)
श्रुतज्ञानी	-	-
धादि	600	-
आर्यिका	38000	38000
श्रावक	164000	100000
श्राविका	327000	300000
भुक्त स्थान को प्राप्त करने वाली स्त्रियाँ	-	1090
कुल योग	540200	470504

208 कल्पसूत्र 157

209 रइधू : पास. 4/20 5

210 कल्पसूत्र 159

211 रइधू : पास. 7/3-7

212 कल्पसूत्र 157

213 रइधू : पास. 7/2

द्वितीय परिच्छेद

पासणाहचरित का परिचय

पासणाहचरित के रचयिता रङ्गधू :

“पासणाहचरित” के रचयिता महाकवि रङ्गधू हैं, यह बात निर्ववाद है। महाकवि रङ्गधू ने अपनी सभी रचनायें अपभ्रंश भाषा में लिखीं। यदि अपभ्रंश साहित्य का सम्यक् प्रकार से निरीक्षण किया जाय तो जिस प्रकार की साहित्यिकता, लालित्य, माधुर्य, शब्द शक्तियों का समावेश, अलंकारों की छटा, छन्दों की विविधता, पात्रों के चरित्र-चित्रण में काल्पनिकता से भी अधिक ऐतिहासिकता एवं चरित्रोत्थान की भावना सरल भाषा शैली का समावेश महाकवि रङ्गधू के साहित्य में मिलता है, उसके आगे अन्य कवि रचनाकर वामन के समान दिखाई देने लगते हैं। वास्तव में साहित्य की प्रचुरता और विषय-वैविध्य का जो सागर कवि के साथ जुड़ा हुआ है उसके आगे यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो रङ्गधू ने अन्य सभी कवियों लेखकों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। महाकवि रङ्गधू अपभ्रंश साहित्याकाश में एक ऐसे सूर्यवत् सफल रचनाकार हैं, जिन्होंने श्रमण संस्कृति के पावन सिद्धान्तों रूपी अमृत प्रवाह को अपनी रसीली लेखनी से प्रवाहमान बनाया है। यदि उनकी रचनाओं को देखा जाए तो उनके व्यक्तित्व में हमें दार्शनिक, प्रबन्धकार, आचार शास्त्रवेत्ता-प्रणेता, सृजेता, राजनीति के ज्ञाता एवं समय के साथ चलते हुए भी समय से ऊपर उठने-उठाने की शक्ति के शुभ लक्षणों का समायोजन मिलता है।

महाकवि रङ्गधू के प्रमुख प्रबन्धात्मक आख्यानो में से “पासणाहचरित” भी एक ऐसी महान रचना है, जिसमें एक साथ ही राजनीति का चक्र, जैन सिद्धान्तों की गंगा, विषयों की विविधता, भाषा का सौष्ठव, नीतिपरक सूक्तियों का आधिक्य, पात्रों में समन्वय, न्याय की अन्याय पर विजय, भोग से त्याग का निदर्शन, समकालीन एवं तत्कालीन नीतियों का नियमन, निरीह प्राणियों के प्रति सहिष्णुता, कला एवं संस्कृति आदि के विभिन्न काव्योचित अपरिहार्य तत्वों का समुचित समावेश किया गया है।

जीवन-परिचय :

यदि प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य पर दृष्टि डालें तो प्रायः यह पाया जाता है कि उसमें लेखकों ने अपना परिचय या तो बिल्कुल ही नहीं दिया है और यदि दिया भी है तो वह भी अपूर्ण या क्रमशः न होने के कारण भ्रान्ति ही पैदा करता है। वैसे भी पुराकालीन लेखकों ने आत्म प्रशंसा से दूर हटकर अपने काव्य में वर्णित चरित्र का प्रतिपादन करना ही अपना ध्येय समझा और स्वयं से दूर रहकर उसी की पूर्णता में लगे रहे। कवियों के जीवन चरित के विषय में उनकी यही वृत्ति बाधक बनी है। प्रायः देखा जाता है कि ऐतिहासिक मनीषियों, व्यक्तित्वों के सम्बन्ध में सिक्कों, शिलालेखों, दानपत्रों, ऐतिहासिक गजटों आदि से उल्लेख मिल जाता है। राज्याश्रित कवियों का उल्लेख करके आश्रयदाता राजाओं के जीवन की घटनाओं से परिचय मिल जाता है, लेकिन आत्म प्रशंसा से मुख मोड़े रहने वाले भक्त कवियों के विषय में ऐसा कुछ भी नहीं है। महाकवि रङ्ग भी इससे अछूते नहीं रहे और जहाँ उन्होंने इतने विशाल साहित्य का प्रणयन किया, अपने आश्रयदाताओं के विषय में पीढ़ी-दर-पीढ़ी का उल्लेख किया, वहीं अपने विषय में अधिकांश मौन ही रहे। फिर भी रचनाओं के अन्तर्साक्ष्य, बाह्यसाक्ष्य और अनुमानों के माध्यम व कवि द्वारा वर्णित अपने आश्रयदाताओं के जीवन परिचय के आधार पर यहाँ क्रमशः कवि के जीवन-परिचय व विषय पर प्रकाश डाला जा रहा है:-

कवि नाम :

अपभ्रंश साहित्याकाश के जाज्वल्यमान सूर्य महाकवि रङ्ग के नाम के विषय में भी विद्वानों में मतभेद पाया जाता है, क्योंकि सम्पूर्ण रङ्ग साहित्य में "रङ्ग" के साथ-साथ रङ्गू¹, रदू, ², रयधु ³, जैसे समानता को प्रकट करने वाले अन्य नाम भी मिलते हैं। इससे यह शंका होने लगती है कि कहीं कवि का "रङ्ग" यह नाम यथार्थ है, उपनाम है अन्य कोई प्रदत्त उपाधि?

रङ्ग या सिंहसेन :

"रङ्ग" द्वारा रचित कहा जाने वाला साहित्य कहीं सिंहसेन नाम के कवि द्वारा लिखा तो नहीं है। यह जानना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है, क्योंकि कुछ

1 सम्मङ्गिणचरित 1/19/11

2 वही 1/12/15, 2/16/15, 3/18/17, 5/38/12, 3/17/13, 7/14/19 इत्यादि।

3 पासणाहचरित : रङ्ग 7/11

काव्यों में रङ्गधू की जगह "सिंहसेन" यह नाम भी मिला है। इस विषय में जैनधर्म के मर्मज्ञ विद्वान् श्रीमान् पं. नाथूराम जी प्रेमी ने "प्राकृतदसलक्षणजयमाला" 4 में, पं. मोहनलाल दुलीचन्द देसाई ने "जैन साहित्यनोडितिहास" 5 में, श्री एच. डी. वेलणकर ने "जिनरत्नकोश" 6 में और रङ्गधू साहित्य के जीवन्त अध्येता डॉ. राजाराम जी ने "रङ्गधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन" 7 में महाकवि रङ्गधू का अपरनाम "सिंहसेन" माना है। प्रथम तीन लेखकों ने जहाँ इस बात की पुष्टि में कुछ भी उल्लेख नहीं किया है, वही डॉ. राजाराम जी ने इस विषय में तीन संभावनात्मक तथ्य दिए हैं, जो इस प्रकार हैं :-

(क) रङ्गधू एवं सिंहसेन इन दोनों में से एक तो इनका जन्मनाम अथवा धरुनाम हो सकता है तथा दूसरा साहित्यिक। जन्म नाम "रङ्गधू" होने की अधिक संभावना है। प्रतीत होता है कि "रङ्गधू" के अधिकांश परिचित व्यक्ति "रङ्गधू" नाम से ही अधिक परिचित थे। अतः वही नाम अधिक प्रचलित हो गया। साहित्य क्षेत्र में प्रविष्ट होते ही रङ्गधू ने स्वयं अथवा उसके किसी गुरु ने उनका "सिंहसेन" यह नाम प्रचलित करना चाहा होगा तथा उनके परम हितैषी एवं स्नेही गुरु यशः कीर्ति जैसे भट्टारक ने उन्हें "सिंहसेन" नाम से सम्बोधित भी किया हो, किन्तु कमल सिंह संघपति प्रभृति उनके मित्र उन्हें बालमित्र "रङ्गधूपंडित" आदि कहकर भी पुकारते रहे। 8

(ख) यह भी सम्भावना की जा सकती है कि महाकवि रङ्गधू भट्टारकों को ज्ञानदान देते रहे हैं और इसी कारण भट्टारक यशःकीर्ति ने उनके उपाध्यायत्व को सूचित करने के लिए उनका "सिंहसेन" नाम रच दिया हो।

(ग) महाकवि रङ्गधू प्रतिष्ठाचार्य भी थे, अतः यह भी असम्भव नहीं कि उनके गुरु यशः कीर्ति भट्टारक ने उनके पाण्डित्य एवं विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित होकर तथा प्रतिष्ठाचार्य के अनुकूल श्रुतिमधुर नाम "सिंहसेन" घोषित

4 "प्राकृत दसलक्षणजयमाला" (बम्बई 1923) पृष्ठ 1

5 जैनसाहित्यनोडितिहास (बम्बई 1933) पृ. 520

6 जिनरत्नकोश (पूना 1944) पृ. 29

7 रङ्गधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन (वैशाली 1973) पृ. 35 से 39 तक

8 (क) तह पुणु कळ्खर्यणायणायरु। बालमित्तु अम्हहं णेहायरु ॥ सम्मत. 1/14/8

(ख) भो रङ्गधू बुह बडिहव-पमोय ॥ ससिद्ध जायै तुहू परम मित्तु। तउ वयणामियं पाणण तित्तु॥ पुण्णासव. 1/6/8 9

किया हो। तथ्य जो भी हों, पर इतना सत्य है कि "सिंहसेन" महाकवि रङ्गू का अपरनाम ही है।

भ्रम का कारण :

महाकवि "रङ्गू" को "सिंहसेन" मानने के पीछे भी कुछ भ्रमपूर्ण बातें रहीं, जो इस प्रकार हैं -

(क) "सम्मइजिणचरित" में सिंहसेन नाम मिलता है, लेकिन वह प्रसंग की दृष्टि से उचित नहीं है। प्रसंग इस प्रकार है कि हिसार (हरयाणा) निवासी खेलहा नामक ब्रह्मचारी ने गोपाचल (वर्तमान) ग्वालियर (म. प्र.) दुर्ग में तीर्थंकर चन्द्रप्रभ भगवान की ॥ हाथ ऊँची मूर्ति का निर्माण कराकर भट्टारक गुरु यशःकीर्ति का धर्मोपदेश सुनकर श्रावक प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। उसी समय उसकी इच्छा हुई कि महाकवि रङ्गू उसके लिये एक सुन्दर "सन्मति चरित" लिख दें, किन्तु कवि से परिचय न होने के कारण उसने अपने गुरु यशः कीर्ति से रङ्गू से ग्रन्थ लिखा देने हेतु प्रार्थना करता है तब यशःकीर्ति रङ्गू से खेलहा की इच्छा व्यक्त करते हैं :-

तंजि सहलुकरि भो मुणि पावणएत्थु महाकडि णिवसण सुहमण ॥

रङ्गू णामें गुणगण धारउ सो णो लंघइ वयण तुम्हारउ ॥

तं णिसुणिवि गुरुणा गच्छहु गुरुणाई सिंहसेणि मुणेवि मुणि ।

पुरु संठिउ षडिउ सील अखंडिउ भणित तेण तं तम्मि खणि ९

उपर्युक्त पद्य में वर्णित "सिंहसेणि" शब्द ही भ्रम का कारण बना। इस विषय में जहाँ डॉ. राजाराम जी ने पूर्व में¹⁰ "रङ्गू" का ही अपरनाम "सिंहसेन" स्वीकार किया है, वहीं बाद में इसे अस्वीकार करते हुए संधि-भेद का दोष बताते हुए लिखा है कि- उक्त प्रसंगों से स्पष्ट है कि खेलहा, भट्टारक यशःकीर्ति एवं रङ्गू यह तीन नाम ही प्रमुख हैं; सिंहसेन नामक किसी चौथे नाम को उसमें कोई स्थिति नहीं है। फिर "गच्छहु गुरुणाई" का अर्थ सिंहसेणि के साथ उनका सामन्जस्य भी कुछ नहीं बैठता। अतः विचार करने पर यही स्पष्ट होता है कि पाठ के अध्ययन एवं संधि भेद में भ्रम हुआ है। वस्तुतः सम्मइ की

9 सम्मइजिण चरित : रङ्गू 1/5/8 से ॥

10 रङ्गू साहित्य का आलोचनात्मक परीक्षण पृ. 37

उक्त(1/5/10-11) पंक्तियों को इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए तंणिसुविवि
गुल्लणागुरुण ईसि हँसे वि मुणेवि मणि। 11

(ख) “रइधू” की अन्य रचना “मेहेसर चरिउ” में “रइधू” का अपरनाम
“सिंघियसेणय” मिलता है, जो सिंहसेन का ही रूप है। ग्रन्थ रचना के प्रारम्भ
में कवि पूर्ववर्ती आचार्यों को स्मरण करता हुआ भट्टारक यशःकीर्ति को
नमस्कार करता है। प्रत्युत्तर में यशःकीर्ति उसे आशीर्वाद देते हुए मन्त्राक्षर देते
हैं—

भो सिंघियसेणय सुसहाएँ होसि वियक्खणु मज्झु पसाएँ ।

इय भणेवि भंतक्खरु दिण्णउ तेणाराहिउ तं जि अछिण्णउ ॥

— मेहेसर चरिउ, 1/3/9-10

“मेहेसरचरिउ” का अपरनाम “आदिपुराण” भी है उक्त ग्रन्थ
“आदिपुराण” इस नाम से नजीबाबाद (उ. प्र.) के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है।
उसमें लेखक के नाम पर सिंहसेन ही अंकित है, रइधू नहीं। किन्तु पिता का
नाम—हरि सिंह दोनों में समान है। लेखक नाम एवं ग्रन्थशीर्षक की विभिन्नता को
छोड़कर तथा ग्रन्थप्रशस्ति एवं पुष्पिका में यत्किंचित् हेर-फेर के अतिरिक्त पूरा
का पूरा ग्रन्थ वही है जो कि रइधू कृत “मेहेसर चरिउ” है। फिर भी आश्चर्य है
कि उसमें “सिंहसेन” एवं “आदिपुराण” नाम ही उपलब्ध हैं
“मेहेसरचरिउ” नहीं।

जैन सिद्धान्त भवन आरा स्थित “मेहेसरचरिउ” नामक प्रति में, जो कि
रोहतक शास्त्र भण्डार में सुरक्षित वि. सं. 1606 की प्रति के अनुसार लिखी गई
थी, उसमें “सिंघियसेणय” के स्थान पर “रइधू पंडिय” पाठ मिलता है, यथा—

भो रइधूपंडिय सुसहाए -1

उक्त “आदिपुराण” का प्रतिलिपि काल वि. सं. 1851 वैशाख कृष्ण 10,
शुक्रवार, शतभिषा नक्षत्र है तथा उसकी प्रतिलिपि दादुर देश स्थित नजीबाबाद
पर्वत के निकट उत्तरा खण्ड में वहाँ के पंचों की ओर से कराई गई थी। यह प्रति
अत्यन्त भ्रष्ट एवं अप्रामाणिक है। इसमें उपलब्ध “सिंघियसेणय” पाठ भी
नितान्त भ्रामक एवं अप्रामाणिक है। प्रतीत होता है कि किसी सिंहसेन नामक

आचार्य ने स्वयं अथवा उनके किसी शिष्य ने उस (सिंहसेन) नाम को प्रसिद्ध करने के लिए मूल ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार के नामों में जबर्दस्ती परिवर्तन किया है।¹²

भ्रम निवारण :

रङ्ग साहित्य के अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि का नाम रङ्ग ही था क्योंकि इतने विपुल साहित्य में एक दो स्थानों को छोड़कर कहीं भी भ्रमात्मक स्थिति नहीं है। यदि कवि का "सिंहसेन" अपर नाम होता तो वे कहीं न कहीं अपने काव्य में उसका उल्लेख अवश्य करते।

श्रीमान् पं. जुगल किशोर जी मुख्तार सा. ने "सिंहसेन" को रङ्ग का बड़ा भाई माना है,¹³ लेकिन इसकी पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया है, जबकि रङ्ग ने "पउमचरिउ"¹⁴ में अपने भाईयों के जो नाम दिए हैं उनमें यह नाम कहीं भी नहीं है, अतः स्वतः ही इस मत का निराकरण हो जाता है।

रङ्ग का परिवार :

महाकवि रङ्ग बुधजनों (विद्वानों) के कुल को आनन्द देने वाले साहू हरिसिंह के पुत्र एवं संघपति देवराज के पौत्र थे।¹⁵ इनकी माता का नाम विजयश्री था।¹⁶ इन्हीं की पवित्र कोख से कविवर रङ्ग ने जन्म लिया था। इस प्रकार रङ्ग के स्वयं उल्लेख करने से इस विषय में कोई विवाद नहीं है।

रङ्ग के पिता के तीन पुत्र थे जिसमें रङ्ग अपने माता-पिता के तृतीय पुत्र थे। इन (रङ्ग) से बड़े दो भाई थे, जिनके नाम क्रमशः बाहोल एवं माहण सिंह थे।¹⁷ महा कवि रङ्ग ने अपने विवाह की सूचना तो नहीं दी है किन्तु पत्नी एवं

12 रङ्ग ग्रन्थावली, भाग 1, भूमिका, पृ. 5-6

13 जैन हितैषी (पत्रिका) 13/3

14 पउमचरिउ 11/17/11-12

15 पंदत सिरिहरसिंघु संघाहिउ। देवराज सुदपवरगुणाहिउ॥

जसु संताणि कईसु अमळ्ळरु। रङ्ग संजायउ गुणकोल्लरु ॥- मेहसरचरिउ 13/11/7-8
(सम्मइजिणचरिउ 10/28/13, सुक्कोसलचरिउ 1/3/9, सम्मतगुणणिहाणणिकव्व 1/14/14,

जसहरचरिउ 4/18/18, पासणाहचरिउ 1/7, विल्लसार 7/141, सिरिवल्लचरिउ 10/25/19 आदि में भी कहीं पिता का और कहीं पिता तथा पितामह दोनों का नामोल्लेख मिलता है।)

16 सम्मतगुणणिहाणकव्व 1/14/14

17 बाहोलमाहणसिंह दिरु पंदउ।

पुत्र का उल्लेख अवश्य किया है, जिसके अनुसार पत्नी का नाम सावित्री था, 18 उसी की कोख से उदयराज नामक एक पुत्र हुआ था। 19 रङ्गधू के यहाँ जिस समय उदयराज का जन्म हुआ, उस समय वे "प्रेमिणाहचरित" ग्रन्थ की रचना में संलग्न थे। 20

रङ्गधू की जाति :

कविवर रङ्गधू ने माता-पिता के नाम के सदृश ही जाति का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। उन्होंने अपने आपको पद्मावती पुरवाल जाति के सुवंश रूप आकाश के लिए चन्द्रमा के समान, 21 पद्मावती पुरवाल कुल रूपी कमल के लिए दिवाकर के समान, 22 पद्मावती पुरवाल-वंश में अग्रणी, 23 पद्मावती पुरवाल वंश का उद्योत, 24 पद्मावती पुरवाल वंश का कुलतिलक, 25 आदि विशेषणों से युक्त कहा है, इससे कवि की जाति पद्मावती पुरवाल ही सुनिश्चित होती है।

रङ्गधू किस आम्नाय के थे :

महाकवि रङ्गधू काष्ठासंघ माथुर - गच्छ की पुष्करगणीय शाखा से सम्बद्ध थे। 26

निवास स्थान :

कवि या लेखक अपनी कृतियों के माध्यम से सम्पूर्ण जगत के प्राणियों को अपना बना लेता है क्योंकि काव्य व्यक्ति विशेष के लिए नहीं बल्कि समष्टि के लिए होते हैं, अतः कभी-कभी किसी कवि को एक स्थान विशेष की परिधि में बाँधना भी सम्भव नहीं होता या वह स्वयं भी एक स्थान विशेष से बाँधना नहीं चाहता। रङ्गधू के ऊपर भी उक्त कथन लागू होता है, क्योंकि उन्होंने भी अपने

इह रङ्गधू कइ तीवउ वि धरा ।। पउमचरित 12/27/11-12

18 मेहेसरचरित 13/1/11

19 पुष्पासत्र. 13/13/7, वित्तसार 7/141, जसहरचरित 4/18/17 इत्यादि

20 उदयराज-जणगे जि रङ्गधु। सिरि अरिदुणेमिहु जिणचरित।
अरिदुणेमि. 14/27/12

21 पुष्पासत्र. 13/13/6-7

22 सम्मद 10/28/12

23 पउमचरित 1/4/7

24 जसहरचरित 4/18/16

25 तिरिवालचरित 20/25/18

26 (क) तीर्थकर महावीर, और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड 4, पृ. 199

(ख) रङ्गधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ. 41

निवास स्थान का कोई निश्चित उल्लेख नहीं किया है। फिर भी कुछ अन्तर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य ऐसे मिले हैं, जिनसे उनके निवास स्थान के बारे में निर्णय किया जा सकता है। रङ्ग ने अपने काव्यों में अनेक स्थानों के वर्णन किए, किन्तु गोपाचल²⁷ (ग्वालियर) का जिस तरह वर्णन किया है, वह बिना निकटता के कदापि सम्भव नहीं दिखता²⁸ साथ ही अपनी कृतियों के प्रशस्ति खण्डों में जो न्यूनाधिक सूचनाएँ दी हैं, उनके आधार पर भी उनका निवास स्थान गोपाचल ही ठरहता है²⁹ इसके अतिरिक्त भी रङ्ग कवि होने के साथ-साथ प्रतिष्ठाचार्य भी थे, "सम्मतगुणनिहाणकव्य" में आये विभिन्न कथनों से इसकी पुष्टि होती है³⁰ रङ्ग ने अपने समकालीन प्रतिष्ठित तोमर-वंशी राजाओं, भट्टारकों एवं गोपाचल की प्रकृति सम्पदा, मन्दिरों, दुर्गों आदि का जैसा याथा-तथ्य वर्णन किया है उससे तथा गोपाचल दुर्ग में स्थापित भ. आदिनाथ स्वामी की विशालकाय (57 फुट) मूर्ति के पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कारक आचार्य स्वयं होने³¹ से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी जन्मस्थली और कर्मस्थली गोपाचल (वर्तमान ग्वालियर) ही थी।

रङ्ग द्वारा सृजित साहित्य :

महाकवि रङ्ग कृत रचनाएँ कितनी हैं, इसका स्पष्ट उल्लेख किसी एक स्थान पर नहीं मिलता, फिर भी विविधन्न स्रोतों से जो उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में उल्लेख मिला है, वह इस प्रकार है :-

1. मेहेसरचरित (अपरनाम आदिपुराण एवं मेघेश्वरचरित)
2. गेमिणाहचरित (अपरनाम रिद्वणेमिचरित एवं हरिवंशपुराण)
3. पासणाहचरित (पार्श्वनाथचरित)
4. सम्मइजिणचरित (सन्मतिजिनचरित)
5. तिसद्विहमहापुरिस चरित (अपरनाम महापुराण)

27 वर्तमान ग्वालियर (म. प्र.) भारत

28 द्रष्टव्य पास., 1/3, जीवंधर, 1/2 वत्ता आदि

29 (क) गोवगिर दुर्गमि निवसंतउ बहुसुहेण तहिं। सम्मइ. 1/3/9

(ख) पास. 1/2/15-16

(ग) जीवंधरचरित 1/2 एवं 1/3/1-2

30 द्र. सम्मतगुणनिहाणकव्य 1/8, 1/13, 1/14 एवं 1/15

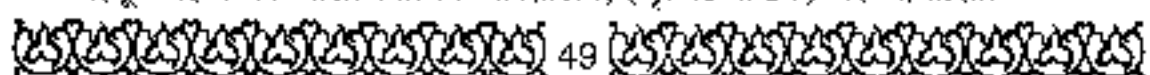
31 Journal of Asiatic society, p.404-A



- 6 बलहृदचरित (बलभद्रचरित)
- 7 सिरिवालचरित (श्रीपालचरित अपरनाम सिद्धचक्रमाहण्य)
- 8 पञ्जुणचरित (प्रद्युम्नचरित)
- 9 वित्तासार (वृत्तसार)
- 10 दशलक्षजयमाल (दशलक्षण जयमाला)
- 11 रत्नत्रयी
- 12 षड्धर्मोपदेशरत्नमाला (अपरनाम उवएसरयणमाल)
- 13 भविसयत्तचरित (भविष्यदत्तचरित)
- 14 करकंडचरित
- 15 अप्यसंबोधकव्व (आत्मसंबोध काव्य)
- 16 पुण्णासव कहा (पुण्यास्त्रव कथा)
- 17 सम्मतगुणिहाणकव्व
- 18 कारणगुणसोडसी (षोडशकारण जयमाल)
- 19 बारह भावना
- 20 संबोधपंचासिका (संबोध पंचासिका)
- 21 धणकुमार चरित (धन्यकुमारचरित)
- 22 सिद्धन्तसार (सिद्धान्तार्थ)
- 23 वृहत्सिद्धचपूजा (संस्कृत)
- 24 सम्मतभावय (सम्यक्त्व भावना)
- 25 जसहरचरित (यशोधरचरित)
- 26 जीणधरचरित (अपरनाम जीमंधरचरित)
- 27 कोमइकहापबंधु (अपरनाम सम्मतक उम्हु अथवा सावयचरित)
- 28 सुक्कोसल चरित (सुकौशलचरित)
- 29 सुदंसणचरित (सुदर्शनचरित)
- 30 अणथमिउकहा³²

उपर्युक्त साहित्य सृजन की प्रतिभा कवि ने कहाँ से जुटा पायी होगी, इस विषय में सन्देह भी हो सकता है, किन्तु कवि रङ्गू ने स्वयं इस शंका का निवारण करते हुए लिखा है कि वे एक दिन जब रात्रि में चिन्तितावस्था में शयन

32 रङ्गू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, (पृ. 46 से 54) पर आधारित।



कर रहे थे, तभी साक्षात् सरस्वती ने प्रकट होकर दर्शन दिए और काव्य सृजन की प्रेरणा दी-

सिबिणंतरे दिद्व सुयदेवि सुपसण्ण ।
 आहासए तुज्झ हउं जाए सुपसण्ण ॥
 परिहरहिं मणचिंत करि भव्वु णिसु कव्वु ।
 खलयणहं मा डरहि भउ हरिउ मइ सव्व ॥
 तो देविबयणेण पडिउवि सारणंदु ।
 तदक्खणेण सद्यणाउउ दिठउ जि गय-तंदु ॥३३

अर्थात् प्रसन्न मन से युक्त होकर सरस्वती देवी ने स्वप्न में दर्शन दिया और कहा कि मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। मन की सम्पूर्ण चिन्ताओं को छोड़कर, हे भव्य! तुम निरन्तर काव्य रचना करो। तुम्हें दुर्जनों से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि भय सम्पूर्ण बुद्धि का हरण कर लेता है। कवि कहता है कि इस प्रकार के प्रेरणामयी सरस्वती के वचनों से प्रतिबुद्ध होकर मैं आनन्दित हो उठा। उसी समय मैं नद्रा टूट जाने से शय्या से उठ पड़ा।

इस प्रकार कवि रङ्गधू ने सरस्वती की कृपा से साहित्य जगत में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया। काव्य सृजन में भट्टारक यशःकीर्ति, खेऊ साहू, कमलसिंह संघवी जैसे तत्कालीन श्रावकगण भी रङ्गधू को प्रोत्साहित करते रहे, जिससे उन्हें अपनी कवित्व प्रतिभाको कुशलता से मूर्त रूप देने में सफलता मिली।

“पासणाहचरिउ” का रचना काल :

“पासणाहचरिउ” की रचना कवि ने खेऊ साहू के समय में की थी। खेऊ साहू राजा डोंगरेन्द्र (अपरनाम डूंगर सिंह, जो कि गोपचल के राजा थे) के समकालीन थे, इस बात की पुष्टि “पासणाहचरिउ” से होती है।³⁴ राजा डूंगर सिंह का राज्यकाल वि. सं. 1482 से 1510-11 है³⁵ अतः खेऊ साहू को इसी समय के बीच होना चाहिए।

रङ्गधू कृत “सुक्कोसलचरिउ” में उसका रचना समाप्ति काल वि. सं. 1496 उल्लिखित है।³⁶ इस रचना में कवि ने अपनी पूर्व रचित ‘रिट्ठणेमिचरिउ’, एवं

33 द्रष्टव्य- सम्मह 1/4/2-4

34 पास. 1/4 एवं 1/5

35 रङ्गधू ग्रन्थावली, भूमिका भाग, पृ. 17

36 सुक्कोसलचरिउ 4/23/1-3

‘बलहृदचरित’ नामक दो रचनाओं के साथ ‘‘पासणाहचरित’’ का भी उल्लेख किया है। 37 इससे यह सिद्ध होता है कि ‘‘पासणाहचरित’’ की रचना वि. सं. 1498 के पूर्व हुई थी।

‘‘पासणाहचरित’’ की एक सचित्र प्रति मिली है, जो रूपनगर (दिल्ली) के श्वेताम्बर जैन शास्त्र भण्डार में संगृहीत है। इस प्रति का प्रतिलिपिकाल वि. सं. 1496 है। यह प्रति कवि के जीवनकाल की है। 38

रङ्गू का रचना-काल वि. सं. 1457 से 1530 का माना गया है। 39 अतः हम ठोस प्रमाणों के अभाव में यह मान सकते हैं कि ‘‘पासणाहचरित’’ का रचना-काल वि. सं. 1490 से 1495 के बीच का समय रहा होगा।

‘‘पासणाहचरित’’ का कथासार

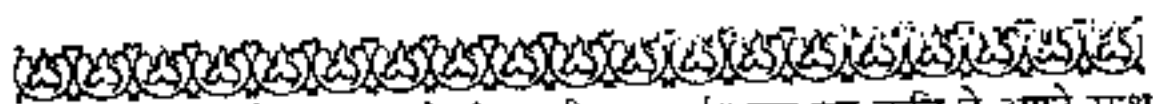
सन्धि-1 :

प्रथम सन्धि के प्रारम्भ में महाकवि रङ्गू ने मंगलाचरण के रूप में श्री पार्श्वप्रभु को नमस्कार करते हुए उनके चरित वर्णन करने की सूचना दी है। अनन्तर वर्तमान चौबीस तीर्थङ्करों की विशेषताओं सहित स्तुति, भूत एवं भविष्यकालीन तीर्थङ्करों का स्मरण-वन्दना, गौतम-गणधर की वन्दना, भट्टारक सहस्रकीर्ति, भट्टारक गुणकीर्ति, भट्टारक यशःकीर्ति तथा श्री यशः कीर्ति के प्रमुख शिष्य श्री खेमचन्द्र को प्रणाम किया गया है। अनन्तर रचनास्थल गोपालबल नगर का वर्णन किया गया है। वह नगर इन्द्रपुरी के समान धन-धान्यादि से युक्त था, मानो सर्वश्रेष्ठ नगरों का वह गुरु ही था। वहाँ का तोमर वंशी वैभव से युक्त प्रसिद्ध शासक डोंगरेन्द्र (डूंगर सिंह) था। उसकी चन्दादे नाम की पट्टरानी थी, उसके एक पुत्र हुआ, जो कीर्तिसिंह के नाम से प्रसिद्ध था। उन्हीं के राज्य में एक वणिक् श्री प्रद्युम्न साहू हुए, जो व्यसन त्यागी और जैन धर्म में प्रगाढ़ आस्था रखता था। उसके यहाँ उसी के गुणानुरूप श्री खेम सिंह साहू नाम का पुत्र था। उस खेमसिंह की धनवती नाम की पत्नी थी, उसके उदर से चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम-सहसराज, प्रभुराज, देवसिंह तथा होलिवम्म थे।

37 सुक्रोसल चरित, 1/3/5-7

38 डॉ. अनुसन्धान पात्रिका (जनवरी-मार्च सन् 1973) पृ. 50-57 में ‘‘महाकवि रङ्गू कृत पासणाहचरित’’ की सचित्र प्रति : एक मूल्यवान् शोधक से प्रकाशित डॉ. राजाराम जैन का लेख।

39 रङ्गू ग्रन्थावली, भूमिका भाग, पृ. 19



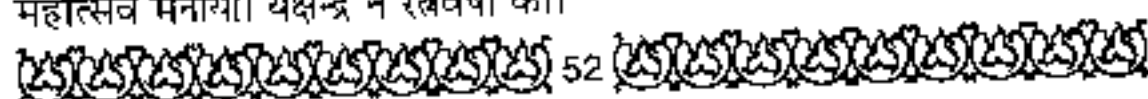
इस प्रकार खेळ साहू की वंशावली का वर्णन कर हुए कवि ने अपने साथ खेळ साहू के साथ धार्मिक चर्चालाप के बीच उसके द्वारा "श्री पार्श्वनाथचरित" लिखने के आग्रह को स्वीकार किया। अब यहाँ से मूल कथा प्रारम्भ होती है, जो इस प्रकार है :-

इसी जम्बूद्वीप में सुमेरुपर्वत के दक्षिण में काशी नामक सुखकर देश है, उसमें देवों के लिए प्रिय वाराणसी नाम की नगरी है। उस वाराणसी नगरी में अश्वसेन नामक राजा राज्य करता था, उसकी वामा देवी नाम की प्रिय पट्टरानी थी जो अत्यन्त सुन्दर एवं सुख को देने वाली थी। राजा उस रानी के साथ भोग करता हुआ सुखपूर्वक रहता था।

द्वितीय सन्धि :

स्वर्ग में सुरेश्वर का शासन कम्पायमान हुआ, तब उसने अपने अर्वाभिज्ञान से उसका कारण जानकर कुबेर से कहा कि - "हे कुबेर यक्ष! इसी भरत क्षेत्र के काशी देश की वाराणसी नगरी में राजा अश्वसेन के घर पार्श्वप्रभु जन्म लेंगे, अतः तुम वहाँ जाकर महान शोभा करो।" इस प्रकार सुरेश्वर की आज्ञा से यक्ष ने वाराणसी आकर नगर की शोभा की ओर श्रेष्ठ स्वर्ण तथा रत्नों की वर्षा की। सर्वत्र आनन्द छा गया। इन्द्र के आदेश से श्री, ह्री धृति, कीर्ति आदि प्रमुख देवियाँ वामादेवी की सेवा सुश्रूषा हेतु आ गयीं। इन्द्राणी ने वामादेवी के पास पहुँचकर स्तुति करते हुए कहा कि हे देवि! तुम्हारी कोख सुधन्य है, जो तीनों लोकों के विजेता स्वामी की माता बनने वाली हो। इस प्रकार स्तुति करती हुई वहीं वामादेवी की सेवा में निवास करने लगीं। इस प्रकार देवांगनाओं से सेवित वह वामादेवी उत्तम पलंग पर लेटी हुई प्रगाढ़ निद्रा के वशीभूत हुई।

तदनन्तर उसने पश्चिम रात्रि में सुखद फल देने वाले सोलह स्वप्न देखे। प्रातः शय्या से उठकर रानी श्रृंगार कर अपने पति अश्वसेन से उन स्वप्नों का फल जानने गई। रानी ने राजा को प्रणाम कर रात्रि में जो स्वप्न देखे थे उन्हें यथावत् कहा। राजा ने उन स्वप्नों का अर्थ बताते हुए कहा कि हे देवि! तुम त्रिलोकजयी तीर्थंकर पुत्र की माता बनोगी। यह सुनकर रानी अत्यन्त हर्षित हुई और उस रात्रि अपने स्वामी के साथ श्रेष्ठ सुखों का भोग किया। भवभ्रमण का विनाश करने वाली सोलह भावनायें भाकर, तीर्थङ्कर गोत्र को बाँधकर वैजयन्त स्वर्ग में जो देव हुआ था, वह बत्तीस सागर की आयु भोगकर वामादेवी के गर्भ में आया। वह दिन वैशाख कृष्ण द्वितीया का था। देवों ने आकर गर्भ कल्याणक महोत्सव मनाया। यक्षेन्द्र ने रत्नवर्षा की।





इस प्रकार जब गर्भ नौ मास का पूर्ण हो गया तब वामादेवी का मुख पीत वर्ण का हो गया जो गर्भ के यश के प्रकाश के सदृश था। पौषमास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन शुभनक्षत्र में जिनेन्द्र का जन्म हुआ। तब गुरुरति ने भगवान का जन्म हुआ जानकर सात पैर आगे बढ़कर जिनस्तुति की, फिर अपने ऐरावत हाथी को लेकर मन्दर पर्वत (सुमेरु पर्वत) पहुँचा। अन्य देवगणों से साथ क्षणभर में ही इन्द्र वाराणसी आ गया। वाराणसी नगरी की तीन प्रदक्षिणा करके वे सब राजा अश्वसेन के महल में आये। इन्द्र के आदेश से इन्द्राणी ने प्रसूतिगृह में जाकर जिनेन्द्र को देखा और माता सहित जिनेन्द्र को प्रणाम करने के बाद माँ (वामा) के लिए एक मायामयी बालक देकर परमेश्वर को उठाकर वहाँ से चल पड़ी और उस बालक को अपने प्रियतम को दिया। इन्द्र ने भी नमस्कार कर अनन्त सुलक्ष्णों से लक्षित शरीर वाले उस सुन्दर मुख वाले बालक को ले लिया। दोनों भुजाओं से जब इन्द्र ने उसे गोद में उठाया तो ईशान सुरेन्द्र ने उन पर छत्र तान दिया। ममृतक पर विराजमान कर इन्द्र उसी क्षण आकाश मार्ग से चला। सनत्कुमार एवं माहेन्द्र स्वर्ग के इन्द्र भगवान् के ऊपर चँवर डुलाने लगे। अन्य चतुर्निकाय के देव भी भक्तिपूर्वक यथाशक्ति राग को प्रकाशित कर रहे थे। जिन भगवान के रूप को देखकर भी जब इन्द्र तृप्त नहीं हुआ तब उसने सहस्र नेत्र धारण कर लिये और उन नेत्रों से जब उसने नाथ को निहारा तब उसका कर्ममल प्रक्षालित हो गया और उसने सोचा कि "आज मेरा यह जन्म सफल हो गया।"

इन्द्र ने अपने परिवार के साथ सुमेरुपर्वत पर जाकर एक उच्च सिंहासन पर भगवान् जिनेन्द्र को प्रतिष्ठापित किया। देवगणों ने हाथों हाथ क्षीर सागर से भरे हुए स्वर्ण कलशों को लाना प्रारम्भ किया, तब 1008 लक्ष्णों से युक्त उन शिशु भगवान का 1008 कलशों से अभिषेक किया। अभिषेक एवं गन्धोदक वन्दन के उपरान्त इन्द्र ने अष्ट द्रव्य से भक्तिभावपूर्वक जिनेन्द्र की पूजा की। पूजोपरान्त इन्द्र ने प्रभु के कानों का छेदन संस्कार करके कुण्डल युगल से मण्डित किया। अन्य अंगों में भी मणिजटित आभूषण पहनाये। अनन्तर "श्री चार्धनाथ" यह नाम रखकर वाराणसी आ गये।

जब वह इन्द्र नगर में पहुँचा तब इन्द्राणी ने जिनेन्द्र को अपने हाथों में ले लिया और वामादेवी को वह पुत्र समर्पित कर दिया तथा प्रणाम करके कहा: हे वामा माता! सज्जनों को सुख देने वाले पुत्र के अपहरण का किसी भी प्रकार का

दुःख मत मानिए, सम्पूर्ण जिनेश्वरों के लिये यही रीति है कि उन्हें अभिषिक्त करा के माता के गृह में लाया जाता है। सुरों एवं असुरों द्वारा सेवित "श्री पार्श्वनाथ" नामक इन भगवान को आप लीजिए!" इस प्रकार कहकर एवं जिन भगवान की माता को प्रणाम कर इन्द्राणी इन्द्र के पास आ गई। राजा अश्वसेन के लिए भी इन्द्र ने दैदीतमान रत्नाभूषण एवं पवित्र वस्त्र प्रदान किए। अनन्तर नृप द्वारा आदेश पाकर इन्द्र स्वर्ग चला गया तथा जिनेन्द्र देव भी अपने पितृ गृह में निवास करने लगे। पार्श्वजिन के अंगरक्षक देव तथा अप्सरायें उनका पालन-पोषण करने लगीं। इस प्रकार भगवान हिन्डोले में बढ़ने लगे। उनका पवित्र शरीर दश अतिशय से युक्त तथा तीन प्रकार के ज्ञान से अलंकृत था। इस प्रकार पार्श्व जिन विविध क्रीड़ाओं को करते हुए क्रमशः यौवन को प्राप्त हुए। अब उन की अवस्था तीस वर्ष और काया नौ हाथ प्रमाण थी।

सन्धि-3 :

जब राजा अश्वसेन सभामण्डल में विराजमान थे तभी कुशस्थल नरेश अर्ककीर्ति के दूत ने आकर कहा कि आपके श्वसुर जो दीक्षित हो गये थे ऐसे शक्रवर्मा को यवननरेन्द्र ने मारकर उनके पुत्र अर्क 'कीर्ति' से अपनी पुत्री देने को कहा है। यह वृत्तान्त सुनकर राजा अश्वसेन अपने श्वसुर की मृत्यु को जानकर शोकाभिभूत हो गये। तब मंत्री के द्वारा सांत्वना दिए जाने पर राजा अश्वसेन ने युद्ध की तैयारी करने को कहा। राजा का आदेश सुनते ही समस्त योद्धा और सैन्य समूह तैयार हो गया। जब राजा अश्वसेन अपनी सेना के साथ प्रयाण करने लगे तब यह जानकर पार्श्वनाथ ने पिता के पास आकर कहा कि मेरे जैसे वज्र हृदय वाले पुत्र के रहते हुए आपको युद्ध में जाने की क्या आवश्यकता है? यह सुनकर अश्वसेन ने पहले तो मना किया किन्तु पार्श्वप्रभु के बार-बार आग्रह करने पर वे उन्हें युद्ध में भेजने हेतु तैयार हो गए।

युद्ध क्षेत्र में कालयवन नरेन्द्र और राजा अर्ककीर्ति में भीषण युद्ध हुआ, जिसमें भगवान पार्श्वनाथ द्वारा अर्ककीर्ति की सहायता करने से कालयवन भाग गया और अर्ककीर्ति विजयी हुए।

तीर्थङ्कर पार्श्व के प्रताप को जानकर अर्ककीर्ति ने उन्हें प्रणाम किया और उनके गुणों की प्रशंसा करता हुआ उन्हें अपने नगर कुशस्थल ले गया। नगर में पार्श्व के पहुँचने पर नगर वासियों द्वारा उनका भव्य स्वागत किया गया और

अर्ककीर्ति ने वस्त्राभूषण भेंट किए और अपनी कन्या प्रभावती से विवाह करने हेतु प्रार्थना की। पार्श्वप्रभु ने इसकी स्वीकृति दे दी।

कुशस्थल में निवास करते हुए दूसरे दिन पार्श्व ने नागरिकों को वन में जाते हुए देखकर अपने मामा अर्ककीर्ति से इसका कारण पूछा। तब अर्ककीर्ति द्वारा यह बताए जाने पर कि तापसों का एक संघ वन में रहकर कठिन पञ्चाग्नि तप करता है, उन्होंने की वन्दना हेतु ये लोग जा रहे हैं। तब दूसरे दिन पार्श्वप्रभु जी अपने मामा अर्ककीर्ति एवं अन्य सेवकों के साथ वहाँ गए। वहाँ उन्होंने एक तापस को देखा, जो पञ्चाग्नि तप कर रहा था, लोग उसकी वन्दना आदि कर रहे थे। यह देखकर पार्श्व ने कहा कि जो स्वयं ही संसार के दुखों को नष्ट नहीं कर सकता उसकी भक्ति क्यों करते हो? यह सुनकर (कमठ नामक) तापस अत्यधिक क्रुद्ध हुआ और बोला कि हे नरश्रेष्ठ! अप्रिय क्यों बोलते हो? कमठ की बात सुनकर पार्श्व ने पूछा कि बताओ, तुम्हारा गुरु मरकर कहाँ उत्पन्न हुआ है? तब कमठ ने कहा कि इसे प्रत्यक्ष कौन जान सकता है? तुम ज्ञान में बड़े दक्ष दिखाई दे रहे हो, अतः तुम्हीं बताओ। तब पार्श्व ने जलती हुई लकड़ी की ओर इशारा करके कहा कि वह गुरु मरकर वृक्ष की कोटर में दर्पीला साँप हुआ है, क्या जलते हुए को नहीं देखते? वृक्ष फाड़कर तू प्रत्यक्ष ही देख ले। तब कमठ ने उस काष्ठ को फाड़ा तो उसमें अर्द्धदग्ध सर्पयुगल को सिर धुनते हुए पाया। तब लोगों ने तापस को हँसी उड़ाई। तब वह भारी लज्जित हो क्रुद्ध हो गया। पार्श्व ने भी दयार्द्र चित्त हो उस सर्पयुगल के कान में पवित्र मंत्र सुनाया। उसे सुनकर वह सर्पयुगल अपना शरीर त्यागकर भवनवासी देव हो गया। उस युगल में से काला साँप तो धरणेन्द्र हुआ और दूसरा साँप वहीं पद्मावती देवी हुई। तापस भी मन में क्रोध धारणकर तत्क्षण मरकर संवर नामक ज्योतिषी देव हुआ।

सर्पयुगल को प्राणरहित देखकर पार्श्वजिन “संसार में जीवों के लिए मृत्यु से त्राण नहीं है” ऐसा जानकर वैराग्योन्मुख हो अनित्य, अशरण, संसार, एक, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, निर्जरा, धर्म, लोक, बोधिदुर्लभ आदि बारह भावनाओं का चिन्तन करने लगे।

जब जिनेश्वर पार्श्व यह सोच ही रहे थे कि मैं संसार के दुखों को छोड़कर व्रत भार को ग्रहण करूँगा। तभी पञ्चम स्वर्ग में निवास करने वाले देवों ने आकर

तीन प्रदक्षिणा देकर उनकी वैराग्य भावना की अनुमोदना की और उन्हें वहीं तीर्थों के जल से अभिषेक कराकर वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया।

सन्धि-4 :

देवों के द्वारा निर्मित पालकों में विराजमान होकर पार्श्व ने वन में जाकर केशलोचन करके पौषमास की दशमी के दिन जिन दीक्षा धारण कर ली। उनके साथ तीन सौ राजाओं ने भी मुनि दीक्षा धारण की। आठ उपवास के अनन्तर हस्तिनापुर के वर्णिक श्रेष्ठ वरदत्त के यहाँ मुनि पार्श्व ने आहार ग्रहण किया, तभी देवों द्वारा पंचाश्वर्य किए गए। अनन्तर पार्श्व ने आहार ग्रहण किया, सभी देवों द्वारा पंचाश्वर्य किए गए। अनन्तर पार्श्व वन में जा कर पश्वर्या में लौन हो गये।

इधर रविकीर्ति पार्श्व के वैराग्य धारण कर लेने से व्याकुल होने लगे तथा प्रभावती भी शोक विह्वल हुई और अन्त में—“हाय नाथ, तुम्हारा कोई दोष नहीं”, पूर्वकृत कर्मों पर ही मुझे गेष आ रहा है। जो स्वामी की गति है, वही मेरे लिए भी योग्य है।” ऐसा सोचकर जिन व्रत को ग्रहण कर लिया।

राजा अर्ककीर्ति ने वाराणसी जाकर अश्वसेनको पार्श्व के वैराग्यका इतिवृत्त सुनाया। यह सब सुनकर अश्वसेन पत्नी सहित अत्यधिक पुत्र-प्रेम के कारण दुखी हुआ और अन्त में मंत्रों के द्वारा प्रतिबोधित होकर शान्ति को प्राप्त हुआ।

घोर तपश्चरण करते हुए जब पार्श्व पर्यङ्कासन पर बैठकर कर्म ऋण का शोषण कर रहे थे, तभी आकाश में अपनी भार्या के साथ विचरण करते हुए कमठ के जीव संवरदेव ने अपने विमान को रुका हुआ देखकर, उसका कारण पार्श्व को पाया। पूर्व जन्म का बैर जिसे ज्ञात हो गया है ऐसे कमठ ने उन पार्श्व पर भयंकर जलवृष्टि की किन्तु योगी जिनेन्द्र रंज मात्र भी विचलित नहीं हुए। इधर जब संवरदेव पार्श्व पर विक्रिया ऋद्धि के बल से घोर उपसर्ग कर रहा था तभी सुरेश्वर (धरणेन्द्र) का आसन कम्पायमान हुआ। ध्यान से जानकर वह अपनी प्रिया (पद्मावती) से बोला—“हे प्रिये, जिसकी कृपा से सुरपद प्राप्त हुआ, जिसने वह परमाक्षर मंत्र दिया था, उसी श्री पार्श्वप्रभु के ऊपर पृथ्वी तल पर अत्यन्त दुखकारी घोर उपसर्ग हो रहा है।” ऐसा कहकर अविलम्ब जहाँ पार्श्वप्रभु विराजमान थे, वहाँ जाकर स्तुति कर उपसर्ग निवारक कमलासन का निर्माण कर उस पर पार्श्वप्रभु को विराजमान किया और सात फणों को मण्डलाकार कर स्थित कर दिया। इस प्रकार फणीश्वर जब पार्श्व के शरीर की रक्षा कर रहा था, उस समय पद्मावती अपने प्रिय में आसक्त मन वहीं स्थित थी। इर प्रकार यत्न किए जाने पर संवरदेव के सभी उपसर्ग निरस्त हो गए।



उपसर्ग निवारित होने पर गुणस्थानों का क्रमिक विकास कर शेष कर्म प्रकृतियों का उच्छेद कर चेत्रमास के पवित्र कृष्णपक्ष चतुर्थी के दिन केवल ज्ञान प्राप्त किया, जिससे उनके ज्ञान में समस्त लोक और अलोक स्पष्ट दिखाई देने लगे। पार्श्व की केवल्य प्राप्ति का जानकर इन्द्र ने आकर उनकी स्तुति की और कुबेर को आदेश दिया कि- "प्रभु पार्श्व के लिए यथोचित सभाङ्गण (समवसरण) तैयार करो। यह सब देकर भयभीत सा कमठ भी वहाँ से भाग गया।

कुबेर ने चारों दिशाओं में ध्वजा पताकाओं से युक्त मणिवेदियों तथा मान-स्तम्भ से युक्त, दुर्नय का भञ्ज, मिथ्यात्व का नाशक चन्द्रविमान के समान वर्तुलाकार समवसरण का निर्माण किया। उसी समवसरण के बीचों बीच गन्धुकुटी में अष्टप्रातिहार्यों से युक्त भगवान् विराजमान थे। समवसरण बारह कोठों से युक्त था जिनमें क्रमशः प्रथम में मुनि एवं गणधर, द्वितीय में कल्पवासी देवों की सुन्दर अम्परायें, तृतीय में व्रतधारी महिलायें, चतुर्थ में ज्योतिषी देवों की स्त्रियाँ, पञ्चम में व्यन्तर देवों की नारियाँ, षष्ठ में तामनारियाँ, सप्तम में भवनवासी देव, अष्टम में मधुर वाणी से युक्त किन्नरगण एवं नवम् में चन्द्र एवं सूर्य नामक ज्योतिषी गण, दशम में शुभ मन वाले ज्योतिषी देव, ग्यारहवें में राजागण और बारहवें कोठे में शुभदृष्टि से युक्त तिर्यञ्ज स्थित थे, समवसरण के चारों ओर 400 गृयूति प्रमाण क्षेत्र में सुभिक्ष था।

आकाश में स्थिर जिन भगवान् के चार घातिया कर्मों के घात के कारण दस अतिशय प्रकट हुए और देवों के द्वारा भी चौदह अतिशय किए गए।

समवसरण में सर्वप्रथम तो सौधर्म का आगमन हुआ, उसकी जिन स्तुति के बाद राजा स्वयम्भू भी सेना सहित आया और गुणानुवाद के अनन्तर अत्यन्त संवेग के कारण उसने तपधार (मुनिपद) धारण किया और ज्ञान का धारक प्रथम गणधर हुआ। प्रभावती भी श्रेष्ठ (प्रमुख) आर्यिका बनी।

शक्र के भय से कमठ नाम का वह देव भी अपना सिर झुकाकर जिनेन्द्रदेव की शरण में आया और बोला "नित्य, निरंजन तथा सभी जीवों का हित करने वाले हे पार्श्व जिन, मेरी रक्षा कीजिए। हे देव! मुझ पापी ने चिरकाल तक जो कुछ किया है, वह अत्यन्त घना अज्ञानान्धकार मेरे विनय भाव से और आपके प्रसाद से मिथ्या होवे"।



सन्धि-5 :

केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी के स्वामी धरणेन्द्र द्वारा नमस्कृत श्री पार्श्व जिन का समवसरण पृथ्वीमण्डल पर विचरण करने लगा। सर्वप्रथम वे कन्नौज नगरी पहुँचे। वहाँ के वनपाल ने यह समाचार अपने राजा अर्ककीर्ति को सुनाया जिसे सुनते ही अर्ककीर्ति ने शीघ्र ही उस दिशा में सात पग जाकर हाथ जोड़कर प्रणाम करके पुनः सिंहासन पर बैठ गया। उसने वनपाल के लिए प्रचुर पुरस्कार दिया और अपने परिजनों सहित श्री पार्श्व प्रभु के पास गया और तीन प्रदक्षिणा देकर, प्रणाम कर अपने कोठे में बैठ गया। फिर उसने भगवान से श्रावक धर्म पूछा। क्षणभर में जिनवाणी निर्गति होने लगी। गणधर ने उसे अपने विमल मन से धारण किया और राजा से कहा कि- हे नरेश! मनोवाञ्छित सुखों को प्रदान करने वाले 'सागर धर्म' का श्रवण करो।

मिथ्यात्व भावना का त्यागकर अष्टाङ्गों से विशुद्ध सम्यग्दर्शन को धारणकर उसका मन में ध्यान करो, जिससे कि लोक ओर परलोक में सुख प्राप्त कर सको। जिन शासन में संवेग एवं निर्वेद, निन्दा तथा आत्मगर्हा उपशम तथा बहुभक्ति, वात्सल्य एवं अनुकम्पा आदि गुणों से सम्यक्त्व होता है। अरहन्त ही देव हैं, अन्य कोई नहीं, वह अठारह दोषों से मुक्त, निष्काम और इन्द्रियरूपी गज-समूह का दलन करने वाले के लिए सिंह के समान हैं। जो परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ साधु हैं उनको प्रणाम करो। धन्य दशलक्षणधर्म का पालन करो। सम्यक्त्व से सुर-नर सम्पदादि का सुखभोग करके फिर शिव पद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

सभी जीवों कि लिए मैत्री का विधान किया गया है अतः किसी भी जीव की हिंसा मत करो। मधु, मद्य और मांस को दूर से ही त्याग देना चाहिए, जिससे दया का भाव बढ़े। पाँच उदुम्बर फलों तथा कन्दमूल के भक्षण का त्याग करो। विवेकशील व्यक्ति को ऐसा वचन बोलना चाहिए जिसमें पाप (असत्य) की अल्प भी सम्भावना न हो जो व्यक्ति मन, वचन, काय से घोर-कृत्प को छोड़ देता है, वह सुख को प्राप्त करता है। व्रत की रक्षा के लिए अपनी पत्नी में ही राग करें व अन्य सब पर नारियों की ओर से अपनी कुदृष्टि को रोके। धन-धान्य, स्वर्ण, गृह, दासी-दास, ताम्बूल, विलेपन एवं उत्तम सुवास; इनके प्रति लोभ की भावना का त्याग कर प्रमाण कर लेना चाहिए और निज चेतन स्वभाव का चिन्तन करना चाहिए।



दुखों का क्षय करने वाले ये पञ्चाणुव्रत कहे गये हैं। पुनः तीन गुणव्रत एवं चार शिक्षाव्रत सुनो, जो कि शाश्वत सुख प्रदान करने वाले हैं। दिशाओं-विदिशाओं का प्रत्याख्यान, मन का निरोध एवं प्रतिदिन प्रातःकाल में नियम ग्रहण करना। पाप बंध के कारण भूत कार्यों से विरक्ति, हिंसक उपकरणों का न देना और न लेना। अपने मन को स्थिर करके भोगों और उपभोगों की संख्या सीमित करना क्योंकि इनसे संवर बढ़ता है और संसार रूपी वृक्ष जल जाता है।

देशों का सीमा का निधारण करना, मन को स्थिर करके आत्मध्यान रूप सामायिक करना, आरम्भादि हिंसा का त्याग कर प्रोषधोपवास करना, सन्पात्रों को आहार देने रूप अतिथिसंविभाग व्रत का पालन; ये चार शिक्षाव्रत कहे गये हैं।

प्रत्येक व्यक्ति को रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। अनछना जल न तो स्वयं पीना चाहिए और न दूसरों को पिलाना चाहिये; क्योंकि दो सड़ी धाले जल में सम्मूर्छन जीव होते हैं। जुआ, मांसाहार, सुगंधेवन, वेश्या, शिकार, गोरी और कुशील; ये सात व्यसन छोड़ देने चाहिए, क्योंकि इनको जग्ने वाला इस लोक और परलोक में निन्दा तथा पाप का भागी होता है।

इस प्रकार श्रावक के व्रतों को सुनकर तथा त्रियोग विशुद्धि करके राजा अर्ककीर्ति ने सम्यक्त्व प्राप्त किया। उसने ज्ञानसम्पन्न गुरु को प्रणाम किया और कमठ को निकट ही बैठा देखकर पूछा कि- "इस दुष्ट पापी ने किस कारण से पार्श्वप्रभु पर उपसर्ग किया? भव्यजनों को बोधित करने के लिए सूर्य के समान हे गणधर, उसका कारण मुझसे कहिये।" अर्ककीर्ति के इस प्रश्न को सुनकर गणधर ने जिन भगवान के मुख से निर्गत वाणी सुनकर उसके सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए कहा कि- प्रथम जिनेन्द्र द्वारा कथित सर्वाकाश अनन्तानन्त रूप में प्रकाशित है। उसके मध्य में तीन लोक हैं, जो असंख्य प्रदेशों से विशिष्ट हैं, अकृत्रिम हैं, स्वतः सिद्ध हैं प्रदेशों से विशिष्ट हैं, अकृत्रिम हैं, स्वतः सिद्ध हैं और प्रसिद्ध हैं, न कोई उसका हरण कर सकता है, न धारण और न निर्माण। घनवातवलय, तनुवातवलय एवं घनोदधिवातवलय पर आधारित हैं। सारा लोक जीवाजीवों से भरा है। उन सभी का पिण्ड जिन भगवान ने बीस-बीस हजार योजन प्रमाण ऊपर ऊपर कहा है। ऊर्ध्व प्रदेश में क्रमशः हीन-हीन हैं तथा लोक के शिखर पर वे क्षीण हो जाते हैं। लोक शिखर पर क्रमशः दो कोस, एक कोस एवं 1575 धनुष प्रमाण हैं। तीनों ऊर्ध्व प्रदेशों में यह पिण्ड विशेष रूप से

जानकर प्रकाशित किया गया। यह लोक चौदह राजू प्रमाण ऊँचा है और इसका क्षेत्रफल 343 धनराज है। उसी के मध्य में त्रसनाड़ी है, वह सर्वत्र त्रस जीवों से भरी हुई है। दुखनाशक जिन भगवान ने उसके बाहर के क्षेत्र को पाँच प्रकार के स्थानों में भरा हुआ कहा है। पारणान्तिक केवल एवं उपपाद समुद्रघात करते समय इन तीनों लोकों में उनका गमन त्रसनाड़ी के बाहर भी अविरुद्ध है, ऐसा जिनागम से सिद्ध है। लोक के मूलभाग में उसका प्रमाण पूर्व से पश्चिम में सात राजू कहा गया है और फिर मध्यलोक में एक राजू, ऊर्ध्व लोक में ऊपर जाकर पाँच राजू और पुनः एक राजू विभक्त है और दक्षिण उत्तर दिशा में लोक का आयाम सर्वत्र निरन्तर सात राजू जानना चाहिए। दस, सोलह, बाईस, अट्ठाईस, चौंतीस, चालीस एवं छियालीस राजू अर्थात् 196 राजू प्रमाण सात नरक पृथिवियों का धनफल जानना चाहिए। इस प्रकार सातों नरकों का प्रमाण एक सौ छियानवे राजू है। एक सौ सैंतालीस राजू ऊर्ध्वलोक का प्रमाण जानना चाहिए। इस प्रकार गणना करके ये 343 राजू कहे गये हैं।

उपर्युक्त त्रैलोक्य का स्वरूप बताने के बाद घम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवा एवं माघवी नरकों का वर्णन करते हुए उन नारकियों की आयु, वेदना एवं मृत्यु के बाद होने वाली गतियों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

नरक वर्णन के बाद भवनवासी देवों के भेद, शरीर, आयु और देवियों के प्रमाण, व्यन्तर देवों के भेद, भ्रमण स्थान एवं शरीर प्रमाण, ज्योतिष्क देवों का वर्णन, स्वर्ग कल्पों का वर्णन, सौधर्म तथा ईशान स्वर्ग के विमानों की संख्या, सनत्कुमारादि स्वर्गों की विमान संख्या एवं आयु प्रमाण तथा अन्य देवों की आयु का प्रमाण एवं उनके सुख, उनमें विशेषता भेद आदि का सविस्तार वर्णन किया गया है।

मध्यलोक एक राजू प्रमाण विस्तार वाला द्वीप एवं सागरों से युक्त है, जो कि असंख्यात हैं। मध्य लोक के बीचों-बीच द्वीपों में प्रधान तथा उनके राजा के समान जम्बू द्वीप है। वह एक लाख योजन विशाल प्रमाण वाला है यद्यपि वह आकार में सबसे लघु है परन्तु गुणों में ज्येष्ठ है। मेरुपर्वत की दक्षिणी दिशा में भरत क्षेत्र है उसके मध्य में विजयार्द्रपर्वत है। उस पर्वत के शिखर पर नौ पूर्णभद्र नामक कूट हैं। गंगा, सिन्धु आदि नदियों से भरत क्षेत्र के छह खण्ड किये गये हैं। आर्यखण्ड में हिमवान-महाहिमवन्त नामक कुलाचल हैं। गंगा, सिन्धु आदि नदियाँ पद्महद से निकली हैं और सभी समुद्र में गिरती हैं। हिमवान्

पर्वत की उत्तर दिशा में हेमवत पर्वत है वहाँ के मनुष्यों को आयु एक पत्य एवं शरीर का प्रमाण एक गव्यूति है, वह भोगभूमि जघन्य होने पर भी श्रेष्ठ सुखों की खान मानी गई है।

महाहिमवन्त पर्वत, हरि वर्ष, क्षेत्र, निषधपर्वत, पूर्व एवं अपर विदेह, रम्यक् हैरण्यवत् तथा ऐरावत क्षेत्र, लवणोदधि, धातकीखण्ड कालोर्दधि समुद्र, पुष्करार्द्ध द्वीप, मानुषोत्तर पर्वत आदि स्थानों का भी विशेष वर्णन किया गया है।

सभी द्वीपों में सूर्य-चन्द्रमा आदि का संख्या एवं उनकी स्थिति आदि के बारे में बतलाने के बाद कहा गया है कि ढाई द्वीप के बाहर भी अन्धकार का नाश करने वाले चन्द्र, सूर्य एवं नक्षत्र घटाकार रूप में हाथी के समान विचरण करते हुए वहाँ तक स्थित हैं, जहाँ तक कि स्वयंभूरमण समुद्र पार होता है।

सन्धि-6 :

जम्बूद्वीप के सुरम्यनामक देश में पोटनपुर नाम का प्रमुख नगर है, जिसमें सूर्य के समान तेजस्वी अरविन्द नाम का राजा रहता था। उस राजा का विश्वभूति नामक नीतिश्रेष्ठ मंत्री था। उसकी अनुन्धरी नाम की शुद्ध शीलवती भार्या थी। उसके कमठ और मरुभूति नामक दो पुत्र थे जो क्रमशः कुबुद्धि और सुबुद्धि से युक्त थे। उस कमठ की वरुणा नाम की भार्या थी, जो अनेक सुखों की खान और मधुरभाषिणी थी परन्तु मरुभूति की पत्नी वसुन्धरी कुटिल चित्तवाली एवं चंचल यौवन के मद से मत्त रहती थी। एक दिन कमठ ने अनुजवधू वसुन्धरी को देखा और उसमें आसक्त हो गया। वह भृष्ट स्त्री भी उसमें आसक्त हो गई और समय पाकर कमठ ने उसका शीलभंग कर दिया।

उपर्युक्त वृत्त जब राजा को ज्ञात हुआ तब राजा अत्यधिक कुपित हुआ। उसने मरुभूति से कहा कि "तुम्हारा भाई कुशील है। उसे मैं नगर से निकालता हूँ।" तब मरुभूति ने कहा "हे नरेन्द्र! तुम्हें किसी पापी ने झूठ कह दिया है, वह माननीय नहीं है, अयुक्त है।" इस प्रकार मरुभूति के भाई के प्रति स्नेहसिक्त वचन सुनकर राजा ने उसका उल्लंघन नहीं किया किन्तु दूसरे दिन राजसेवकों द्वारा राजा से यह कहे जाने पर कि "हमने कमठ को सुरा-आरुढ़ देखा है" राजा अत्यन्त रुष्ट हुआ और उसने कमठ को अत्यधिक अनादरित कर नगर से बाहर निकाल दिया।

निष्कासित होने पर कमठ वन में पहुँचा, वहाँ उसने शैव तापसों के समूह को देखा। तब कमठ ने उन तपस्वियों के स्वामी को प्रणाम किया और पूछे जाने

पर अपने को निर्दोष बताते हुए दीक्षा संस्कार करने की प्रार्थना की। अनन्तर तापसव्रत को प्राप्त कर वह पाखण्डी साधु बन गया और तप करता हुआ वन में रहने लगा।

इधर कमठ के लघु भाई मरुभूति भ्रातृ-विद्रोह के कारण अत्यधिक शोकाभिभूत हुआ और एक दिन राजा से कहा कि आप आज्ञा करें तो मैं कमठ से क्षमायाचना कर लूँ क्योंकि उसे व्यर्थ ही दण्डित किया गया है। राजा के द्वारा रोके जाने पर भी मरुभूति क्षमा माँगने वन में पहुँचा और जब वह उसके चरणों में सिर रखकर क्षमा माँग रहा था तभी उस कमठ ने उसे सिर पर शिला के आघात से मार डाला।

आर्तभाव से मरकर मरुभूति सल्लकी वन में वज्रघोष नामक गजेन्द्र (हाथी) हुआ। वरुणा नाम की जो कमठ की पत्नी थी, वह मरकर वहीं हथिनी हुई। वह उस हाथी के साथ भोग विलास में रत रहती थी। जब यह हाथी वन में मदोन्मत्त व रति सुख में मस्त हो रहा था, उसी समय पोदनपुर में राजा अरविन्द ने मनोहर जलकुण्ड में घों की देखकर सोचा कि- "मैं इसी मंचपटल के समान आकार का पृथ्वी तल पर संसार दुख का नाश करने वाला एक जिनगृह (जिनमन्दिर) बनवाऊँगा।" इस प्रकार सोच कर वह कल्पनालोक में विचरण कर रहा था तभी उसने पुनः आकाश को देखा तो वहाँ मेष पटल को नहीं पाया। शुद्ध आकाश को देखकर राजा ने विरागपूर्वक अपने मन में सोचा कि- "जिस प्रकार घने बादलों का आगमन क्षणभर में नष्ट हो गया, उसी प्रकार से संसार का स्वरूप ही वैसा कहा गया है।" यह सोचकर वह अत्यधिक वैराग्यचित्त हो अपने पुत्र को राज्य समर्पित कर मुनि हो गया और उसी सल्लकी वन में कायोत्सर्ग में स्थित हो आत्म स्वरूप का ध्यान करने लगा।

राजा अरविन्द मुनि बन जब तपस्या कर रहे थे तभी उस वन में वणिक्श्रेष्ठ बड़े भारी सार्थ के साथ वहाँ रुके। जब वे भोजन कर रहे थे तभी वह हाथी वन जीवों को कम्पायमान करता हुआ वहाँ आया। उस हाथी के भय से वे वणिक् भी भागकर मुनि की शरण में आ गये तब वह हाथी भी मुनि के पास आया। आतापन योग से स्थित उन मुनिराज को क्रोध वश जब वह मारने लगा तभी पूर्व भव का स्मरण हो जाने के कारण वह पृथ्वी पर सिर झुकाकर खड़ा हो गया। उसी समय मुनिराज का योग समाप्त हुआ और वे बहुज्ञानी मुनि उस गजश्रेष्ठ से बोले- हे मरुभूति! मेरे द्वारा बार-बार रोके जाने पर भी तुम रुके नहीं। दुष्ट कमठ

द्वारा किए गए शिला के आघात के आतंभाव से मरकर तेरा वही जीव यह हाथी हुआ है तथा मैं पौदनपुर का राजा अरविन्द था वह तप धारण कर वन में स्थित हो गया है।

हे गजश्रेष्ठ! अब तुम किसी को दुखी मत करना, क्योंकि हिंसा से नरक में दुख प्राप्त होता है, जिससे जीव संसार-समुद्र में डूबता है और चौरासो लाख योनियों में भ्रमण करता है। हिंसा से पुरुष कुत्ता एवं दुर्गन्धयुक्त होता है। हिंसा से व्यक्ति पडगु, बहिरा एवं अन्धा होता है। हिंसा से व्यक्ति तुरन्त ही दीर्दर्शनीय हो जाता है। जो हिंसा करता है अथवा जो तिलमात्र भी मांस भक्षण करता है वह नाश को प्राप्त होता है। हे श्रेष्ठ गजेन्द्र! तुम हिंसा छोड़ दो, अपने को दुर्गति में मत ढकेलो। निर्मल सम्यग्दर्शन से युक्त पवित्र श्रावक व्रत ले लो। अपने दुष्कृत का यह प्रतिफल देखो कि ब्राह्मण भी मरकर कलि के समान काला हाथी हुआ।

उस आसन्न भव्य गज ने मुनिराज के सदुपदेश को सुन उन्होंने के चरणों में प्रणाम कर व्रत ग्रहण किये। उसके बाद संसार रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य के समान भुनिवर विहार करगये और व्रती गजराज भी वन में भ्रमण करने लगा। वह दूसरों के द्वारा तोड़े हुए वृक्षों के पत्तों को खाता हुआ श्रावक व्रत की रक्षा स्थिर भाव से करता था। वह जल को भी मदरहित भाव से जल में प्रविष्ट होकर पीता था, पंचेन्द्रिय जीव की विराधना नहीं करता था। वह मार्ग में पिपीलिका आदि कीड़ों को धीरे-धीरे देखता हुआ चलता था। वीतराग मुनि के वचनों का ध्यान करता था। कभी भी आतं या रौद्र भाव मन में नहीं लाता था। अहर्निश वनगुल्म में रहता, जब चलता तो गजसमूह के पीछे-पीछे चलता। वह धैर्यवान् विरस आहार लेने एवं नित्य परीषह सहने से कृशकाय हो गया। किसी अन्य दिन जब वह जल पीने के लिए सरोवर में घुसा तो कृशकाय होने से वहीं फँस गया।

इधर तापस कमठ भी रौद्रध्यान के कारण मरकर वहीं कुक्कुट नाम की सर्प योनि में धवलवर्ण का तथा साक्षात् हलाहल के समान दुष्ट सर्प हो गया। जिस स्थान पर वह हाथी फँस गया था वह सर्प वहाँ आया, वह ऐसे लगा मानो गजेन्द्र के लिए क्षयकारी काल ही आ गया हो। अतीत के बैर का जिसे भान हो गया है, ऐसे उस सर्प ने उस हाथी को डँस लिया, किन्तु वह किसी भी प्रकार दुःखित न हो रम्य जीव दया-धर्म से मन का संवरण करके और अनशन विधि ग्रहण करके मरकर सहस्रार-कल्प में उत्पन्न हुआ और देव योनि में श्रेष्ठ सुखों

का सेवन करने लगा। मणिमय कुण्डल युगल और मुकुट का धारी वह प्रबल श्रेष्ठ देव अप्सरागणों को धुब्ध करने वाला हुआ। सोलहसागर की दीर्घ आयु को क्रीड़ापूर्वक भोगकर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में जहाँ लोकों में श्रेष्ठ नगरी शोभायमान है, वहाँ जयश्री के स्थान स्वरूप अशनिगिरि (विष्णु गिरि) नामक श्रेष्ठ विधाधर राजा के यहाँ उसकी तद्वितवेगा नाम की पत्नी के गर्भ में वह देव आया और जन्म लेकर अशनिवेग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ राज्यभोग भोगकर निर्वेद को प्राप्त हो उसने समाधिगुप्त नाम के श्रेष्ठ मुनि के समीप तप धार धारण कर लिया।

क्रोध, मान, माया एवं मद को शोषित करते हुए शील युक्त हो मोह का दहन करते हुए जब वह ऋषि हिमगिरि की गुफा में नासाग्रदृष्टि करके कायोत्सर्ग में स्थित था, तभी कुक्कुट नामक जो विषधर धूमप्रभा नरक में अत्यन्त दुःख भोगकर इसी गिरिगुफा में अजगर हुआ था उसने उन मुनि को खींच लिया। उस अजगर के द्वारा निगला जाकर वह ऋषि श्रेष्ठ मरकर अच्युत स्वर्ग में आठ ऋद्धियों का स्वामी एवं जय लक्ष्मी का धारी सुन्दर देव हुआ और वहाँ बाईस सागर पर्यन्त सुख भोगता हुआ वह देव इसी द्वीप के ऊपर विदेह स्थित पद्म नामक देश में आशापुरी नाम की नगरी में वज्रपीड नामक राजा की विजय नाम की रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ और पूर्वकृत पुण्य के उदय से वज्रनाभ नाम का सुप्रसिद्ध चक्रेश्वर हुआ। उसका छियानवे हजार रानियों का अन्तःपुर था। एकछत्र पृथ्वी को भोगकर उसने फिर उसे बूढ़ी दासी के समान त्याग दिया और क्षेमङ्कर स्वामी को प्रणाम करके एक हजार राजाओं के साथ तप ग्रहण कर पर्वत पर स्थित हो सर्व हितकारी तप करने लगा।

अजगर (कमठ का जीव) मरकर छठवें नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ बाईस सागर पर्यन्त दुःख भोगकर पुनः संसार में क्लेश सहकर उसी वन में आकर शबर भील (कुरंग नाम वाला) हो गया।

कुरंग नामक उस दुष्ट शबर ने वहाँ महामुनि को ध्यान मग्न देखा। वह पापी उन्हें देखकर क्रोधित हो उठा और अपने पूर्व भव के वैर का स्मरण कर उसने उन साधु को बाण से बेध दिया, जिससे उनका शरीर जर्जरित हो गया, तथापि मुनीश्वर विचलित नहीं हुए और समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर भव-व्याधि का क्षयकर वे क्षणमात्र में ही ग्रैवेयक में उत्पन्न हो, श्रेष्ठ सुखों के स्थान स्वरूप विमान में प्रसन्न मन वाले अहमिन्द्र हो गये। उस विमान में सत्ताईस सागर पर्यन्त

आयु तक स्त्री रहित सुखों का आस्वादन कर शोक, रोग एवं आतङ्क विहीन हो, परमात्मारस की भावना में लीन रहते हुए सरस अतीन्द्रिय सुखों का भोगकर मन में सम्यग्दर्शन की भावना करके जम्बूद्वीप के कौशल देश की अयोध्यापुरी में पर्वत के समान बज्रबाहुनामक नरेश की प्रभंकरी नामक पट्टरानी के गर्भ में आकर आनन्द नामक अत्यन्त रूपवान पुत्र के रूप में जन्म लिया।

जन्म से निडर व तेजस्वी वह आनन्द नाम का शुद्ध हृदय नरेश्वर किसी दिन जिन मन्दिर गया, वहाँ नाना मणियों से जटित स्वर्ण कलशों से जिन प्रतिमाओं का अभिषेक किया, पूजा की और नमस्कार कर बैठकर गया। तभी वहाँ एक मुनिवर पधारे। तब माया रहित सन्तुष्ट राजा ने मुनि के चरण कमलों में नमस्कार किया और पृथ्वी पर सिर लगाकर गर्व छोड़कर चिरकृत अशुभ कर्मों का विध्वंस किया। नमस्कारोपरान्त राजा ने मुनिराज से पूछा कि—“पाषाण प्रतिमा के अर्चन एवं न्हवन से क्या पुण्य होता है? यह प्रश्न सुनकर मुनिराज ने कहा कि—जो व्यक्ति जिनवर को भावपूर्वक मन में मानता है, वह व्यक्ति शाश्वत सुख (मोक्ष) को पा लेता है और जो पाषाण प्रतिमा मानकर उसकी निन्दा करता है और उसे भग्न करता है वह मरकर नरक में जाता है, बहुत दुखों को भोगता है और वह पापी वैतरणी में डूबता है।”

हे राजन्! यद्यपि जिन प्रतिमा अचेतन है तथापि उसे वेदन शून्य नहीं मानना चाहिए। संसार में निश्चित रूप से परिणाम (भाव) ही पुण्य और पाप के कारण होते हैं। जिस प्रकार वज्रभित्ति पर कन्दुक पटकने पर उसके सम्मुख वह फट जाती है, उसी प्रकार दुख-सुखकारक निन्दा एवं स्तुतिपरक वचनों के प्रहार से यद्यपि प्रतिमा भङ्ग नहीं होती तथापि उससे शुभाशुभ कर्म तुरन्त लग जाते हैं। उनमें से धार्मिक कर्मों को स्वर्ग का कारण कहा गया है। यह जानकर शुद्ध भावनापूर्वक जिन भगवान का अहर्निश चिन्तन करो और उनकी प्रतिमा का अहर्निश ध्यान करो। यह सुनकर राजा ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया और उसी वचन को अपने मन में भाया।

मुनिराज को प्रणाम करके राजा अपने भवन में आया और फिर सूर्यमण्डलाकार जिन भवन का निर्माण कराया और वहाँ वह अत्यन्त उत्साह से उनका नित्यदर्शन कर तथा तीन प्रदक्षिणायेँ देकर उनका ध्यान करता था। इसी प्रकार अन्य अनेक विधियों का आश्रय लेता हुआ वह वहाँ अमुनि अर्थात् गृहस्थ होते हुए भी मौनाश्रित अर्थात् मुनि के समान शोभायमान होता था। उस

राजा ने अन्य किसी दिन संसार की असारता को जानकर सागर गुप्त मुनि के पास मुनि दीक्षा ले ली और गिरि-कन्दराओं, मृगों अर्थात् सिंह आदि वन्य जीवों के भय को छोड़कर वहीं स्थित हो ब्रह्माभ्यन्तर तप एवं रत्नत्रय का ध्यान करते हुए सोलह भावनाओं की आराधना करने लगे। जब वे महामुनि खदिरवन में मृतकासन से कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित थे तभी वह जो मृगमारुत भील था तथा जिसने तप में ब्रेष्ठ मुनीन्द्र को बंधा था और फिर मरकर वह वहाँ से तमसमा नामक नरक में गया था, वही जीव वहाँ पर्याप्त दुख सहन कर पुनः निकला और उसी वन में सिंह योगि में उत्पन्न हुआ, जहाँ मुनि निरन्तर ध्यान में मग्न थे। उसने उन मुनिभज को देखकर तथा दुर्नीतिपूर्ण वैर का स्मरण कर वेगपूर्वक उन्हें खा डाला।

क्षमागुण के धारक वे मुनि चौदहवें स्वर्ग में उत्पन्न हुए। देवों के द्वारा वन्दित एवं अनिन्द्य वह देव नाना प्रकार के भोग-विलासों को बीससागर की आयु तक भोगता रहा। बीस पखवारों में श्वास छोड़ता था जिसे सेवा-शुश्रूषा की भावना से सुरनारियाँ झेलती थीं। उसने बीस सहस्र वर्ष आयु को भोगा और अहर्निश भोगों से अपने मन को रज्जित करता रहा। वह सिंह (कमठ का जीव) भी मरकर धूमप्रभा नामक नरक में उत्पन्न हुआ और दुख भोगता रहा।

हे रविकीर्ति नरेश्वर! तुम इसे भली-भाँति जानो तथा मिथ्यात्व और कषाय से मोहित मत होओ। काल सीमा को समाप्त कर वह देव भरत क्षेत्र की काशी नामक नगरी के राजा अश्वमेध की रानी वामा देवी के यहाँ गर्भ में आकर प्रभु पार्श्वनाथ नाम के जिनेश्वर रूप में जन्म लिया।

धूमप्रभा से निकलकर वह (कमठ का जीव) तीव्र क्रोध के वशीभूत कमठ नामक शपस हुआ और फिर वह पंचाग्नि तप का क्लेश सहकर तथा शरीर छोड़कर संवर नामक देव हुआ। आकाश मार्ग से जाते हुए एक दिन उसने तप तपते हुए ध्यान स्थित स्वामी पार्श्वनाथ जिनेन्द्र को देखा और पूर्वभव का वैर जानकर उसने महान आपत्तिकारक उपसर्ग किया इस कारण अपना आसन कम्पित होने से शेषनाग (धरणेन्द्र) वहाँ आया और उसने उपसर्ग का निवारण किया। हे नरेश! यही वैर का कारण जानो।

यह वृत्त सुनकर उस रविकीर्ति नरेश ने विमल सम्यक्त्व ग्रहण करके पार्श्व जिनेश के चरणों में प्रणाम किया फिर अपने नगर को लौटकर जिनभक्त हो गृहस्थ के व्रतों का पालन करने लगा। उस रविकीर्ति ने सारे महीतल को जिनायतनों से अलंकृत किया। इस प्रकार वह अखण्डराज्य करने लगा।



अनेक सुखों को प्रदान करने वाले, जिन धर्म रूपी रसायन का जिसने नरभव में सेवन नहीं किया वह दुर्लभ रत्न के समान नर जन्म को हार जाता है और शुभगति को दूर कर देता है।

सन्धि-7 :

श्री पार्श्व जिनेश देवों एवं मनुष्यों से परिचरित होकर विहार करने लगे और संसार से पार उतराने वाली वे अपनी वाणी से भव्यजनों का शासन करते हुए धर्म का प्रकाश करने लगे। वे लोक पूज्य देवाधिदेव सभी के मन के संशयों के मिटाने वाले थे।

किन्हीं ने घर का मोह छोड़कर तथा सभी प्रकार के सुखों को प्रदान करने वाले महाव्रत तथा किन्हीं ने अणुव्रत धारण कर लिये। अश्वसेन ने मुनि और वामादेवी ने आर्यिका पद धारण किया।

पार्श्व के तीर्थ में दस गणधर हुए, जिन्होंने श्रेष्ठ जिनवाणी का उद्धार किया। उन पार्श्व के चार सौ चतुर्दशपूर्वों के धारी एवं अठारह सौ शिष्य कहे गये हैं। पन्द्रह सौ अवधिज्ञान के धारक मुनि, उनसे तिगुने विक्रिया ऋद्धि के धारक और उनसे भी तिगुने वहाँ प्रधान केवली थे। एक हजार नब्बे स्त्रीमुक्त स्थान को प्राप्त करने वाले, नौ सौ मनः पर्ययज्ञानधारी मुनीन्द्र, इन्द्रों द्वारा स्तुत्य आठ सौ वागेश्वर, अड़तीस हजार आर्यिकायें, एक लाख व्रती, श्रावक एवं श्राविकाओं की संख्या तीन लाख थी असंख्यात देव स्वामी पर्व की सेवा कर रहे थे। वहाँ तिर्यज्ज्वों का कोई प्रमाण ही न था। वे जिनवर भाषित पदार्थों को सुन रहे थे।

चतुर्विध संघ के साथ विहार करते हुए वे पार्श्व जिनेन्द्र "सम्मेद शिखर" पहुँचे। उस पर्वत की चोटी पर मन और वचन को अवरुद्ध करके काययोग से जिन भगवान ने शीघ्र ही दण्ड-कपाटक-समुद्घात किया। इस प्रकार चार समयों में पार्श्व ने दण्ड, कपाट, प्रतर एवं लोकपूर्ण समुद्घात करके समस्त संसार को पार कर लिया। वेदनीय, नाम एवं गोत्र; इन तीन अघातिया कर्मों को आयुर्कर्म के समान कर लिया और ध्यान में इस प्रकार स्थित हुए कि जिससे कर्म कट जावें। आत्म प्रदेशों का संवरण करके वे जिनवर तीसरे शुक्ल-ध्यान में स्थित हो गये, जिसमें उन्होंने अघातिया कर्मों की शेष बहत्तर प्रकृतियों का क्षय किया। तेरहवें गुणस्थान में ही स्थित रहते हुए फिर अयोग केवलि गुणस्थान में स्थित हो गये, वहाँ पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण काल जितनी स्थिति करके कर्मों की शेष अन्तिम तेरह प्रकृतियों का क्षय किया, इस प्रकार इन पचासी

प्रकृतियों का उच्छेद कर पार्श्व प्रभु ने श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन कर्मों को पूर्ण रूप से ध्वस्त करके निर्बाध रूप से ऊर्ध्वगमन किया।

इस प्रकार कलिमलरहित जिनवर ने शिवपद (मोक्ष) प्राप्त किया और वे सिद्ध, बुद्ध एवं शुद्ध अरूपी शरीर के धारक हुए। अष्टगुणों से समृद्ध चैतन्य सिद्ध होकर उन्होंने शाश्वत सुखरूपी धन प्राप्त कर लिया। वहाँ उनकी अरूपी देह अन्तिम लौकिक देह से आकार में किञ्चित् ऊन (कम) तथा तेजोमय अवस्था में स्थित हो गई। उस सिद्धशिला पर तनुवातकलय के अन्तिम भाग में चौरासी लाख सिर धिड़े हुए हैं। वे सिद्ध अनन्त गुणों के ईश्वर होते हैं। पार्श्वप्रभु ने शुद्ध आत्म स्वभाव रूप, त्रियोग रहित, निरंजन एवं दोषरहित निर्वाण पद प्राप्त किया। उनके साथ अन्य छत्तीस मुनि भी सुखपूर्वक अजर-अमर होकर स्थित हो गये।

जिनवर का निर्वाण जानकर अनिन्द्य इन्द्र सुरवृन्द सहित आया। उस वीर ने विक्रियाक्रुद्धि से मायामय धीर शरीर बनाया और उसे सिंहासन पर विराजमान किया। पुनः अष्ट प्रकार से पूजा की जो सभी के हृदयों को अति मनोज्ञ लगी। गोशीर्ष प्रमुख देवदारु, श्रीखण्ड और नाना प्रकार के काष्ठ मिलाकर उसने शय्या (चिता) निर्मित की और उस पर तत्काल ही पार्श्व जिनेन्द्र का वह मायामयी शरीर रखा। जब देवगण उसकी तीन प्रदक्षिणायें कर प्रणाम करके समीप में खड़े थे, तभी अग्नि कुमारों ने पार्श्व के चरणों में प्रणाम करके उनके शीर्ष-किरीट के आगे जाकर चिता प्रज्ज्वलित कर दी, जिससे आकाश का मार्ग अवरुद्ध हो गया और जग ने जिनवर के "मोक्षगमन" को जान लिया।

सम्पूर्ण भुवन को क्षुब्ध करने वाले अनेक सूर्यों के निनादपूर्वक वह शक्र उस प्रशंसाकारक भस्म को ग्रहण करके अपने सिर पर रखकर क्षीरसमुद्र को गया। वहाँ भस्म को क्षेपणकर इन्द्र वापिस आया और श्रीगणधर को प्रणाम करके अपनी भक्ति के अनुसार अन्तिम श्रेष्ठ कल्याणक करके स्वर्ग को चला गया।

श्री स्वयम्भू गणधर भरतक्षेत्र में धर्म-अधर्म की युक्ति प्रकाशित करके मोक्ष को प्राप्त हुआ तथा जो परमज्ञानी अन्य मुनीश्वर थे, उनमें से कोई तो अपने तप के प्रभाव से शाश्वतपुरी को गये और कोई अहमिन्द्र हो गये। प्रभावती कान्ता भी शुद्ध चित्त होकर अपने शरीर को त्यागकर अन्युत स्वर्ग में गयीं। वामादेवी भी वहीं पर उत्तम देव हुई। वहाँ से चयकर दोनों देव उसी क्रम से शिवपद को पायेंगे।



अनन्तर कवि रङ्गू द्वारा ग्रन्थ प्रणयन सम्बन्धी त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करते हुए आश्रयदाता खेळ साहू का पारिवारिक परिचय, जाति-गोत्र एवं पिछली पीढ़ियों का वर्णन किया गया। उसके बाद आश्रयदाता खेळ साहू ने कविवर रङ्गू का विनयपूर्वक सुरीत्या सम्मान किया। इसके बाद निम्न भरत वाक्य के साथ ग्रन्थ पूर्ण हुआ-

"पार्श्व प्रभु की कृपा से तृष्णा को दूर करने वाली अविरल जल धाराओं से मेदिनी नित्य तृप्त होवे। पृथ्वी भण्डल पर कलिमल के दुख क्षीण होवें और घर-घर में मंगल गीत गाये जायें। सम्पूर्ण देश उपद्रवों से रहित रहे, नरेश प्रजा का पालन करता हुआ आनन्दित रहे। जिन शासन फलेफूले, निर्दोष मुनिगण विषय वासना- से दूर रहकर आनन्दित रहें। जो श्रावककण जीव-अजीव आदि पदार्थों का श्रवण करते हैं, वे पाप रहित होकर आनन्द से रहें। सभी जन जिनेन्द्र के चरण कमलों में नतमस्तक रहें।"

कथावस्तु का मूलस्रोत :

1. तिलोयपण्णत्ती :

"इतिहासोद्भवं वृत्तं अन्यद्वा सज्जनाश्रयम्" उपर्युक्त पक्तियों महाकाव्य की सुस्पष्ट परिभाषा बताने वाले 15 वीं शताब्दी के प्रमुख कवि विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में कही, हैं, जिनका तात्पर्य है कि महाकाव्य की कथावस्तु किसी ऐतिहासिक कथानक पर आधारित या सज्जनाश्रित होना चाहिए।⁴⁰ इस सन्दर्भ में किसी भी महा काव्य (चरितकाव्य) के स्रोत का विचार करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। यहाँ भी हमें महाकवि रङ्गू विरचित "पासणाहचरित" के स्रोत के सन्दर्भ में विचार करना है-

"पासणाहचरित" के प्रमुख नायक तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के चरित के कुछ प्रमुख अंश हमें सर्वप्रथम आचार्य यतिवृषभ द्वारा प्राकृत भाषा में निबद्ध "तिलोयपण्णत्ती" (त्रिलोक प्रज्ञप्ति) में दृष्टिगोचर होते हैं। करणानुयोग का प्रमुख ग्रन्थ होने के कारण जहाँ लोकालोक विभाग, युगपरिवर्तन और चतुर्गति आदि का प्रतिपादन किया गया है, वहीं दिगम्बर जैन आगम के श्रुतांग से सम्बन्ध रखने के कारण इसमें त्रिसेष्ठ शलाका पुरुषों का भी संक्षिप्त वर्णन किया

गया है। इन्हीं शलाका पुरुषों के अन्तर्गत तीर्थंकर भी आते हैं, अतः तीर्थंकर पार्श्वनाथ के माता-पिता, जन्मस्थान, केवलज्ञान, मोक्ष-प्राप्ति चरित का विवेचन भी 'तिलोयपण्णत्ती' में हुआ है। 'तिलोयपण्णत्ती' पर आधारित तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चरित का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार :-

तीर्थंकर पार्श्वनाथ प्राणत कल्प (14वें स्वर्ग) से चपकर पार्श्वनाथ के भव में अवतीर्ण हुए।⁴¹ इनका जन्म वाराणसी नगरी में पिता हयसेन (अश्वसेन) और माता वर्मिला (वामा) से पौषकृष्ण एकादशी के दिन विशाखा नक्षत्र में हुआ था।⁴² इनके वंश का नाम उग्र वंश था।⁴³ तीर्थंकर पार्श्वनाथ बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के 84650 वर्ष बाद और चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के 278 वर्ष पहले उत्पन्न हुए थे।⁴⁴ तीर्थंकर पार्श्वनाथ की आयु 100 (सौ) वर्ष प्रमाण थी।⁴⁵ इनका कुमार काल तीस वर्ष था।⁴⁶ इनके शरीर की ऊँचाई 9 हाथ प्रमाण थी और शरीर हरित वर्ण का था।⁴⁷ इन्होंने राज्य नहीं किया।⁴⁸ इनका चिह्न सर्प था।⁴⁹ इन्हें अपने पूर्व जन्मों की स्मृति के कारण वैराग्य उत्पन्न हुआ।⁵⁰ उन्होंने अपने जन्मस्थान वाराणसी में ही दीक्षा धारण की।⁵¹ इन्होंने जिन दीक्षा माघ शुक्ला एकादशी के दिन पूवाह्न में विशाखा नक्षत्र में षष्ठ भक्त के साथ अश्वत्थ वन में धारण की।⁵² इस प्रकार इन्होंने कुमार काल में ही तप को ग्रहण कर लिया था।⁵³ चार माह तक इनका छद्मस्थ काल रहा अर्थात् चार माह तक इन्हें केवलज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ।⁵⁴ इसके बाद चैत्र कृष्ण चतुर्थी के पूर्वाह्न काल में विशाखा नक्षत्र में सक्रपुर (शक्रपुर) नामक नगर में इन्हें केवलज्ञान उत्पन्न

41 तिलोयपण्णत्ती : आ. यतिवृषभ, चउत्थो महाधियारो, गाथा-522

42 वही 548

43 वही 550

44 वही 576-577

45 वही 582

46 वही 584

47 वही 587-588

48 वही 603

49 वही 605

50 वही 607

51 वही 643

52 वही 666

53 वही 670

54 वही 678

हुआ⁵⁵ केवलज्ञान के उत्पन्न हो जाने पर नियमानुसार सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने विक्रिया ऋद्धि के द्वारा समवशरण की रचना कर दी। समवशरण का क्षेत्रफल बहुत विशाल था⁵⁶ मातंग नाम का यक्ष और पद्मा नाम की यक्षिणी तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समीप रहते थे⁵⁷ पार्श्वनाथ का केवल-काल 69 वर्ष 8 माह हैं⁵⁸ अर्थात् ये 69 वर्ष 8 माह तक केवलज्ञानी रहे। इनके दस गणधर थे, जिनमें प्रथम गणधर का नाम स्वयम्भू था⁵⁹ तीर्थंकर पार्श्वनाथ के संघ में 16000 ऋषि थे⁶⁰ इनके सात गण थे, जिनमें 350 पूर्वधर, 10900 शिक्षक, 1400 अवधिज्ञानी मुनि, 1000 केवलज्ञानी, 1000 विक्रिया ऋद्धि के धारक, 750 विपुलमति अवधि ज्ञानी और 600 वादी थे⁶¹ इनके तीर्थ में 38000 आर्यिकायें थीं। इन आर्यिकाओं में सुलोका या सुलोचना प्रमुख थी⁶²

तीर्थंकर पार्श्वनाथ श्रावणमास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को प्रदोषकाल में अपने जन्मनक्षत्र (विशाखा) के रहते 36 मुनियों के साथ सम्मेद-शिखर⁶³ से निर्वाण को प्राप्त हुए थे⁶⁴ इनके 8800 शिष्य अनुन्तर विमानों में गए। 6200 शिष्यों ने सिद्धपद को प्राप्त किया तथा 1000 शिष्यों ने सौधर्म आदि इन्द्र पदों को प्राप्त किया⁶⁵ इनका तीर्थकाल 278 वर्ष प्रमाण रहा⁶⁶

उपर्युक्त तिलोत्पण्णत्ती के विवेचन से स्पष्ट है कि इसमें भ. पार्श्वनाथ के जीवन की स्थूल बातों का ही समावेश मिलता है किन्तु उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। प्रमुख घटनाओं का उल्लेख न होने के कारण उनकी जीवनचर्या को समझने में भी कठिनाई हो सकती है और यदि रङ्गू कृत 'पासणाह चरित' के कथानक का स्रोत इसे मान लें तो फिर रङ्गू द्वारा

55 वही 700

56 तिलोत्पण्णत्ती 717-890

57 वही 935-939

58 वही 960

59 वही 963-966

60 वही 1097

61 वही 1158-1159

62 वही 1175-1180

63 वर्तमान में भारत देश के बिहार प्रदेशान्तर्गत "पारसनाथहिल" के नाम से प्रसिद्ध पर्वत है।

64 वही 1207

65 वही 1217, 1228, 1237

66 वही 1274

वर्णित सम्पूर्ण घटनायें उन की काल्पनिकता को ही दर्शायेंगी। अतः इसे पूर्ण रूप से "पासणाह चरित" का स्रोत नहीं माना जा सकता।

2-उत्तरपुराण⁶⁷

उत्तरपुराण संस्कृत भाषा में गुप्तिन आ. गुणभद्र की श्रेष्ठ कृति है। इसकी रचना उन्होंने अपने गुरु आचार्य जिनसेन के स्वर्गस्थ होने पर की थी। आचार्य जिनसेन ने तिरैसठ शलाका पुरुषों के चरित का वर्णन करने के लिए 'महापुराण' (आदिपुराण) की रचना प्रारम्भ की थी किन्तु वे इसके 42 पर्व ही लिख पाये थे कि उनकी मृत्यु हो गई, अतः अपूर्ण पुराण की पूर्ति उन्हीं के शिष्य गुणभद्र ने की और 'आदिपुराण' में 5 पर्व और जोड़कर 47 पर्वों में केवल आदिनाथ और भरत चक्रवर्ती का चरित पूर्ण किया। इसके बाद 'उत्तरपुराण' की रचना की, जिसमें शेष इकसठ (61) शलाकापुरुषों का वर्णन किया। वर्णन आधिक्य न होते हुए भी कोई भी ऐतिहासिक घटना न छूटे, इसका पूर्ण ध्यान रखा गया है। 'उत्तरपुराण' के 73 वें पर्व में वर्णित तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चरित का विभिन्न पश्चाद्वर्ती पार्श्वचरित कर्ताओं ने आश्रय लिया है। रङ्गू द्वारा लिखित "पासणाहचरित" का स्रोत भी यही है। कथावस्तु के आधार पर इसकी पुष्टि होती है। उत्तरपुराण में वर्णित पार्श्वनाथ सम्बन्धी कथानक इस प्रकार है-

जम्बूद्वीप के दक्षिण भरत क्षेत्र में सुरम्य नामक देशान्तर्गत पोदनपुर नामक नगर है। उस नगर में सुप्रसिद्ध अरविन्द नाम का राजा राज्य करता था। पोदनपुर नगर में विश्वभूति नामक ब्राह्मण अपनी अनुन्धरी नामक ब्राह्मणी (पत्नी) के साथ रहता था उन दोनों के कमठ और मरुभूति नामक दो पुत्र थे, जो विष और अमृत के समान थे। कमठ की स्त्री का नाम वरुणा तथा मरुभूति की पत्नी का नाम वसुन्धरी था। ये दोनों कमठ और मरुभूति राजा के मंत्री थे। नीच तथा दुराचारी कमठ ने वसुन्धरी के निमित्त सदाचारी मरुभूति को मार डाला।

मरुभूति भरकर मलयदेश के कुब्जक नामक सल्लकी के बड़े भारी वन में वज्रघोष नामक हाथी हुआ। वरुणा भरकर उसी वन में उसकी प्रिया हथिनी हुई। किसी एक समय राजा अरविन्द ने विरक्त हो संयम (मुनि पद) धारण कर संघ सहित वन्दनार्थ सम्मेद-शिखर की ओर प्रस्थान किया। चलते-चलते वे उसी वन में पहुँचे और सामायिक का समय होने पर प्रतिमायोग धारण कर

67 पं. डॉ. पन्ना लाल साहित्यचार्य के सम्पादकत्व में सन् 1954 ई. में भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से प्रकाशित

विराजमान हो गए। वह मदोन्मत्त हाथी उन्हें देखकर मारने के लिए उद्यत हुआ, परन्तु उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न देखकर उसे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो गया। उसने मुनिराज से धर्म का स्वरूप अच्छी तरह जानकर प्रोषधोपवास आदि श्रावक के व्रत ग्रहण किये। व्रताचरण करते हुए एक बार जब वह पानी पीने वेगवती नदी के दह में गया तो वहीं कृशकाय होने से कीचड़ में फँस गया। दुराचारी कमठ का जीव वहीं मरकर कुक्कुट नामक सर्प हुआ था। उसने पूर्वजन्म के बैर के वशीभूत हो-उस हाथी (वज्रघोष) को काट खाया, जिससे वह मरकर सहस्रा स्वर्ग में सोलह सागर की आयु वाला देव हुआ।

सहस्रा स्वर्ग में सुख-भोग भोगने के बाद आयु के अन्त में वहाँ से चयकर जम्बू द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश के विजयाई पर्वत पर विद्यमान त्रिलोकोत्तम नामक नगर में वहाँ के राजा विद्युद्गति और रानी विद्युन्माला के यहाँ रश्मिवेग नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। यौवन के अन्त में रश्मिवेग ने समाधिगुप्ति मुनि से दीक्षा धारण कर ली। किसी एक दिन वह मुनि जब हिमालय की गुफा में तप लीज थे, तभी जिस कुक्कुट सर्प ने वज्रघोष हाथी को काटा था, वही पापी धूमप्रभा नरक के दुःख भोग कर निकला और वहीं पर अजगर हुआ। उस अजगर ने मुनि रश्मिवेग को निगल लिया जिससे मरकर वह अच्युत स्वर्ग के पुष्कर विमान में बाईस सागर की आयु वाला देव हुआ।

स्वर्ग में आयु की समाप्ति पर वह पुण्यात्मा (मरुभूति का जीव) जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र में पद्म देश के अश्वपुर नामक नगर में राजा अनन्तचोर्य और रानी विजया के यहाँ बज्रनाभि नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। चक्रवती की विभूति से युक्त होने पर भी एक दिन क्षेमंकर महाराज से धर्म श्रवण कर संयम धारण कर लिया। इधर कमठ का जीव भी अजगर की पर्याय से छठे नरक में जाकर वहाँ बाईस सागर का दुःख भोगने के बाद कुरंग नामक भील हुआ। मुनि वेश में बज्रनाभि जब तप कर रहे थे तभी कमठ के जीव उस कुरंग भील ने उन्हें बाण से प्रहार कर मार डाला। वहाँ से मृत्यु के बाद वे मुनि मध्यम ग्रैवेयक के मध्यम विमान में अहमिन्द्र हुए।

सत्ताईस सागर की आयु तक दिव्य भोग भोगने के बाद वह अहमिन्द्र (मरुभूति का जीव) जम्बूद्वीपस्थ कौशलदेश के अयोध्या नगर में काश्यप गोत्री

इक्ष्वाकुवंशी राजा बज्रबाहु और रानी प्रभंकरा के आनन्द नाम का प्रिय पुत्र हुआ, जो बड़ा होने पर महावैभव का धारक मण्डलेश्वर राजा हुआ। एक बार बसन्त ऋतु की अष्टान्हिकाओं में राजा आनन्द ने विपुलमति नामक मुनि महाराज से धर्मश्रवण किया। किसी एक दिन आनन्द ने अपने सिर में सफेद बाल देखा, देखकर वे विरक्त हो गये और उन्होंने अपने पुत्र को राज्य भार सौंपकर तपोव्रत धारण कर लिया। वे क्षीर वन में तपस्या कर रहे थे कि वही पर कभठ का जीव भी भील की पर्याय से नरक में जाकर, वहाँ के दुख भोग कर सिंह हुआ था, उसने मुनि का गला पकड़कर उन्हें मार डाला। मुनिवर मृत्यु के उपरान्त अच्युत स्वर्ग के प्राणत विमान में इन्द्र हुए। वहाँ पर उनकी आयु बीस सागर की थी।

प्राणत विमान में अपनी आयु पूर्ण कर उस जीव जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रस्थ काशी देश के बनारस नामक नगर में काश्यप गोत्री राजा विश्वसेन की महारानी ब्राह्मी के यहाँ शुभमुहूर्त में पौषकृष्ण एकादशी के दिन पुत्र रूप में जन्म लिया। इन्द्रों ने आकर सुमेरुपर्वत पर उनके जन्म कल्याणक की पूजा की तथा बालक का नाम "पार्श्व" रखा। बालक पार्श्व क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होने लगा। 16 वर्ष की अवस्था में पार्श्वकुमार सेना के साथ क्रीडार्थ वन को गये। वन में उनकी माता के पिता (नाना) महीपाल देश के राजा महीपाल अपनी पत्नी के वियोग से दुःखी होकर पंचाग्नि तप कर रहे थे। पार्श्व कुमार को बिना नमस्कारादि किये खड़ा देखकर अत्यन्त कुपित हुए। वे बुझती अग्नि में लकड़ी डालने के लिए लकड़ी काटने ही वाले थे कि कुमार पार्श्व ने "इसमें जीव हैं, इसे मत काटो" कहकर रोका, परन्तु घमण्ड के कारण उसने नहीं माना और लकड़ी काट दी, जिससे उस लकड़ी के साथ उसमें रहने वाले नाग-नागिनी युगल कट गये। पार्श्व कुमार ने उस तपस्वी को पञ्चाग्नि-तप जन्य हिंसा को समझाया किन्तु पूर्व वैर का संस्कार होने अथवा अपने पक्ष के प्रति अनुराग के कारण उसने एक न सुनी। क्रोधयुक्त हो मरने पर वह महीपाल कृत तपस्या के प्रभाव से शम्बर नामक ज्योतिषी देव हुआ। वे नाग-नागिनी भी पार्श्व के उपदेश से शान्ति भाव को प्राप्त हो, मरने पर धरणेन्द्र और पद्मावती नामक नाग जाति के देव हुए।

तीस वर्ष की अवस्था में भगवान पार्श्वनाथ के पास अयोध्यानरेश जयसेन का दूत आया। उसने अयोध्या की विभूति के वर्णन के प्रसंग में भगवान ऋषभदेव का वर्णन किया, जिसे सुनकर पार्श्व को वैराग्य हो गया। वे लोकान्तिक देवों से सम्बोधित हो विमला नामक पालकी पर सवार हो अश्व वन

पहुँचे और पौष कृष्ण एकादशी के दिन प्रातःकाल तीन सौ राजाओं के साथ पंचमुष्टि केशलोच करके जिन दीक्षा ग्रहण की। अनन्तर गुमखेट नगर के राजा धन्य ने उन्हें आहार देकर अपने को धन्य किया।

भगवान पार्श्व ने चार माह छद्मस्थ अवस्था के व्यतीत किए। तदुपरान्त जब वे सात दिन का योग लेकर धर्म ध्यान में लीन थे, उसी समय कमठ का जीव शम्बर आकाशमार्ग से कहीं जा रहा था। अकस्मात् उसका विमान रुक गया। पूर्वजन्म के वैर को जानकर उसने पार्श्व के ऊपर भयंकर गर्जना के साथ महावृष्टि करना प्रारम्भ की। छोटे-मोटे पहाड़ तक लाकर उनके समीप गिराये; इस प्रकार उस दुर्बुद्धि ने सात दिन तक उपसर्ग किए। अवधिज्ञान से धरणेन्द्र और पद्मावती शम्बर द्वारा किये गये उपसर्ग को जानकर पृथ्वीतल से बाहर निकले। धरणेन्द्र ने अपनी फणाओं के ऊपर पार्श्वनाथ को उठा लिया तथा पद्मावती वज्रमय छत्र तानकर खड़ी हो गई। मोहनीय कर्म के क्षीण हो जाने से कमठ कृत उपसर्ग शान्त हो गया। चैत्रकृष्ण त्रयोदशी को पार्श्वनाथ को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उसी समय देवों ने आकर केवलज्ञान को पूजा की। केवल ज्ञान की प्राप्ति देखकर शम्बर देव भी काललब्धि पाकर शान्त हो गया और उसने सम्यग्दर्शन सम्बन्धी विशुद्धता प्राप्त कर ली। यह देख उस वन में रहने वाले अन्य सात सौ तपस्वियों ने भी मिथ्यादर्शन छोड़कर तप, संयम आदि को धारण किया। सभी सम्यग्दृष्टि होकर पार्श्वप्रभु के चरणों में नमस्कार करने लगे। केवलज्ञान प्राप्ति के 69 वर्ष 7 माह तक विहार करने के बाद आयु के एक माह शेष रह जाने पर पार्श्वप्रभु 36 मुनियों के साथ सम्मेदशिखर पर विराजमान हो गये और वहीं से निर्वाण को प्राप्त किया। निर्वाण प्राप्ति को जानकर इन्द्रों ने आकर उनका निर्वाण कल्याणक मनाया।

इस प्रकार उत्तरपुराण में भ. पार्श्वनाथ सम्बन्धी कथा निबद्ध की गई है। मरुभूति एवं कमठ ने जो भव धारण किए उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

- | | |
|---------------------------------|---------------------------|
| 1. मरुभूति | 1. कमठ |
| 2. बज्रघोष हाथी | 2. कुकुट सर्प |
| 3. सहस्रार स्वर्ग में देव | 3. धूमप्रभा नरक में नारकी |
| 4. रश्मिवेग | 4. अजगर |
| 5. अच्युत स्वर्ग में देव | 5. छठवें नरक में नारकी |
| 6. बज्रनाभिचक्रवर्ती | 6. कुरंग नामक भील |
| 7. मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र | 7. नारकी |



- | | |
|---|----------------------------------|
| 8. राजा आनन्द | 8. सिंह |
| 9. अच्युत स्वर्ग के प्राणत विमान में इन्द्र | 9. नारकी |
| 10. पार्श्वनाथ | 10. महीपाल राजा |
| | 11. शम्बर नामक देव ⁶⁸ |

कथावस्तु में रङ्गू द्वारा किए गए परिवर्तन एवं परिवर्धन

ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन चरित को वर्णित करते समय रचनाकार मूल कथा, चाहे वह सज्जनाश्रित हो, किंवदन्ती रूप हो या ऐतिहासिक, उसी रूप में निबद्ध करने का प्रयत्न करता है, फिर भी कथानक में आ रही विसंगतियों या नायक के दबते चरित्र को उजागर एवं गरिमायुक्त दिखाने के लिए वह अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा एवं बुद्धि चातुर्य का सहारा लेकर कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन कथा में करता है और वह भी ध्यान रखता है कि इससे मूल कथा का स्वरूप भी यथावत् बना रहे। महाकवि रङ्गू ने भी "पासणाहचरित" का मूल कथानक तो यद्यपि उत्तरपुराण से ही लिया है किन्तु कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन कथानक को सुगम बनाने के लिए किए हैं, जो इस प्रकार हैं:

- 1- "उत्तरपुराण" में भ. पार्श्वनाथ के पिता एवं बनारस के राजा का नाम विश्वसेन⁶⁹ बताया गया है, जबकि "पासणाहचरित" में आससेन(अवशसेन)⁷⁰ बताया गया है।
- 2- "उत्तरपुराण" में पार्श्वनाथ की माता का नाम ब्राह्मी⁷¹ और "पासणाहचरित" में वामा⁷² बताया गया है।

68 जातः प्राञ्जमरुभूतिरन्विभपतिर्देवः सहस्रारजो-
विद्येशोऽच्युतकल्भजः शिखितभृतां श्री वज्रनाभिःपतिः।
देवो मध्यममध्यमे नृपगुणौरानन्दमाऽऽनतं
देवेन्द्रो हतघातिसंहतिजखत्वस्मान्स पार्श्वेश्वरः॥
कमठः कुक्कुटसर्पः पञ्चमभू जोऽहिरभवदथ नरके।
व्याधोऽधोगः सिंहो नरकी नरपोऽनु शम्बरो दिविजः॥
उत्तरपुराण 73/169-170

69 उत्तरपुराण 73/75

70 पाः रङ्गू 1/10

71 उत्तरपुराण 73/75

72 पाः रङ्गू 1/10



- 3- "उत्तरपुराण" में पार्श्वनाथ के वैराग्य का कारण अयोध्या नरेश जयसेन के दूत द्वारा कहे गए भ. ऋषभदेव के वृत्त को माना गया है,⁷³ किन्तु 'पासणाहचरित' में वैराग्य का कारण तापस द्वारा काटी गई लकड़ी में से निकले अर्द्धदग्ध नाग नागिनी के प्रसंग को माना गया है।⁷⁴ जबकि 'उत्तरपुराण' में यह घटना पार्श्वनाथ के सोलह वर्ष की अवस्था की बतायी गई है।⁷⁵ महापुरुषों के लिये वैराग्य हेतु तुच्छ कारण भी सबल ही होते हैं, फिर संसार की ऐसी बिडम्बना (नाग नागिनी का मरण) देखकर पार्श्व का तीस वर्ष तक व्रत में रहना उचित प्रतीत नहीं होता अतः रङ्गधू ने यहाँ कथा नायक पार्श्वनाथ के चरित्र को दोषमुक्त दिखाने के लिए घटना तीस वर्ष में दिखाकर और तज्जन्य वैराग्य हुआ बताकर घटना का औचित्य बढ़ाया है।
- 4- 'उत्तरपुराण' में भगवान पार्श्व का आहार गुल्मखेट नगर के धन्य नामक राजा के द्वारा दिया गया बताया है।⁷⁶ जबकि पासणाहचरित में हस्तिनापुर के वणिक् श्रेष्ठ वरदत्त के यहाँ बताया गया है।⁷⁷
- 5- 'पासणाहचरित' में पार्श्व द्वारा अर्ककीर्ति की कन्या प्रभावती के साथ विवाह हेतु स्वीकृति दी गई है।⁷⁸ (विवाह का उल्लेख नहीं) किन्तु उत्तरपुराण में इस तरह की कोई घटना वर्णित नहीं है।
- 6- उत्तरपुराण में विश्वभूति को पौदनपुर नगर निवासी वेद-शास्त्र को जानने वाला ब्राह्मण बताया गया है।⁷⁹ किन्तु पासणाहचरित में उसे राजा अरविन्द का मंत्री बताया गया है।⁸⁰ (उत्तरपुराण में मंत्री नहीं बताया गया है)
- 7- "उत्तरपुराण" में मरुभूति की मृत्यु की घटना का संकेत "नीच तथा दुराचारी कमठ ने वसुन्धरी के निमित्त सदाचारी, सज्जनों के प्रिय मरुभूति को मार डाला;⁸¹ कहकर किया गया है, जबकि "पासणाहचरित" में उक्त

73 उत्तरपुराण 73/120-130

74 रङ्गधू: पास. 3/12

75 उत्तरपुराण 73/95-103

76 उत्तरपुराण 73/132-133

77 रङ्गधू: पास. 4/3

78 वही 3/11

79 उत्तरपुराण 73/8

80 रङ्गधू: पास 6/2

81 उत्तरपुराण 73/11

घटना की सिद्धि के लिए कमठ द्वारा वसुन्धरी से दुराचार, किसी व्यक्ति (गुप्तचर) के द्वारा कमठ के दुराचार की सूचना राजा को प्राप्त होना, घटना की सत्यता सिद्ध होने पर राजा द्वारा कमठ को राज्य से निकालना, कमठ का घन में जाना और अन्त में क्षमा माँगने गए मरुभूति पर कमठ के शिला प्रहार से मृत्यु: इस प्रकार मरुभूति की मृत्यु की घटना का विस्तृत विवरण दिया है।⁸²

- 8- 'पासणाहचरित' में कमठ द्वारा वसुन्धरी के शील भंग का उल्लेख किया है।
⁸³ किन्तु 'उत्तरपुराण' इस विषय में मौन है।⁸⁴
- 9- 'पासणाहचरित' में राजा अरविन्द के वैराग्य का कारण घने बादलों का क्षणभर में विलीन हो जाना बताया गया है,⁸⁵ जबकि उत्तरपुराण में कोई कारण नहीं बताया गया है।

इस प्रकार दोनों कथा वस्तुओं में अन्तर होते हुए भी मूल कथा के दोनों निकट ही हैं, जहाँ उत्तरपुराणकार का मन्तव्य कथा को संक्षिप्त में ही व्यक्त करना था, वहीं रङ्गधू का मन्तव्य कथा को विस्तृत करके नायक को चारित्रिक विशेषताओं से युक्त कर दिखाना था, इसीलिए उसने नायक को युद्धादि के लिए सन्नह दिखाकर वीरोचित शौर्य, पराक्रम आदि गुणों को भी प्रकट करने का प्रयास किया। परिवर्तन एवं परिवर्धन यदि कवि नहीं करता तो भ. पार्श्व विषयक कथा, कथा ही रह जाती; उसे महाकाव्य का स्वरूप नहीं मिल पाता।

82 रङ्गधू: पास. 6/3-0

83 रङ्गधू: पास. 6/3, पंक्ति 8

84 वही 6/10

85 वही 73/14



तृतीय परिच्छेद

पासणाहचरित की भाषा—शैली

महाकवि रङ्ग ने अपने विचारों और भावों को अभिव्यक्त करने लिए जिस भाषा-शैली को अपनाया है, वह पण्डितों की अपेक्षा संस्कृत श्रोताओं के लिए है। इनकी शैली सुभग और मनोरम वैदर्भी शैली कह सकते हैं। वर्णन सरल और प्रासादिक हैं। भाषा को अलंकारों के आडम्बर से चित्रविचित्र बनाने का प्रयास कहीं नहीं दिखलाई पड़ता है। वाक्य प्रायः छोटे-छोटे हैं। वाक्य विन्यास में भी आयास नहीं है। संक्षेप में इनकी शैली में स्पष्टता, रस की सम्यक् अभिव्यक्ति, शब्द विन्यास की चारुता तथा कल्पना का अभाव है। अनिश्चित, जटिल और लम्बे वाक्यों का प्रयोग नहीं है। विभिन्न शब्दों द्वारा एक ही भाव की पुनरुक्ति एवं अनावश्यक शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। अर्थ की स्पष्टता है। पाण्डित्यप्रदर्शनी की जानबूझकर चेष्टा नहीं की गई है। विचार सुसम्बद्ध हैं। शब्द और वाक्य नपे तुले हैं। उपदेश या धर्मतत्त्व के निरूपण के समय भाषा सरल, स्वच्छ और प्रभावोत्पादक होती है। उदारणार्थ जीव के एकत्व का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

एकु वि इंदु होइ उण्जइ। एकु वि रउरव- णरइ णिमज्जइ ।

एकु वि तिरियजोणि दुहतत्तउ एकु वि मणुउ होइ मयमतउ ।

एकु जि णहयरु जलयरु थलयरु एकु जि सोहु सरहु वणि अजयरु ।

एकु जि राउ रंकु सु हदुहघरु बंभणु सुहु एक्कु वणिदरु वरु ।

एकु वि कम्मु सुहासुहु भुंजइ एकु वि भवि अप्पाणउ रंजइ ।

एकु वि कत्ता भुत्ता उत्तउ एकु वि हिंडइ मोहासत्तउ ।

असहायउ एक्कळ्ळउ अप्पउ कोइ ण तहु सहेज्जुहयदप्पउ । 3/17

यह जीव अकेला ही इन्द्र बनकर जन्म लेता है और अकेला ही रौरव नरक में जा पड़ता है। अकेला ही दुःखों से तप्त तिर्यन्ध्रगति में जन्म लेता है और अकेला ही मदमत्त मनुष्य होता है। अकेला ही वह नभचर, जलचर या थलचर बनता है और अकेला ही वन में सिंह और शरभ होता है। वह अकेला ही सुखी

अथवा दुःखी, राजा या रंक, अकेला ही ब्राह्मण, शूद्र अथवा वणिक श्रेष्ठ बनता है। अकेला ही शुभाशुभ कर्मों को भोगता है, तो अकेला ही संसार में अपने को अनुरजित करता है। यह जीव स्वयं ही कर्मों का कर्ता एवं उनका भोक्ता कहा गया है। मोहासक्त होकर अकेला ही घूमता भटकता रहता है। दर्परहित आत्मा बिल्कुल असहाय और अकेला होता है, कोई भी उसका सहायक नहीं होता।

उपर्युक्त पद्य में आगत एकु (अकेला) पद सर्वत्र व्याप्त होकर जीव के एकत्व का बोध कराता है।

जहाँ परस्पर वातालाप का अवसर आता है, वहाँ छोटे-छोटे वाक्यों में भाषा सशक्त हो जाती है। सरलता और स्वच्छता के रहने पर भी वाक्यों में तीक्ष्णता वर्तमान है। यथा

तहिँ रमइ जाम सुरणर मणिटटु ता तवसि एकु पुणु तेण दिट्टु ।
 पंचगि-ताव-तावियठ गतु गउरी-पिययमि अणरत्तचित्तु ।
 तरु एकु सुकु जैं डहिठ पासि गउ पासु जिणेस तुहु सयासि ।
 अण्णाण जणहिँ पणविज्जमाणु पेक्खेप्पिणु जंपइ तासु णाणु ।
 किं मिच्छाइट्ठिहु करइ भत्ति जो णवि फेडइ संसार-अत्ति ।
 तं सुणिं कोविठ कमठक्खु दुट्टु भो णरवर किंजंपहि अणिट्टु ।
 किं अण्णाणत्तणु अम्ह जाउ किं परु णिंदहि तुहुँ गरुउ राउ ।
 तं सुणि तिलोयवइणा पउत्तु तुव गुरु मरेवि कहि कत्थ पत्तु ।
 तं वयण सुणिंवि आरत्त चक्खु पडिजंपइ को जाणइ पयक्खु ।
 अह पुणु दीसहि णाणेण दक्खु जइ जाणहि ता तुहु एत्थ अक्खु ।
 ता णाहु भणइ इहु हुठ सदप्पु तरु कोट्टरि तुव गुरु मरिवि सप्पु ।
 किं डज्झमाणु णउ णियहि मुख तरु फाडिवि जोवहि भो पयक्खु ।
 तं णिसुणिंवि ता आरत्तु धिट्टु जो हुंतउ महु गुरु गुणगरिट्टु ।
 किह उरउ जाउ तणु तवेण खीणु पंचगिसहणि जो णिरु पवीणु । 3/12 ।

सुरनरप्रिय पार्श्व जब वहाँ रमण कर रहे थे तो उन्होंने (वहाँ) एक तापस को देखा, जिसका गाँव पञ्चाग्नि तप से तप्त था और चित्त शङ्कर में अनुरक्त था और जो एक सूखे वृक्ष को अपने पास में जला रहा था। पार्श्वजिनेश्वर उसके समीप गए। अज्ञानी जनों द्वारा नमस्कृत उस तापस को देखकर सम्यग्ज्ञानी पार्श्वजिन बोले-जो स्वयं ही संसार के दुःख को नष्ट नहीं कर सकता, उस मिथ्यादृष्टि की भक्ति क्यों करते हो? यह सुनकर कमठ नामक दुष्ट तापस क्रुद्ध

हो उठा (और बोला) - हे नरश्रेष्ठ, अग्रिय क्यों बोलते हो? हमारी क्या अज्ञानता हो गई? बड़े मात्सर्यपूर्वक आप परनिन्दा क्यों कर रहे हैं? कमठ की बात सुनकर त्रिलोकपति ने पूछा - बताओ, तुम्हारा गुरु मरकर कहाँ उत्पन्न हुआ है? पार्श्व के वचन सुनकर तथा आरक्त नेत्र होकर वह कमठ प्रत्युत्तर में बोला - इस बात को प्रत्यक्ष कौन जान सकता है? तुम ज्ञान में बड़े दक्ष दिखाई दे रहे हो। यदि तुम जानते हो तो इस बात को बताओ। यह सुनकर पार्श्वनाथ बोले - "तुम्हारा यह गुरु मरकर वृक्ष की कोटर में दर्पीला सर्प हुआ है। ओरे मूर्ख! क्या जलते हुए को नहीं देख रहा है? वृक्ष फाड़कर तू उसे प्रत्यक्ष देख ले।" इस वचन को सुनकर वह दुष्ट कमठ चिल्लाया - "मेरे जो महान् गुरु थे तथा जो तपस्या के कारण क्षीणदेह थे और जो पञ्चाग्नि के ताप सहन करने में अत्यन्त प्रवीण थे। वे सर्प कैसे हो सकते हैं?"

रङ्गू दृश्यों को ब्यौरेवार उपस्थित करते हैं। ब्योरों को मूर्त रूप देने में और उनका साङ्गोपाङ्ग चित्र खड़ा कर देने में वे सिद्धहस्त हैं। गुरु सर्प कैसे हो सकते हैं? यह शङ्का होते ही -

ता तिव्रकुठारै कोहिएण कट्टु वियारिउ तेणणर ।

अद्धदुअद्धु तहँ उरयजुउ दिट्ठउ तत्थ धुणंतु सिरु ॥ 3/37 (घत्ता)

उस क्रोधित कमठ ने तीक्ष्ण कुठार से उस काष्ठ को बीचों-बीच से फाड़ दिया और उसमें अपने अद्धदग्ध सर्पयुगल को अपना सिर धुनते हुए देखा। नाद सौन्दर्य दृष्टि की से कवि जहाँ युद्ध का वर्णन करता है, वहाँ कठोर ध्वनियों का व्यवहार करता है उन ध्वनियों के श्रवण से ही युद्ध का दृश्य उपस्थित हो जाता है। श्रृङ्गारिक वर्णन के प्रसङ्ग में शब्दों का प्रयोग मधुर हो जाता है।

रङ्गू की भाषा :

उत्तरकालीन अपभ्रंश का जो रूप रङ्गू के काव्य में दृष्टिगोचर होता है, उसके सम्यक् विवेचन से यह तथ्य स्पष्टतः सामने आता है कि आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के प्रारम्भिक रूप का विकास जिस भाषा-रूप से हुआ, उससे वह कितना निकट है। इस दृष्टि से अपभ्रंश धारा में रङ्गू का स्थान अद्वितीय है।

अपभ्रंश का हिन्दी से क्या सम्बन्ध है? इस प्रश्न पर विचार प्रकट करते हुए महा पण्डित राहुल जी ने "हिन्दी काव्यधारा" की भूमिका में लिखा है - इस

भाषा को अपभ्रंश कहते हैं, शायद इससे आप समझने लगे होंगे कि तब तो यह हिन्दी से जरूर अलग होगी लेकिन नाम पर न जाए, इसका दूसरा नाम 'देसी' भाषा भी है। अपभ्रंश इसे इसलिए कहते हैं कि इसमें संस्कृत शब्दों के रूप भ्रष्ट नहीं, अपभ्रष्ट-बहुत ही भ्रष्ट हैं, इसलिए संस्कृत पण्डितों को ये जाति-भ्रष्ट शब्द बुरे लगते होंगे लेकिन शब्दों का रूप बदलते-बदलते नया रूप लेना, अपभ्रष्ट होना- दूषण नहीं भूषण है, इससे शब्दों के उच्चारण में ही नहीं, अर्थ में भी अधिक कोमलता, अधिक मार्मिकता आती है। "माता" संस्कृत शब्द है, उसके मातु, माई, मावो तक पहुँच जाना अधिक मधुर बनने के लिए है। खेद है, यहाँ भी कितने ही नीम हकीमों ने शुद्ध संस्कृत माता को ही नहीं लिया बल्कि उसमें जी लगाकर "माता जी" बना उसके ऐतिहासिक माधुर्य को ही नष्ट कर डाला। अस्तु यह निश्चित है कि अपभ्रंश होना दूषण नहीं भूषण था।

महाकवि रङ्गभूष की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश है। कवि की रचनाओं में राजस्थानी, ब्रजभाषा, बुन्देली एवम् बघेली के भी अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इनके द्वारा रचित 'पासणाहचरित' की परिनिष्ठित अपभ्रंश का व्याकरण सम्बन्धी विश्लेषण इस प्रकार है:

पासणाहचरित में भाषा सम्बन्धी विशेषतायें

स्वर सम्बन्धी विशेषतायें :

अ, आ इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ आदि स्वर सामान्यतया प्राप्त होते हैं।

ऐ के स्थान पर अइ का प्रयोग मिलता है-

ऐरावत = अइरावत 2/6

चैर = चइर 3/1

वैक्रियक = वईकिरउ 5/16

कैरव = कइरव 1/5

स्वरों में प्रायः ऋ का लोप हो गया है। अधिकांशतः इसके स्थान पर अ, रि,

उ, ई, अरु रूप विकसित हो गए हैं :

ऋ = अ - पृथिवी = पहुई 1/4

" - धर्मावृत = धम्मामय 1/1

" रि - ऋषीसु = रिसीसु 1/2

" - ऋषीश = रिसीस 1/2

" इ - शृंगार = सिंगार



=	-	नृपति	=	णिवइ	
=	ई	-	दृश्यते	=	दिसइ
=	रु	-	भ्रातृ	=	भायरु

दीर्घ अन्त्य स्वर कहीं-कहीं ह्रस्व हो गया है:

प्रदक्षिणा	=	पयाहिण	5/34	पद्धिडिया	=	पद्धडिय	7/6
वेश्या	=	वेस	5/5	भ्राता	=	भाउ	6/8
परदारा	=	परदार	5/8	प्रचला	=	पयल	4/12
परदेशी	=	परिएसि	4/2	वज्रसूची	=	पविसूइ	2/13
प्रतिरिणा	=	पटिदिदि	2/22	भग्या	=	भज्ज	6/2

कहीं-कहीं ह्रस्व स्वर दीर्घ हो गया है:

अवन्ति	=	अवंती	2/1, 3/1
दीप्त	=	दितु	5/31

स्वर समीकरण -

युगल	=	जुअलु	7/5
च्युत	=	चुठ	4/17
सूत्र	=	सुतु	7/8
निकृष्ट	=	णिकिट्ठ	6/4

स्वर लोप -

आदि स्वर लोप -

अरण्य	=	रण्य	3/5
अनन्त	=	णंत	
अलंकृत	=	लंकित	

मध्य स्वर लोप -

बर्बर	=	बब्बर	5/6
वामादेवी	=	वम्मएवि	1/10
वामा	=	वम्मा	5/21

स्वरागम -

पवित्र	=	पवित्तउ	6/2
निर्मल	=	णिमल्लु	2/11



आठ	=	अट्ट	5/20
आत्म	=	अप्पड	1/3
अपवर्ग	=	अपवग्गठ	5/18
निकृष्ट	=	णिकिट्ठ	6/4

व्यंजन सम्बन्धी विशेषतायें -

श, ष के स्थान पर स हो जाता है-

शोभित	=	सोहिय	1/10
निशाकर	=	णिसायरु	1/10
शक्त्या	=	सत्तिए	1/9
शिव	=	सिव	1/1
शास्त्रार्थ	=	सत्थत्थ	1/3
यश	=	जस	1/4
दोष	=	दोसु	4/4
रोष	=	रोसु	4/4
विषय	=	विसय	4/5

स के स्थान पर क्वचित् ह दृष्टिगोचर होता है-

दक्षयोजन	=	दहजोयण	5/27
दसलक्षण	=	दहलक्खणु	5/3

त के स्थान पर क्वचित् ह दृष्टिगोचर होता है-

भरत	=	भरह	1/1
भारत	=	भारह	1/9

प के स्थान पर व होता है-

पाप	=	पाव	
उपवास	=	उवारु	5/7
उपरि	=	उवरि	4/15
दीप	=	दीव	2/13
रूप	=	रूव	5/5

व्यञ्जन लोप के बाद य-श्रुति का आगम-

पोसित	=	पोसिय	1/1
-------	---	-------	-----

विगत	=	विगय	1/1
पुष्पदन्त	=	पुष्कयंतु	1/1
तीर्थकर	=	तित्थयरु	1/1
शीतल	=	सीयलु	1/1
पद	=	पय	1/1
धर्माभृत	=	धम्मामय	1/1
सकल	=	सयल	1/1
लोक	=	लोय	1/1

ष के स्थान पर ण मिलता ही है, पर न के स्थान पर भी ण मिलता है। सभी स्थितियों में यह प्रवृत्ति है-

आद्य-	निवारण	=	णिवारणु	1/1
	नाथ	=	णाहु	1/1
	निज	=	णिइ	1/1
मध्य-	जिनेन्द्र	=	जिणिंदु	1/1
	अनन्त	=	अणंतु	1/1
	अनुक्रमेण	=	अणुक्कमेण	1/2
	अन्यत्व	=	अणत्तु	3/17
	अन्य	=	अण्ण	2/2
अन्त्य-	पुनः	=	पुणु	1/1
	ज्ञान	=	णाण	1/1
	जिन	=	जिणु	1/1
	प्रधानी	=	पहाणी	1/1
	ध्वनि	=	झुणी	1/2
	येन	=	जेण	1/2

महाप्राण ध्वनियों में से केवल महाप्राणत्व का रह जाना-

भ-ह	अभिनन्दन	=	अहिणंदणु	1/1
	पद्मप्रभ	=	पडमप्पहु	1/1
	विभाति	=	विहाइ	1/3
	लाभ	=	लाहु	1/4



ध-ह	बोधि	=	बोहि	1/2
	प्रधान	=	पहाणउ	1/3
	बोधि	=	बोहि	1/3
	विविध	=	विविह	
	धम्माधम्म	=	धम्माहम्म	1/1

ख-ह	दुःखित	=	दुहिय	
	मुख	=	मुह	

घ-ह	दीर्घायुष्य	=	दीहाउसु	3/23
	लघु	=	लहु	5/12

य के स्थान पर ज पाया जाता है

वासुपूज्य	=	वासुपुन्जु	1/1
यान	=	जाणु	4/1
युग्मे	=	जुवलेँ	5/23
यत्र	=	जत्थ	4/14
यथा	=	जेहउ	6/13
यदि	=	जह	3/12
यतिवर	=	जइवरु	3/22
यति	=	जई	1/2
यक्ष	=	जक्ख	7/14

कहीं-कहीं य के स्थान पर व पाया जाता है-

आयु	=	आव	5/26
-----	---	----	------

ज के स्थान में य पाया जाता है

ध्वजपंक्ति	=	धयपति	
रजनी	=	रयणि	
तेज	=	तेय	2/5

र को कहीं-कहीं ल होता है

चरण	=	चलण	5/1
-----	---	-----	-----

सामान्यतया र को र ही होता है। जैसे

पुरात्	=	पुराउ	6/4
--------	---	-------	-----



पुराण	=	पुराणु	7/6
पुरुषोत्तम		पुरिसोत्तमु	7/1

घोषीकरण की प्रवृत्ति

पटह	·	पडह	2/6
जटित		जडिद	2/11
कटिसूत्र	=	कडिसुत्त	2/14
पटु	·	पडु	4/15
घट	·	घड	4/15

छ ज्यों का त्यों रहता है-

छत्रा	=	छण्णा	4/8
छत्र	·	छत्त	2/5
छदम		छम्म	5/7
छल	=	छल	5/19
छिन्न	=	छिण्ण	4/8
छिद्र	=	छिद्द	5/9
छुरिका	·	छुरिय	5/6
छन्द	·	छंद	5/10

ड के स्थान पर ल होता है-

क्रीडा	=	कील	6/3
--------	---	-----	-----

त के स्थान पर कहीं ल होता है-

विद्युत	=	विज्जुल	6/10
विकृत	=	विट्टलु	3/19

ष को कहीं-कहीं छ होता है-

षट्खण्ड	=	छक्खंड	5/18
षट्कर्म	=	छक्कम्म	6/2
षट्चरण	=	छच्चरण	4/15
षष्ठ	=	छट्ठ	5/16
षष्ठमे	=	छट्ठमि	5/17
षट्पवति	·	छण्णव	6/15



षट्त्रिंशत्	=	छत्तीस	1/4
षड्द्रव्य	=	छह द्रव्य	2/24
षट्स	=	छहरस	4/7
षट्चत्वारिंशत्	=	छायालीस	4/18

ष के स्थान पर कहीं-कहीं ह मिलता है-

पाषाण	=	पाहण	4/11
पाषाण	=	पाहाण	6/8

अगदि लगुंक्त व्यंजन में यदि दूसरा व्यंजन य र ल व हो तो उसका लोप हो जाता है

ज्योतिषीगण	=	जोइसगण	2/8, 2/6, 4/16
व्यवहार	=	वावारु	5/9
क्रीडा	=	कील	6/3
प्रेक्ष्य	=	पेक्ख	6/12
प्रेमानुरक्त	=	पेमाणरत्तु	4/3
प्रेरित	=	पेरिय	2/7
प्रेषित	=	पेसिट	3/1
स्वयम्भू	=	सयंभु	5/34, 7/1
द्वीप	=	दीव	5/20

दो भिन्न ध्वनियों के स्थान पर तीसरी ध्वनि का प्रयोग मिलता है-

रथ	=	ठ	स्थान	=	ठाण	1/1
			स्थित	=	ठिय	
स्क	=	ख	स्कंध	=	खंध	
स्प	=	फ	स्पर्श	=	फंस	
			स्फन्द	=	फंद	4/17
			स्पष्ट	=	फुडु	6/3
स्त	=	थ	स्तुत्य	=	थुणिवि	

एक गुच्छ के स्थान पर सर्वथा दूसरे गुच्छ का प्रयोग मिलता है

घ्न	=	गघ्न	विघ्न	=	विगघ्न	1/1
-----	---	------	-------	---	--------	-----



ष्य	=	प्फ	पुष्य	=	पुप्फ	1/1
विस्फुरित	=	विप्फुरिय	1/4			
ष्ट	=	ट	अरिष्टनेमि	=	रिटनेमि	1/1
			गरिष्ट	=	गरिट	1/5
			दुष्ट	=	दुट	1/1
ब्ध	=	द्ध	लब्ध	=	लद्ध	
स्थ	=	त्थ	उरस्थल	=	उरत्थल	1/4
त्त	=	ण्ण	दत्त	=	दिण्ण	1/4
स्त	=	त्थ	हस्ति	=	हत्थि	1/4
न्म	=	म्म	जन्म	=	जम्म	
क्त	=	क्क	मुक्त	=	मुक्क	1/1

स्वरागम या स्वरभक्ति के कारण गुच्छ टूट जाते हैं-

श्री = सिरि 1/1

क्ष के स्थान पर निम्नलिखित रगण होते हैं-

क्ष	=	च्छ	अक्षि	=	अच्छि	7/11
			लक्ष्मीकोष	=	लच्छीकोसु	7/8
क्ष	=	ख	क्षय	=	खउ	7/3
			क्षपिता;	=	खविया	7/3
			क्षेत्र	=	खेत	1/1
क्ष	=	कख	दोक्षा	=	दिक्ख	7/2
			भिक्षा	=	भिक्ख	7/2
			शिक्षा	=	सिक्ख	6/7
			चक्षु	=	चक्खु	1/1

व्यञ्जन समीकरण -

चर्चित	=	चन्चिय	
चेलनी	=	चेल्णि	1/6
चन्द्रप्रभ	=	चंदणहु	1/1
चर्म	=	चम्म	3/19
चिन्मय	=	चिम्मउ	6/20
चक्र	=	चक्क	5/32



व्यञ्जन लोप -

आदि व्यञ्जन लोप -

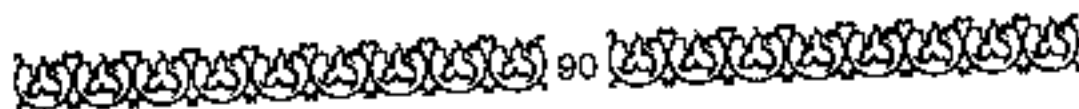
स्कन्ध	=	खंधु	
स्ताम्भ	=	खंभ	4/13
स्ताम्भ	=	थंभ	5/19
पूरित	=	ऊरिय	1/4

मध्य व्यञ्जन लोप -

आशातुर	=	आसाउर	5/8
आशापुरी	=	आसाउरि	6/15
योगिनीपुर	=	जोइणिपुर	7/8
ज्योतिषीगण	=	जोइसगण	2/8
प्रदेश	=	पएस	3/20
अतुलित	=	अउलिय	1/6
अपूर्व	=	अउर्व	4/12

अन्त्य व्यञ्जन का लोप -

आश्रय	=	आसिउ	6/19
उड्डावित	=	उड्डावइ	6/9
भरित	=	भरिउ	1/1
चरित	=	चरिउ	1/1
देव	=	दैउ	1/1
राजीमति	=	राइमइ	1/1
दुर्गति	=	दुग्गइ	
रूप	=	रुउ	1/10
पति	=	पइ	1/15
सरस्वती	=	सरसइ	1/7
णिकेत	=	णिकेउ	1/7
विवेक	=	विवेउ	1/7





अक्षर विपर्यय

अहम्	=	अम्ह	4/2
उष्ण	=	उण्ह	5/19
वाष्प	=	भप्फ	
भृष्ट	=	भट्टु	4/5

उपधा (अन्तिम अक्षर से पूर्व अक्षर) की सुरक्षा-

अति	=	अइ	3/19
अतिक्रमित	=	अइकमिउ	2/8
अतिशय	=	अइसंय	4/17
अतुलित	=	अउलिय	1/6

आदि प के स्थान पर कहीं-कहीं फ हा जाता है-

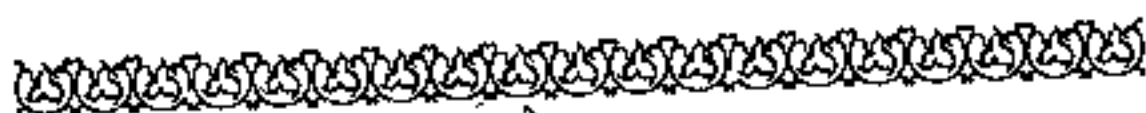
पुष्पित	=	फुल्लिय	3/7
---------	---	---------	-----

व्य के स्थान पर व्व अथवा व्वु हो जाता है-

भव्य	=	भव्व	4/19
मव्य	=	मव्वु	5/5
द्रव्य	=	दव्व	2/1

रइधू के पासणाहचरिउ में प्रयुक्त शब्दों के कुछ उदाहरण, जिनसे मिलते-जुलते शब्द आज भी प्रचलित हैं-

भरिउ	=	भरे	1/1
चूकु	=	चूक	1/1
खेत	=	खेत	1/1
सिक्ख	=	सीख	1/2
हट्ट	=	हाट	1/3
सिंगार	=	सिंगार	1/3
धिट्ठ	=	ढीठ	1/3
हत्थि	=	हाथी	1/5
पल्लंग	=	पलङ्ग	
ठट्ठय	=	उठकर	



चल्लिउ	=	चले	
तिणिण	=	तीन	2/7
वार	=	वार	2/7
नाई	=	नाई (बन्देलखण्डी)	2/7
राय	=	राय (राजा)	2/7
चालीस	=	चालीस	2/8
छत्तीस	=	छत्तीस	2/9
बावीस	=	बाईस	2/9
घर	=	घर	2/10
पीढ	=	पीढा	2/11
भगग	=	भागना	3/2
लग्गु	=	लगना	3/3
खुर	=	खुर	3/6
जित्तठ	=	जितना	3/9
ढाल	=	ढालना	2/12
पोट्टु	=	पोटली	3/19
पामि	=	पास	3/26
अथाहु	=	अथाह	4/1
बुज्झ	=	बूझ	4/7
अट्ठ	=	आठ	4/7
थलु	=	थल	4/8
छुट्ट	=	छूटना	5/19
चडाविय	=	चढाया	4/11
चट्टह	=	चौटना	6/9
अट्ठावीस	=	अट्ठाईस	5/14
अब्धिठ	=	भिड़ना	1/3
ठस्सार	=	ठसार (बुन्देलखण्डी)	
कट्ठ	=	काठ	3/25
कड़ाहि	=	कड़ाही	5/19
को	=	कौन, को (बुन्देलखण्डी)	



डाल	=	डाल	1/4
खंभ	=	खम्भा	4/13
चठत्थी	=	चौथी	4/16, 5/25
दुरिय	=	दूरी	5/6
छुव	=	छूना	5/5
ढोव	=	ढोना	5/11
टक्कर	=	टक्कर	6/5
डर	=	डर	4/9

‘पासणाहचरिउ’ में कुछ शब्दों के प्रयोग के उदाहरण जो हिन्दी में प्रचलित नहीं हैं—

अच्छउ	=	रहे	4/1
अच्छे	=	रहो हुए	3/4
उक्कूदप्प	=	अत्यन्त अभिमानी	6/2
चरड	=	लुटेरा	1/3
जलणिवाण	=	जलकुण्ड	2/12
हुक्कइ	=	आरुढ़ हुए	4/13
हुक्कर	=	प्रविष्ट	
झंप	=	आच्छादित करना	
झिज्ज	=	जलना	5/1

पासणाहचरिउ की ठकार बहुला प्रवृत्ति के कुछ उदाहरण

भरित	=	भरिठ	1/1
चरित	=	चरिठ	1/1
जिनेन्द्र	=	जिणिंदु	1/1
सत्पक्ष	=	क्ष-पक्खु	1/1
पद्मप्रभ	=	पडमप्पहु	
अङ्ग	=	अंगु	1/1
लीन	=	लीणु	1/1
सज्ज	=	सुज्जु	1/1
मुक्त	=	मुक्कु	1/1



निधान	=	णिहाणु	1/1
प्रधान	=	पहाणु	1/1
नाथ	=	णाहु	1/1
महत्	=	महंतु	1/1
कान्त	=	कंतु	

तृतीया विभक्ति के एकवचन में ए का प्रयोग पाया जाता है और कहीं-कहीं ए एवं एण प्रत्यय भी उपलब्ध होते हैं-

परमार्थेन	=	परमर्थे	3/18
तेन	=	ते	4/2
उपसर्गेण	=	उवसर्गै	4/12
अनुक्रमेण	=	अणुक्रमेण	4/15
यक्षेन	=	जक्खे	4/16
आदेशेन	=	आएसे	4/16

तृतीया विभक्ति के बहुवचन में एकार तथा हिं प्रत्यय का आदेश प्राप्त होता है

दानवैः	=	दाणवेहिं	4/7
स्तम्भैः	=	थंभेहिं	4/15

उकारान्त शब्द में पंचमी के बहुवचन में हुं प्रत्यय का प्रयोग किया गया है

गुरुभ्यः	=	गुरुहुं	2/8
----------	---	---------	-----

अकारान्त शब्दों से पर में आने वाले षष्ठी के बहुवचन के रूपों में सु और हैं दो प्रत्यय पाए जाते हैं-

तावहं	=	तापासानाम्	3/21
कासु	=	केषां	

पूर्वकालिक क्रिया या सम्बन्धसूचक कृदन्त के लिए संस्कृत में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय होते हैं। रङ्ग ने उनके स्थान पर इ, इउ, इवि, अवि, एप्पि, एप्पिणु, एविणु और एवि प्रत्ययों को प्रयोग किया है। जैसे-

लभ्	=	लह+इ = लहि	2/6
चल	=	चल+इउ = चलिउ	2/6
कोश	=	कोस+इउ = कोसिउ	2/6



दृश्	=	पेच्छ+इवि = पेच्छिवि	2/3
स्मृ	=	समार+इवि = समारिवि	2/3
गम्	=	जा+इवि = जाइवि	2/3
दृश्	=	जो+इवि = जोइवि	2/8
प्रेक्ष	=	पिक्ख+इवि = पिक्खिवि	2/7
कृ	=	कर+एप्पि = करेप्पि	2/10
कृ	=	कर+एप्पिणु = करेप्पिणु	7/10
दा	=	द+एप्पिणु = देप्पिणु	1/8
पुलकितो	=	भूत्वा = पुलएप्पिणु	1/7
ज्ञा	=	जाण+इवि = जाणिवि	
स्तु	=	थुव+एवि = थुवेवि	
शृंगार कृत्वा	=	सिंगारिवि	2/3
प्रेक्ष्य	=	पिक्खिवि	2/8
दत्त्वा	=	देवि	2/7
संप्रेक्ष्य	=	संपेच्छिवि 2/8 समारिवि	2/3
नमस्कृत्य	=	णमसिड	3/1

अलंकार योजना

आचार्य दण्डी ने काव्य-शब्दार्थ की शोभा करने वाला अलङ्कार माना है। वामन ने यह कार्य गुण का कहा है और अतिशय शोभा करने वाला धर्म ही अलङ्कार बताया है।¹ आनन्दवर्द्धन ने अलङ्कार को अंग-शब्दार्थ के आश्रित माना है और उन्हें कटक, कुण्डल आदि के समान शब्दार्थ रूप शरीर का शोभाजनक कार्य कहा है।² आनन्द वर्द्धन ने अलङ्कार लक्षण में अलंकार का रस के साथ कोई सम्बन्ध निर्दिष्ट नहीं किया। यह कार्य मम्मट⁴ और विश्वनाथ⁵ ने किया है। इनके मत से अलंकार शब्दार्थ की शोभा द्वारा परम्परा सम्बन्ध से रस का प्रायः उपकार करते हैं। अपने अलङ्कार लक्षणों में इन्होंने अलंकार को

1 काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते ॥ काव्यादर्श 2/19

2 तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः । काव्यादर्श 3/1/2

3 अङ्गाश्रितास्त्वलङ्काराः मन्दव्या कटकादिवत् ॥ ध्वन्यालोक 2/6

4 उपकुर्वन्ति तं सन्तयेऽङ्गद्वारेण जालुविद् ॥ काव्यप्रकाश 8/67

5 रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तोऽङ्गदादिवत् ॥ साहित्यदर्पण 10/1

शब्दार्थ का उस प्रकार अनित्यधर्म माना है, जिस प्रकार कटक, कुण्डल आदि शरीर के अनित्य धर्म हैं। इसी प्रकार जगन्नाथ ने भी अलंकारों को काव्य की आत्मा, व्यंग्य को रमणीयता प्रयोजक धर्म मानकर ध्वनिवादियों का ही समर्थन किया है अतएव किसी कृति में अलंकारों का रहना आवश्यक सा है।⁶ 'पासणाहचरित' में अलंकारों को छटा इत्यादि रूप में दृष्टिनेत्र होनी है-

पासणाहचरित में रङ्ग की उत्प्रेक्षाएँ :

उपमेय की उपमान के रूप में सम्भावना करने को उत्प्रेक्षा कहा जाता है। 'पासणाहचरित' में महाकवि रङ्ग ने प्रचुर मात्रा में उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया है। नीचे उनकी उत्प्रेक्षाएँ दृष्टव्य हैं-

स्वर्ण रेखा नदी समुद्र की ओर जाती हुई ऐसी प्रतीत होती है, मानो सुवर्ण की रेखा हो और मानो वह तोमर राजा के पुण्य से ही वहाँ आयी है।⁷

डोंगरेन्द्र का पुत्र तेजस्विता में मानो प्रत्यक्ष सूर्य था।⁸ मानो पृथ्वी पर यश का नवीन अंकुर ही उत्पन्न हुआ था।⁹ अथवा जय श्री ने अपना भाई ही प्रकट कर दिया हो।¹⁰

खेमसिंह साहू ऋषियों को दान देने में मानो दान (मदजल) से युक्त गन्धहस्ति के समान था।¹¹

खेमसिंह की धनवरती नामक प्रणयिनी नररत्नों की उत्पत्ति के लिए मानो खान स्वरूप थी।¹²

काशी नामक देश ऐसा प्रतीत होता था मानो पृथ्वी रूपी युवती का सुख पूर्वक पोषण करने वाला वर ही हो।¹³

वामादेवी के नूपुरों का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उसके चरणों में धारण किए हुए नूपूर इस प्रकार रुणझुण किया करते थे, मानो वे उसके आज्ञापालक किंकर ही हों।¹⁴

6 डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री: हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशोतन पृ. 308

7 सोवर्णरेहं णं उवहि जाय णं तोमरणित्र पुण्णेण आय। 1/3

8 तेव गलु णं पच्चक्खु भाणु। 1/5

9 णं णवउ जसंकुरु पुहमि जाउ। 1/5

10 णं जयसिरोए पयडियठ भाउ। 1/5

11 रिसि दाणवंतु णं गंधहत्थि। 1/5

12 णररवणहं णं ठप्पत्ति खाणि। 1/6

13 काशी णाम देसु तहिं सुहयसु। णं भहिजुवइहिं सुहपोषसवरु॥ 1/9

14 रणरणंति णेउर णं किंकर॥ 1/10



अधसेन राजा ऐसा था मानो जयलक्ष्मी ने नवीन वर ही धारण कर लिया हो।¹⁵ मानो पृथ्वी पर धर्म ही अवलीर्ण हो गया हो।¹⁶

वामादेवी के मुखमण्डल को लोग इस प्रकार देखते थे, मानो भूली हुई (किसी) मणि को खोज रहे हों।¹⁷

कोई-कोई शची क्षीरसागर से जल लाकर वामादेवी का स्नान कराती थी, मानो वर्षाकाल दुग्ध की वर्षा कर रहा हो।¹⁸

जब गर्भ नौ मास का पूर्ण हो गया, तब उस (वामादेवी) का मुख इस प्रकार पीतवर्ण का हो गया, मानो उस गर्भ के यश का प्रकाश ही हो। (पार्श्व) जिनेन्द्र का जन्म हुआ मानो संसार में चिन्तामणि (नामक रत्न) ही उत्पन्न हुआ हो अथवा यश का पुञ्ज ही प्रकट होकर स्थित हुआ हो या मानो पूर्व दिशा में सूर्य ही उदित हुआ हो अथवा चाँदनी रात्रि में चन्द्रमा उदित हुआ हो अथवा मानो कुरुभूमि में कल्पवृक्ष का अङ्कुर ही उत्पन्न हुआ हो। उसी प्रकार इस शुभमति वामा के गर्भ से जिन भगवान् उत्पन्न हुए।¹⁹ जिननाथ के उत्पन्न होने पर समस्त लोक भक्ति भाव से आनन्दित हो उठा मानो तिमिर नाशक सूर्य के दर्शन से कमलाकर ही खिल उठा हो।²⁰

यहाँ उत्प्रेक्षाओं की झड़ी दृष्टव्य हैं

क्षीरोदधि से भरे हुए घट ऐसे प्रतीत होते थे मानो आकाश में चन्द्र और सूर्य ही परिभ्रमण कर रहे हों।²¹

15 णं जयलच्छिण्णववरु धरियउ॥ 1/10

16 णं महिवीदि धम्म अवयरिउ॥ 1/10

17 जणु जोवइ पुणु पुणु मणि भुज्जउ॥ 1/10

18 सु खीरसमुददहि केइ वि जाहि।

ण्हवावहिं आणिवि तोउ विसुद्ध। घणागमु वरिसइ णाई सुदुद्ध। 2/2

णवमासि हव पुण्णु गब्धि तासु। मुहु पंडुरु णं तहु जसपयासु ॥ 2/5

19 चिन्तामणि णं ठप्पण्णु लोइ। णं जसहु पुंजु धिउ पयहु होइ।

णं सहसकिरणु सुरवरदिसाई। णं ससहरु पुणु चंदिणि णिसाई।

णं सुरतरांकुरु कुरुमहीए। तिम जिणवरु जायठ सुहमहीए॥ 2/5

20 जिणणाहहु जाएं पयडियराएँ सयलु लोउ आणोदित।

दिवसेसहु दंसणि तिमिविहंसणि णं कमलायरु णंदियउ॥ 2/6

21 खीरोवहिं पयपूरेण पूर। णंपरिभमंति णहि चंद सुर॥ 2/12



शङ्कराचार्य ने जिननाथ की चन्दन से चर्चा (पूजा) की मानो भविष्य में होने वाले तीव्र ताप से अपने को दूर कर रहा हो।²²

इन्द्र ने पुष्पमाला लेकर वीतराग भगवान के पादमूल में स्थापित कर दिया। मानों कामदेव के बाण से ही भगवान के चरणों की पूजा की हो। निर्मल शालि बीजों की छोटी-छोटी ढेरियाँ लगा दी गयीं, मानो आकाश में सुन्दर धार्मिक नक्षत्र ही स्थिर हो गए हों। सूर्यकान्ति के समान दीप्त स्वर्णभाजन में चित्त को सुख देने वाला, धूमरहित शुद्धदीपक सजाकर इन्द्र दुन्दुभि के साथ अनुरागपूर्वक नृत्य करने लगा, मानो वह भी सहस्र भुजाओं से उन भगवान की पूजा कर रहा हो। धूपवती से निकलने वाली धूप आकाश में ऐसा सुशोभित हुआ जैसे मानो वह जीव लोक के लिए मोक्ष का मार्ग दिखा रहा हो। प्रचुरगन्ध से धूप खेई, वह ऐसी शोभायमान हुई, जैसे मानो भयातुर होकर जिन भगवान से पापराशि भाग रही हो।²³

इन्द्र ने जिनेन्द्र को कुण्डल युगल मण्डित किया, मानो सूर्य एवं चन्द्रमा ही वहाँ जाकर शरण में बैठ गए हों।²⁴

जिनवर उत्तम देवों एवं मनुष्यों के साथ सभा के मध्य में विराजमान थे, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो त्रिदशेश्वर ही (वहाँ) स्थित हों।²⁵

चन्द्रमख नामक शस्त्र के द्वारा उत्तम धवल वर्ण के छत्र काट दिए गए, उससे ऐसा लगने लगा, मानो रणभूमि में कमल ही खिल उठे हों।²⁶ फहराती हुई ध्वजायें काट दी गयीं उससे ऐसा प्रतीत होता था, मानो पृथ्वी पर असतियों के वस्त्र ही पड़े हों।

दौड़ते हुए किसी (भट) को छाती में बाँध दिया गया, मानो स्वामी के दान का फल ही सफल हो गया हो। शक्ति नामक अस्त्र के प्रहार से कोई-कोई भट (ऐसा) काट दिया गया, मानो भस्म शरीर से ही वह अपना जीवन भारण कर रहा हो।²⁷

22 चंदणेण्णाह-पाथ सक्कराउ चच्चए। णं भविस्स तिल्लु ताउ बद्धराउ व्वनए। 2/13

23 पासणाहचरिउ 2/13

24 कुण्डलजुवले मंडयउ ते पि। णं रवि ससि सरण पइठठ णंपि। 2/14

25 सुरणरवर सहियउ भुवणाहिं महियउ णं महि थिउ तियसेसर ॥ 2/15

26 ससिणाह खंडिय वरपुंडरीय। णं रणमाहिं फुंक्षिय पुंडरीय।

केयावलि खंडिय फरहरंति असईव वसा भूमिहिं सहंति।। 3/7

27 को वि धावंतु संमुहउ अरि विद्धउ णांहे सामिस्स दाणस्स फलु सिद्धउ। ॥ 3/8



धरणेन्द्र ने पार्श्व को आसन पर विराजमान किया। पुनः पुनः उसने अत्यधिक विनय प्रकट की। अपने शरीर के ऊपर उन्हें चढ़ाया और बैरी का गर्व चूर किया। फणस्थित मणि के प्रकाश से अन्धकार को विदीर्ण किया, मानो पुण्य का वैसा क्रम हो।²⁸ नटशाला में सघन छायादार उपवन थे, मानो सुमेरु पर्वत को छोड़कर अमरवन ही वहाँ उपस्थित हो गया है।²⁹

राजा ने कमठ के सिर पर बेलें बाँधवा दीं। वे उसके अङ्ग में कैसे शोभायमान हुईं मानो अपयश रूपी वृक्ष ने विचित्र फल दिया हो।³⁰

कमठ ने हाथों के मद से सिक्त उस वन को देखा मानो वह कमठ के पाप से लिप्त गया हो।³¹

कमठ को देखकर कहीं सिंह गरजते थे, मानो वे भी उस परदारगमन करने वाले के विरुद्ध थे। कहीं घाणियाँ अपने बिलों में घुस रहीं थीं मानो वे उसका मुखदर्शन ही नहीं करना चाहती थीं। कहीं-कहीं भार समूह रुगझुण-रुगझुण कर रहे थे। वे ऐसे काले थे, मानो काले गुणों (दुर्गुणों) की (ब्याज) स्तुति कर रहे हों।³²

प्रभङ्करी रानी के आनन्द नाम का अत्यन्त रूपवान् पुत्र हुआ मानो चन्द्रमा में से कलङ्करहित प्रतिचन्द्र उत्पन्न होकर वहीं महीतल पर अवतरित हो गया हो।³³

उत्प्रेक्षा प्रयोग में रङ्ग का वर्णन कौशल :

उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग में महाकवि रङ्ग के उपमान बड़े मार्मिक हैं। इससे कवि की मार्मिक कल्पना और वर्णन कौशल का पता लगता है। स्वर्ण रेखा नदी की कवि स्वर्ण रेखा के रूप में सम्भावना करता है जिस प्रकार स्वर्ण रेखा सभी

सत्ति घ्राण भद्रु को पुणु छिण्णउ णाई णियजीउ घरेइ तणु भिण्णउ। 3/8

28 तहिं आसणि णाहु णिवेसियउ पुणु पुणु बहु विणउ पद्यासियउ।

णियकायहु उवरि चडावियउ बइरिहु मडाफडु वारियउ।

फणमणिउज्जोएँ दलिउ तमु णं पुण्णहु करेउ तं जि कमु॥ 4/11

29 जहिं कप्पतरुवरहं उववणु सु सच्छउ णं अमरवणु मेरु चइरण तहि आउ। 4/15

30 मुंडाविउ तेण वि सीसु तासु णं उप्पाडिउ विहि केसफसु।

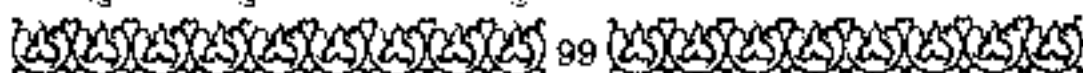
बेधाविय बेधवि उत्तमणि ते सहहिं केम पुणु तासु अंगि। 6/5

31 तं वणु जोयउ गयभएण सिनु। णं कमठहु पावें तं पलित्तु। 6/6

32 पासणाहचरिउ 6/6

33 ताहिं गम्भि अहिमिंदु वि हूवउ। सो आणंदु णामु सुसरूवउ।

चदहं णं पडिचंदु वि जायउ। गय कलंकु णं महियालि आयउ॥ 6/17



को आकर्षित करती है, उसी प्रकार स्वर्णरेखा नदी भी अपनी मनोहारिता के कारण सभी को आकर्षित करती होगी। इस प्रकार की मनोहर नदी का आगमन मानो तोमर राजा के पुण्य से ही हुआ था।

डोंगरेन्द्र के पुत्र के लिए रड्धू ने सूर्य, यशाङ्कुर और जयश्री के भाई रूप उपमानों का प्रयोग किया है। सूर्य अपने तेज के लिए सुप्रसिद्ध है, उसी प्रकार डोंगरेन्द्र का पुत्र भी तेजस्वी था। जिस प्रकार छोटा अङ्कुर बढ़कर आगे विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार डोंगरेन्द्र के पुत्र के यश के बढ़ने की भी उत्तरोत्तर सम्भावना थी। जिस प्रकार बहिन का अपने भाई के प्रति अगाध स्नेह होता है उसी प्रकार जयश्री मानो डोंगरेन्द्र को अपना भाई मानती थी।

जिस प्रकार हाथी से सदा मदजल झरता है, उसी प्रकार खेमसिंह साहू सदैव दान किया करते थे।

जिस प्रकार रत्नों की खान से सुन्दर-सुन्दर रत्न प्राप्त होते रहते हैं, उसी प्रकार खेमसिंह की धनवती नामक प्रणयिनी नररत्नों की मानो खान थी।

जिस प्रकार किसी युवती का वर सुखपूर्वक उसका पालन-पोषण करता है, उसी प्रकार काशी नामक देश पृथ्वी रूपी युवती का मानो पालन-पोषण करता था।

जिस प्रकार किंकर स्वामी की आज्ञा का निरन्तर अनुवर्तन करते हैं, उसी प्रकार वामादेवी के चरणों में धारण किए हुए नूपुर भी मानो आज्ञापालक किंकरो के समान झण-झण शब्द करते थे।

अश्वसेन राजा की विभूति देखकर कवि कहता है कि वह ऐसा था, मानो जयलक्ष्मी ने नवीन वर ही धारण कर लिया हो। उसकी प्रचुर धार्मिक क्रियाओं को देखकर कवि कल्पना करता है कि मानो पृथ्वी पर धर्म ही अवतीर्ण हो गया हो।

जिस प्रकार मणि सभी को प्रिय होती है, वह यदि खो जाये तो लोग उस के गुणों के प्रति और भी अधिक आकर्षित होते हैं, उसी प्रकार वामादेवी के मुखमण्डल को लोग उसी प्रकार देखते थे, मानो भूली हुई मणि को खोज रहे हों।



वर्षाकाल में पानी की फुहार अच्छी लगती है, पानी के स्थान पर दूध हो तो उसके सौन्दर्य का कहना ही क्या। वामादेवी के ऊपर पड़ता हुआ क्षीरसागर का जल ऐसा सुशोभित होता था मानो दुग्ध की वर्षा कर रहा हो।

प्रकाश की पीली-पीली रेखायें सभी को मनोहारी लगती हैं। जब गर्भ नौ मास का पूर्ण हो गया, तब वामादेवी का पीत मुख वैसा ही सुशोभित हो रहा था, मानो उस गर्भ के यश का प्रकाश ही हो।

जिनेन्द्र भगवान के जन्म के उपमानों को कवि ने जड़ी लगा दी है। चिन्तामणि रत्न की यह विशेषता होती है कि उसके सामने जिस भी वस्तु का चिन्तन किया जाय, वह वस्तु सामने आ उपस्थित होती है इसी प्रकार लोगों के लिए पार्श्व का जन्म मानो चिन्तामणि रत्न की उत्पत्ति था। सभी अपने-अपने यश की अधिकाधिक वृद्धि की कामना करते हैं। यदि सारा यश किसी व्यक्ति में एकत्रित हो जाय तो उससे अधिक सौभाग्यशाली और कौन होगा? पार्श्व की उत्पत्ति संसार के लिए वैसी ही थी जैसे यश का पुंज ही एक स्थान पर एकत्रित हो गया हो। चाँदनी रात्रि में पूर्णचन्द्रमा का उदय सभी को जिस प्रकार सुखदायी होता है, उसी प्रकार भगवान पार्श्व की उत्पत्ति सभी को सुखदायी थी। कुरुभूमि में उत्पन्न कल्पवृक्ष से सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। पार्श्व के अवतरण से संसारी जीवों की बहुत बड़ी कामनापूर्ण हो गयी अतः उनकी उत्पत्ति ऐसी थी मानो कल्पवृक्ष का अङ्कुर ही उत्पन्न हो गया हो।

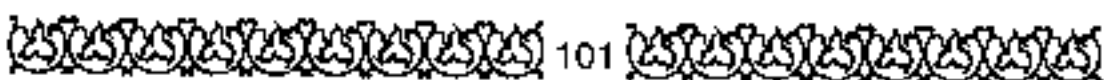
जिस प्रकार कमलों का आकर सरोवर सूर्य के उदय होते ही खिल जाता है। उसी प्रकार जिननाथ के अवतरण से सभी व्यक्ति प्रफुल्लित हो उठे।

आकाश में सूर्य और चन्द्रमा का परिभ्रमण शोभादायक होता है। इसी प्रकार क्षीरसागर से भरे हुए कलश भी शोभादायक होकर चन्द्र और सूर्य के परिभ्रमण का स्मरण दिला रहे थे।

चन्दन सभी के सन्ताप को हरता है। शक्रराज ने जिनराज की चन्दन से चर्चा (पूजा) की मानो भविष्य में होने वाली तीव्रताप से अपने को दूर किया।

कामदेव का अस्त्र पुष्पवाण कहलाता है। इन्द्र ने पुष्पमाला लेकर भगवान के पादमूल में स्थापित की। मानो वह कामदेव के वाण से ही भगवान के चरणों की पूजा कर रहा था।

जिस प्रकार एकत्रित हुई नक्षत्र राजि सुशोभित होती है, उसी प्रकार निर्मल शालि बीजों की ढेरियाँ सुशोभित हो रही थीं।



सूर्य और चन्द्रमा की एकत्र उपस्थिति मनोहर लगती है जब जिनेन्द्र को इन्द्र ने कुण्डल युगल से मण्डित किया तो मानो सूर्य एवं चन्द्रमा ही वहाँ आकर शरण में बैठ गए थे।

जिस प्रकार अपने परिकर के साथ इन्द्र सभाभवन में सुशोभित होता है, उसी प्रकार उत्तम देवों और मनुष्यों के मध्य सभा में जिनवर सुशोभित हो रहे थे।

पापी कमठ का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है, मानो सर्वत्र उसे धिक्कारा गया हो। वन में प्रविष्ट कमठ हाथों के मद से सिक्त वन को देखता है, मानो वह कमठ के पाप से लिप्त हो गया है। उसे देखकर सिंह गर्जना करते हैं, मानो वे भी उसके परस्त्रीगमन के विरोधी हैं। घोंगियाँ उसे देखकर अपने बिलों में प्रवेश करने लगती हैं, मानो वे भी उसका मुखदर्शन नहीं करना चाहतीं। यथार्थ में बुरे व्यक्ति को लोग देखना भी पसन्द नहीं करते हैं। वहाँ के काले भ्रमर शब्द कर रहे थे मानो उसके दुर्गुणों की निन्दा ही कर रहे थे।

प्रभङ्करी रानी से उत्पन्न पुत्र का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि मानो चन्द्रमा में से कलङ्करहित प्रतिचन्द्र ही उत्पन्न हुआ है।

इस प्रकार सर्वत्र कवि की कल्पनायें बड़ी मार्मिक बन पड़ी हैं।

उपमा प्रयोग

स्पष्ट रूप से वैचित्र्य जनक साम्य को उपमा कहते हैं।

पासणाहचरित में रङ्गू का उपमा प्रयोग दृष्टव्य है। कुछ उपमायें नीचे दी जा रही हैं :

उस (स्वर्ण रेखा) नदी से वह गोपाचल उसी प्रकार सुशोभित होता है, जिस प्रकार भार्या से कोई दक्ष पति सुशोभित होता है।³⁴

गोपाचल में कुल रूपी श्री के लिए राजहंस के समान, गुण रूपी रत्नों के लिए सागर के समान, खल कुल के लिए प्रलयकाल के समान, गोरक्षण विधि के लिए नवीन वृषभ के समान, पर्वतान्त के शत्रुनृपति रूपी गजों के दलन करने के लिए सिंह के समान तथा कुबेर के समान प्रचुर धन का धनी डोंगरेन्द्र नाम से सुप्रसिद्ध (एक) राजा हुआ।³⁵

34 ताडि वि सोहिउ गोपाचलवखु णं भज समानउँ पाहु दखु। 1/3

35 पासणाहचरिउ 1/4



खेमसिंह की गति में हंसिनी के समान, वाणी में कोयल के समान, सौभाग्य एवं रूप सौन्दर्य में चेलना के समान अथवा राम के साथ श्रेष्ठ सीता के समान धनवती नाम की प्रणयिनी थी।³⁶

माँ के उदर से जिनेश्वर किस प्रकार निकले ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार मेघपटल से दिनकर।³⁷

पाण्डुक शिला पर एक-एक महाव्यसिंहासन था, जो मुनि मन के समान अत्यन्त निर्मल था।³⁸

पार्श्व जिन दशलक्षण धर्म के भेदों के समान हिन्दोले में बढ़ने लगे।³⁹

कुशस्थल नगर में कामदेव के समान सुन्दर शक्रवर्मा नामक राजा (निवास करता) था।⁴⁰

(युद्ध के समय) किन्हीं ने अञ्जन पर्वत के समान कान्तिवाले मदोन्मत्त हाथी को मार गिराया तो किसी ने सागर की चञ्चल तरंग के समान घोड़े को सुभट सहित मार गिराया।⁴¹

राजा अर्ककर्ति की सेना उसी प्रकार जस्त हो गयी, जिस प्रकार (वेदगान) में स्वरभंग होने से कोई ब्राह्मण यति भ्रष्ट हो-जाते हैं।⁴²

जिस प्रकार विषयरूपी भुजङ्ग से दष्ट होकर कुमुनि पतित हो जाता है और जैसे रवि के तेज से तम का भार नष्ट हो जाता है अथवा जिस प्रकार सम्यग्दर्शन से दुर्गति रूप दुःख अथवा तप के प्रभाव से कामदेव भग्न हो जाता है और जिस प्रकार आत्मदर्शन से कर्मसमूह ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार वह दुष्ट (कारावन) भी युद्धभूमि छोड़कर भाग गया।⁴³

36 गथ हंसणीव कल्योठि वाणि।

सोहगरूव चेळणि व्व दिट्ठ सिरिरामहु जिहँ पुणु सीय सिट्ठ। 1/6

37 उवरहु णीसरइ जिणेसु केम जलहर पडलाडिणेसु तेम। 2/5

38 पुणु एक्केक्कपीडि सिंघासणु। अइणिम्मलु अणघु णं मुणिमणु ॥ 2/11

39 हिंदोलयम्मि वड्ढेइ देठ। दहलक्खणधम्महो णाईं भेठ। 2/15

40 णयरु कुसस्थलु णाथँ सुहयरु सक्खम्मसु राणठं रुवे सरु॥ 3/1

41 केहि मि प्पाडिय मयमत्तदंति। अंजण महिहरसम जाह कंति।

केण चि सहु सुहडैं जरतुरंगु। खंडिउ णं चल-सायर तरंगु॥ 3/7

42 तेण रविकान्ति रायस्म बलु तट्ठउ। णाईं सर भिण्णु बंभज्जई भट्ठउ॥ 3/8

43 कुमुणि व विमय भुवगें दट्ठउ। णं रवितेणं तमभरु भट्ठउ।

णं सद्धंसाणेण दुगणैं दुहु तव प्पाईं णं भग्गठ णणरुहु।

णं अण्णादराणि कम्महँ णणु तिं सो दुहु णट्ठु छंडिवि रणु॥ 3/9



आयु अञ्जली के जल के समान ढलती जाती है। धन एवं सुख इन्द्रधनुष के समान अस्थिर (अथवा) जुए के धन के समान क्षणभर में दूसरे के हो जाते हैं। सन्ध्याकालीन बादलों के रंग के समान राग एवं रुचियाँ भी क्षणिक हैं, कहाँ कि इन्द्रिय सुख व्यभिचारिणियों के समान दूसरे का हो जाता है। स्त्रीभोग तारागण के समान तरल है और जहाँ भाग्य जलधर के समान चपल है। नव यौवन नदी के पूर के समान क्षीण हो जाने वाला है। इन्द्रियसुख बिजली के समान चंचल है। राज्य भोग भी जीर्णपत्र के समान किसी के लिए शाश्वत नहीं होता।⁴⁴

यह जीव यमराज के द्वारा उसी प्रकार कवलित कर लिया जाता है, जिस प्रकार मृगशावक सिंह के द्वारा ले जाया जाता है।⁴⁵

जिस प्रकार सरोवर में जल नालियों के द्वारा आता है, उसी प्रकार जीव प्रदेशों में (इन्द्रिय रूपी आस्रव द्वारा) कर्ममल आता है।⁴⁶

आकाश भ्रमर, काजल, ताल और तमालवर्ण के मेघों से उसी प्रकार आच्छादित हो गया, जिस प्रकार कुपुत्र अपने अपयश से।⁴⁷

दुर्जनों की कलह के समान उस (संवर देव) ने कहीं भी मर्यादा नहीं रखी।⁴⁸

मुख में लपलपाती हुई जिह्वासमूह कुशिष्य के मन के समान अत्यन्त चंचल हो रही थी।⁴⁹

दुःशील कमठ ने अपने लघुभ्राता की रूप में श्रेष्ठ स्त्री को इस प्रकार देखा, जैसे कोई गजेन्द्र सुन्दर हथिनी को।⁵⁰

44 अञ्जलि जलु व्व आउसु ढलए।

महवाधणु व्व धणु सुहु अधिरु। जूवाधणु व्व वखणि होइ परु।

संज्ञाधणरंगु व रायरुइ। इंदिय सुहु परु, जहिं असइमइ।

कंताइ तारायण तरला। जलहर उणाई जहिं तिहि चवला।

णवजोव्वणु णइपूरु व वरसइ। लावणु वणु दिणि-दिणि ल्हसइ।

इंदियसुहु तडि-तरलत्तणाउ। अवसाणि सरीरु ण अण्णउ।

भारुवहय जरपत्तुवसरिसु। तह रज्जु भोउ सासउ ण कसु। 3/14

45 जीउ तहं वि काले कवलित्ज्जइ। हरिणहु डिंभु व सीहें णिज्जइ॥ 3/15

46 जह सरवरि जलु णालिहिं धावइ। जीवप्पएसहिं तिह मलु आवइ॥ 3/20

47 अलिकज्जल ताल तमाल वणु। दुघत्तु व मेहे गयणु छण्णु॥ 4/8

48 दुज्जणकलहु व कत्थ वि ण माउ। 4/8

49 ललललिय वलिय मुहिं रसणुगणु। अइचंचलु णाई कुसीसमणु॥ 4/11

50 अवलोइय लहुभायरहु णारि। करिणीव करि दें रुबसारि। 6/3



वह कमठ भी रौद्र ध्यान के कारण मरकर कुक्कुट नाम की सर्पयोनि में धवल वर्ण का तथा साक्षात् हालाहल के समान दुष्ट सर्प हुआ।⁵¹

सर्प ने हाथी को कैसा देखा जैसे ध्यान में स्थित ऋषीश्वर हो।⁵²

उसकी विजया नाम की अतिवल्लभा प्रिया थी, जो हाव-भाव एवं विभ्रमों की जलवाहिनी के समान थी।⁵³

उस (वज्र पीड़ राजा) ने एकच्छत्र मेदिनी को भोगा और फिर उसे बूढ़ी दासी के समान शीघ्र ही त्याग दिया।⁵⁴

राजा रविकीर्ति कुल रूपी कुमुदों के विकास के लिए चन्द्रमा के समान था।⁵⁵

रूपक प्रयोग :

जहाँ उपमान और उपमेय में अभेद होता है, वहाँ रूपक अलङ्कार होता है।⁵⁶ रश्मि ने 'पासणाहचरित' में अनेक स्थानों पर रूपक का प्रयोग किया है। कुछ दृष्टान्त प्रस्तुत हैं-

अयरवाल कुल कमल अग्रवाल कुल रूपी कमल	1/5
परियण कहरव वण-परिजनों रूपी कमलवन	1/5
भवण - संसार रूपी समुद्र	1/2
आयमत्थसायरो - आगम रूपी अर्थ के सागर	1/2
तोमर कुल श्री = तोमर कुल रूपी लक्ष्मी	1/4
सम्पत्तरयण - सम्यक्त्व रूपी रत्न	1/7
कव्वरसायण - काव्य रूपी रसायन	1/8
महि जुवइ- पृथ्वी रूपी युवती	1/9
कुल गिह सर - कुल गृह रूपी सरोवर	2/2
विसयभुयंग = विषय रूपी भुजङ्ग	3/9
दुगई दुह = दुर्गति रूप दुःख	3/9

51 सो कमठु वि तावसु रुददशाणवसु मरिवि जाउ तहिं सप्पु खलु।
कुक्कुडणामालउं वण्णं धवलउ पयडु णाईं हालाहलु॥ 6/12

52 सर्पे हत्थि णिहालित केहउ। ज्ञाणे थक्कु रिमोसरु जेहउ। 6/13

53 तहु बल्लह विजया सोमंतिणि हावभावविब्भमजलवाहिणि। 6/15

54 एयच्छतं मेह णितं भुत्ती। जरदासि व पुणु सिग्घ चत्ती। 6/15

55 णियकुल कुमुववियासणचंदे। 6/22

56 सद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।



इन्द्रियभुवंग = इन्द्रिय रूपी भुजङ्ग	4/6
जणम पयोहि = जन्म रूपी समुद्र	4/19
भवतरु = भव रूपी वृक्ष	5/6
भववण = संसार रूपीवन	5/8
भव्वकंज = भव्यजन रूपी कमल	5/13
तवलच्छि = तप रूपी लक्ष्मी	6/8
तवसिरि = तप रूप लक्ष्मी	6/10
कुलकुमुव = कुल सभी कुमुद	6/22
जिणधम्मरसायणु = जिनधर्म रूपी रसायन	6/22

कवि के उपमान स्मार्थक हैं, जिस प्रकार कमल सबको आकर्षित करने वाला और सर्वत्र अपनी सुगन्धि फैलाने वाला होता है, उसी प्रकार कुल पुत्र सबको आकर्षित करने वाला और अपनी यश रूप सुगन्धि को सब जगह फैलाने वाला होता है। प्रद्युम्न साहू ऐसे ही कुलपुत्र थे। कवि ने उन्हें अग्रवाल कुल कमल कहा है।

जिस प्रकार समुद्र से डूबी हुई वस्तु का उद्धार होना बहुत कठिन है। इसी प्रकार संसार से निकलना भी बड़ा कठिन है। अतः कवि ने संसार को समुद्र कहा है।

जिस प्रकार समुद्र गम्भीर होता है, उसी प्रकार आगम भी गम्भीर होता है। ऐसे आगम के अर्थ को धारण करने वाले भट्टारक यशः कीर्ति को कवि ने आगम रूपी अर्थ का सागर कहा है।

जिस प्रकार लोक में रत्न श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व भी श्रेष्ठ होता है। अतः कवि ने सम्यक्त्व को रत्न कहा है।

जिस प्रकार रसायन का सेवन करने से अपूर्व लाभ होता है, उसी प्रकार काव्य का सेवन करने से अपूर्व लाभ होता है, अतः कवि ने काव्य को रसायन कहा है। जिन धर्म भी इसी प्रकार का रसायन है।

जिस प्रकार वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कोई युवती मनोहर लगती है, उसी प्रकार शस्यश्यामला पृथ्वी भी मनोहरी है। अतः रङ्ग ने पृथ्वी को उपमा युवती से दी है।

जिस प्रकार काला नाग यदि काट खाए तो प्राण धारण करना कठिन होता है, इसी प्रकार विषयभोग का परिणाम भी दुःखदायी होता है। अतः रङ्ग ने विषयों को भुजङ्ग कहा है।



प्राणी इन्द्रियों के द्वारा ही विषय सेवन करता है, जिसका कि फल दुःख रूप है। अतः इन्द्रियों को भी भुजङ्ग कहना सार्थक है।

जिस प्रकार समुद्र को पार करना कठिन है, उसी प्रकार जन्म की परम्परा का पार करना भी कठिन है। अतः जन्म को समुद्र कहा है।

जिस प्रकार वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष, यह परम्परा सतत चलती रहती है, उसी प्रकार संसार भी वृक्ष है, जिसका फल कर्मबन्धन है।

जिस प्रकार कोई महावन में प्रवेश कर अनेक कठिनाईयों का सामना करता है, उसी प्रकार संसार भी सुहावना है जिसमें अनेक प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ता है।

जिस प्रकार लक्ष्मी की प्राप्ति लोक में सुखद मानी जाती है, उसी प्रकार तपधारण भी सुखद है अतः तप को लक्ष्मी कहा गया है।

अनुप्रास प्रयोग :

स्वर की विषमता होने पर जो शब्द साम्य होता है उसे अनुप्रास करते हैं।⁵⁷

अपभ्रंश भाषा की यह विशेषता है कि बिना किसी आचास के अनुप्रास का सृजन हो जाता है। इसी के अनुरूप 'पासणाहचरित' में पद-पद पर अनुप्रास के दर्शन होते हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

जो अथरवाल-कुल-कमल भाणु

मिच्छत-वसण-वासण विरत्तु जिणसत्थणिगंथहँ पायभत्तु ।

उद्धरिउ चउव्विहसंघभारु, आथरिउ वि सावयचरिउ-चारु ।

दुहियणदुहणासणु बुहकुलसासणु जिणसासणु रइधुरधरणु ।

1/5

जिण-समयामय-रस-तित्त-चित्तु सिरिहोलिवम्मु णामे पवित्तु।

1/6

अण्णहिं दिणि आयमसत्थ दत्थु सम्मत्तरयणलंकियसमत्थु ।

गउ जिणहरि खेउँसाहु-साहु ।

रइधू पंडिय पयडियविवेउ ।

ता जिण-अच्चण-पसरिय-भुवेण। जंपिउ हरसिंघ संघवी सुवेण

मई सुकइत्तणिपुणु बद्धु गाहू पणविवि अणुराए पासणाहु। 1/7

57 अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।



यमक योग :

यदि अर्थ हो तो पृथक्-पृथक् अर्थ वाले (अन्यथा निरर्थक) स्वर-व्यञ्जन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति को यमक अलङ्कार कहते हैं।⁵⁸ 'पासणाहचरित' में भी यमक का प्रयोग हुआ है उदाहरणार्थ-

सिद्धस्थभाव भावियमणेण 1/7-मनोरथ सिद्धि की भावना से भक्ति मत से यहाँ भाव भाव की आवृत्ति हुई है। पहला भाव सार्थक और दूसरा भावित का अङ्ग होने से निरर्थक है।

बालत्तणि असई अभक्खु, भक्खु 1/8

यहाँ भक्खु की पुनरावृत्ति हुई है। अंतिम भक्खु सार्थक और पहला निरर्थक है।

जहिँ गहवइ-सुय-सुयगणु वारइ ॥ 1/9

यहाँ पहले सुय का अर्थ पुत्री (सुता) और दूसरे सुय (शुक्र) का अर्थ तोता है।

उपर्युक्त अलङ्कारों के अतिरिक्त कवि ने स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास काव्यलिङ्ग, समासोक्ति एवं अतिशयोक्ति के प्रयोग विशेष रूप से किए हैं।

रस योजना :

'पासणाहचरित' का अङ्गीरस शान्त है, पर शृङ्गार, वीर और रौद्र तथा वीभत्स रसों का भी सम्यक् परिपाक हुआ है। वीर रस के उदाहरण रूप कालयवन नरेन्द्र एवं राजा अर्ककीर्ति के युद्ध को लिया जा सकता है :

आयडिडयाई खग्गई सुतिक्ख णं जमेण जीह दंसिय पयक्ख ।
वरपहरणु लेइ ण कोवि धीरु मण्णेप्पिणु गरुवउ मारु वीरु ।
चंडासिहिँ खंडिय गयहँ जूह खंडंति परोप्परु सबल जूह ।
कासु वि गउ कासु वितुरउ धिण्णु केणावि कासु तुहु सीसु छिण्णु ।
केहि मि पाडिय मयमत्तदंति अंजण महिहरसम जाह कंति ।
केण वि सहु सुहडैँ वरतुरंगु खंडिउ णं चल-सायर तरंगु ।
ससिणह खंडिय वरपुंडरीय णं रणमहि फुल्लिय पुंडरीय ।
केयावलि खंडिय फरहरंति असईव वसा भूमिहि सहंति ।

58 सत्यर्थे पृथगार्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतिः।

क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते॥



पकल पाइक मुयंति हक विणि वि बल जोह मुयंति थक ।

जुज्जंतहैं विणि वि साहणाहैं दलु चलिउ ताम तहि अरियणाहैं । 3/7

अत्यन्त तीक्ष्ण तलवारें खींच ली गयीं, मानों यमराज प्रत्यक्ष ही जीभ दिखा रहा हो। वीर पार्श्वजिनेन्द्र को भयानक काल के समान मानकर कोई भी योद्धा शरण धारण नहीं कर पा रहा था। प्रच्छन्न मोड़ों के द्वारा गजयूथ खण्डित कर दिए गए। (दोनों ओर के) बलशाली योद्धा परम्पर में एक दूसरे को खण्डित करने लगे। किसी का हाथी, तो किसी का घोड़ा विदीर्ण हो गया। किसी के द्वारा किसी का शीर्ष ही छिन्न-भिन्न हो गया। किन्हीं ने अञ्जन पर्वत के समान कान्ति वाले मदोन्मत्त हाथी को मार गिराया तो किसी ने सागर की चञ्चल तरङ्ग के समान घोड़े को सुभट सहित मार गिराया। चन्द्रनख नामक शस्त्र के द्वारा उत्तम ध्वज वर्ण के छत्र काट दिये गये। उससे ऐसा लगने लगा, मानो रणभूमि में कमल ही खिल उठे हों। फहराती हुई ध्वजायें काट दी गईं। उससे ऐसा प्रतीत होता था। (मानो) पृथ्वी पर असतियों के वस्त्र ही पड़े हों। समर्थ पदातिगण आह्वान करते थे (और) दोनों ओर की सेनाओं के योद्धागण थक कर मरते थे। दोनों ओर की सेनाओं के युद्ध करते-करते शत्रुओं का दल भाग गया।

नरक की विविध वेदनाओं के वर्णन के प्रसङ्ग में बीभत्स रस का परिपाक हुआ है :

अण्णोण्ण वि णिहणंति परोप्परु सुहु ण लहंति तत्थ णिमिसंतरु ।

संडासहिं उब्बेवि वि दुहगुहिं गालिवि लोहु खिवहि णारइ मुहिं ।

गालिवि जाइ पुणु मिलइ खणंतरि जिम सूयय लव होहि णिरंतरि ।

णारयविंदहिं पुणु संदाणिउँ खेतविसें वइरु विणायउं ।

धगधगंतु इंगालसमाणउँ आयस थंभालिंगण ठाणउं ।

देवाविवि पुणु जंपहि रे खल परतियआलिंगिय पइं चिरु छल ।

अणेक वि स मलितरु लाइवि। तणु णिहसंति सीसु तणु साहिवि ।

तच्छाउ वि जइ कहमवि छुट्टइ। तिब्ब तिसाइउ सोणिउ घुट्टइ ।

पुणु घणघाएँ सिंरि ताडिज्जइ तत्त कडाहि तेल्लि सो खिज्जइ ।

कुंभी पाय समुब्भव दुक्खइँ पुणु फरसगिणिदाह असुक्खइँ । 5/19

नारकी परस्पर में एक दूसरे का हनन करते हैं और वहाँ निमिष भर के लिए भी उन्हें सुख प्राप्त नहीं होता। संडासी से नारकियों के मुँह फाड़कर उनमें

लोहा गलाकर भर देते हैं, उनसे शरीर गल जाता है, किन्तु फिर क्षणमात्र में उसी प्रकार मिल जाता है, जिस प्रकार पारे के बिन्दु निरन्तर संघटित हो जाते हैं। क्षेत्र की विशेषता के कारण पूर्व तैर को जादू का ताकत जूनों के द्वारा उनका दमन किया जाता है उनको धगधगाते हुए अङ्गारों के समान लोह स्तम्भों का आलिङ्गन कराकर वे कहते हैं कि- रे दुष्ट, तूने पूर्वकाल में छल से परस्त्री का आलिङ्गन किया था। अन्य दूसरे शामिल वृक्ष लाकर तृण अथवा वृक्ष डालियों के समान शरीर एवं सिर तहस-नहस कर डालते हैं। यदि वहाँ से वह किसी प्रकार छूट भी जाता है तो वह तीव्र प्यास से घुटने लगता है। फिर उनके सिर पर हथौड़ों के प्रहार से आघात करते हैं और उन्हें तप्त तेल के कड़ाहों में डाल देते हैं। वहाँ उन्हें कुम्भीपाक में पकाए जाने के समान जलन के दुख होते हैं और फिर स्पशप्रि दाह के।

मद्यपान करने वाले व्यक्ति को कारुणिक अवस्था का चित्रण करते हुए महाकवि रघू कहते हैं :

मज्जपाणेण मत्तो भयं तो णरो लज्जणिम्मुक्कु कीरइ अकज्जंतरो ।

णारिगल बाहँ घल्लेवि बोल्लवए माय बहिणी ति जपेह जं भावए ।

भज्ज पेच्छेवि वंदेइ माए ति आ घुम्ममाणो चलंतो वलंतो रसा ।

मग्ग मज्झमि लोट्ठेइ उत्ताणउ को वि दुक्केइ आसण्णुणो माणउ ।

मुत्तए साणु वत्तमि रंघे तुरं मण्णए तं पि सोवण्ण रस णिब्भरं ।

देहि देही ति जंपेइ भज्जं इमं मित्त कल्लण पीऊसपाणोवमं ।

सीसु सव्वहँ णावेइ जंपंतउ गायमाणो वि हिंदेइ कंपंतउ । 5/10

मद्यपान से उन्मत्त व्यक्ति भटकता फिरता है। लज्जा छोड़कर वह नीच कार्य करने लगता है। स्त्री के गले में बाँह डालकर उसे बुलाता है और माता अथवा बहिन (आदि) जो मन में आता है; वही कहकर पुकारता है और भोगता है। भार्या को देखकर "मां" इस प्रकार कहकर (उसे) प्रणाम करता है। सुरा रसपान के कारण चक्कर काटता हुआ लड़खड़ाकर चलता एवं बल खाता हुआ वह मार्ग के मध्य में ऊपर मुख किए हुए लेंट जाता है। कोई भी सम्मान के साथ उसके पास नहीं दूँकता। श्वान उसके मुँह में शीघ्र ही पेशाब कर देता है, किन्तु वह उसको भी श्रेष्ठ सुवर्णरस समझ लेता है और हे मित्र! कल्याणकारी अमृतपान के समान यह मदिरा (मुझे) और दो, और दो, इस प्रकार कहता है।

(अर्गल) बोलता हुआ वह सभी के लिए अपना माथा झुकाता है एवं यदा कदा गाता हुआ भी लड़खड़ाता हुआ घूमता-फिरता है।

कमठ द्वारा भयङ्कर जल वर्षा के प्रसङ्ग में भयानक रस की सृष्टि की गयी है-

तडयडइ-तडकइ असणिचंड गजइ घडहडइ चलेइ भंड ।
 भूहरकुलाइ किय खंड खंड गयगाजिय भजिय रडियसंड ।
 अलिकजल-ताल-तमाल वण्णु दुप्पुत्तु व मेहैं गयणु छण्णु ।
 मयउल भय तट्ठ यणट्ठ खिण्ण जलधारहिं पक्खिहिं पक्ख छिण्ण ।
 सरि-सरु दरि महियलु थलु असेसु पूरिउजलेण वणु गिरवसेसु ।
 तहि मग्गा मग्गुण मुणइ कोइ ॥

4/8

आकाश में प्रचण्ड वज्र तड़तड़ाने, गरजने, घड़घड़ाने और दर्पपूर्वक चलने लगा। तड़क-भड़क करते हुए उसने सभी पर्वत समूहों को खण्ड-खण्ड कर डाला। हाथियों को गुराहट से मदोन्मत्त सौंड़ चीत्कार कर भागने लगे। आकाश भ्रमर, काजल, ताल और तमालवर्ण के मेघों से उसी प्रकार आच्छादित हो गया, जिस प्रकार कुपुत्र अपने अपयश से। मृगकुल भय से त्रस्त होकर भाग पड़े और दुःखी हो गए। जलधाराओं से पक्षियों के पंख छिन्न-भिन्न हो गए। नदी, सरोवर, गुफायें, पृथ्वीमण्डल एवं वनप्रान्त सभी जल से प्रपूरित हो गए। वहाँ मार्ग एवं बुमार्ग का किसी को ज्ञान नहीं रहा।

कवि ने रौद्र रस का सुन्दर निरूपण किया है। राजा अरविन्द कमठ के दुराचार से खिन्न होकर क्रोधातुर हो जाता है और उसे नाना प्रकार के दुर्वचनों से तिरस्कृत करता है

अणिट्ठो ण इट्ठो पुरे एह धिट्ठो पमुत्तो खलो पावयम्पो णिकिट्ठो ।

तुमं लज्जयारो कुलायार भट्ठो पुराउ सुणिस्सारयामीति भट्ठो ॥

6/4

नगर में इस अनिष्टकारी, धृष्ट, प्रमत्त, दुष्ट, पापकर्मी एवं निकृष्ट कमठ का होना इष्ट नहीं है। वह तुम्हारे लिए लज्जाकारी एवं कुलाचार से भ्रष्ट है, उस भ्रष्ट को मैं नगर से निकलता हूँ।

सौन्दर्य का चित्रण करते समय कवि की शृंगारिक भावना की अभिव्यक्ति होती है। राजा अश्वसेन की पटरानी वामादेवी के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है :



तहु तिय वम्मएवि सुवस्सह रयणणिही विव सव्वहँ दुस्सह ।
पाणि-पाय-तल-रत्त-सुहंकर रणरणंति णेउर णं किंकर ।
णिव-मंति व गुंफहि गुंफत्तणु जंघजुवलु णं खल मित्तत्तणु ।
पिहुल-णियंबुं वि कडियलु झीणउ णं सिहिणहु भरेण हुउ खीणउ ।
भुयजुयमाणं मालसमाणउं णं जिणवर-पय अंचणठाणउं ।
मुहमंडलु ससि मंडल तुल्लउ जणु जोवइ पुणु पुणुमणि भुल्लउ ।
सीस चिहुर कुसमहँ भरसोहिय गंध लुद्ध छप्पय संमोहिय ॥ 1/10

उस (राजा अश्वसेन) की रत्ननिधि के समान सभी को दुर्लभ एवं अत्यन्त प्रिय वामादेवी नामकी पट्टरानी थी, जिसकी हथेलियाँ और चरणतल रक्तवर्ण वाले और सुखकारी थे, मानों (वे उसके) आज्ञापालक किंकर ही हों। उसकी गुल्फों की गूढ़ता नृप के मंत्री के समान गूढ़ थीं, उसकी दोनों जांघें खल की मैत्री के समान सम्पृक्त थीं। नितम्बविशाल एवं कटिभाग क्षीण था, मानो जिनवर के चरणों के पूजा की स्थान ही हों। उसका मुखमण्डल चन्द्रमण्डल के समान था, जिसे लोग बार-बार इस प्रकार देखते थे, मानो भूली हुई (किसी) मणि को खोज रहे हों। कुसुमों के भार से शोभित उसका केशपाश गन्ध के लोभी भौरों को मोहित कर रहा था।

जहां न दुःख रहता है न सुख, न द्वेष और न राग, समस्त जीवों में समभाव वाला वह शान्त रस माना गया है।⁵⁹ शान्तरस का रसराजत्व इसलिए सिद्ध है कि मानव जीवन की समस्त कृतियों का उद्गम शान्ति से ही होता है शान्ति का अनन्त भण्डार आत्मा है। जब आत्मा देह आदि परपदार्थों से अपने को भिन्न अनुभव करने लगती है, तभी शान्तरस की उत्पत्ति होती है। यह वह विशुद्ध ज्ञान और आत्मानन्द की दशा है, जहाँ काव्यानन्द और ब्रह्मानन्द दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। जैन कवियों की काव्य रचना का उद्देश्य मनुष्यमात्र में वैराग्य उत्पन्न कर चर्मोत्कृष्ट सुख-शान्ति की ओर ले जाना रहा है, जिनमें वे सफल हुए हैं।⁶⁰ महाकवि रङ्गधू के 'पासणाहचरित' में निर्वेद भावों को जागृत करने वाले कई स्थल मिलते हैं, जहाँ शान्त रस का प्रभावी परिपाक बन पड़ा है:

59 यत्र न सुखं न दुःखं द्रव्येषु नापि मत्सरः।

समः सर्वभूतेषु स शान्तः प्रथितो रसः॥ भरतमुनि।

60 जैन विद्या (खण्ड-2) डॉ. प्रेमचन्द रावका का लेख पृ. 66



पुगलसहाउ पूरइ गलए अंजलिजलु व्व आउसु ढलए ।
 महवाधणु व्व धणु सुहु अधिरु जूवाधणु व्व खणि होइ परु ।
 संज्ञाधणरंगु व रायरुइ ईंदियसुहु परु जहिं असइमइ ।
 कंतारइ तारायण तरुता सत्तहरउगाई जहिं विहि १२३ ना ।
 णवजोव्वणु णइपुरु व वरसइ लावणु वणु दिणि दिणि ल्हसइ ।
 ईंदिय सुणु तडि-तरलत्तणउ अवसाणि सरोरु ण अप्पणउ ।
 भारुवहय-जरपत्तुव-सरिसु तह रज्जु-भोउ सासउ ण कसु । 3/14

पुद्गल का स्वभाव है कि वह बढ़ता और घटता रहता है। आयु अंजलि के जल के समान ढलती जाती है। धन एवं सुख इन्द्रधनुष के समान अस्थिर हैं। अथवा वे जुए के धन के समान क्षण भर में दूसरे के हो जाते हैं। सन्ध्याकालीन बादलों के रंग के समान राग एवं रुचियाँ भी क्षणिक हैं जहाँ कि इन्द्रियसुख व्यभिचारिणियों के समान दूसरे का हो जाता है। स्त्री भोग तारागण के समान सरल हैं और जहाँ भाग्य जलधर के समान चंचल हैं। नवयौवन (बरसाती) नदी के पूर के समान क्षीण हो जाने वाला है। सौन्दर्य और वर्ण प्रतिदिन हीयमान हैं। इन्द्रियसुख बिजली के समान चंचल हैं। अवसान के समय शरीर भी अपना नहीं रहता। राज्यभोग भारोपहत जीर्णपत्र के समान किसी के लिए शाश्वत नहीं होता।

पासणाहचरिउ की छन्द-योजना :

पासणाहचरिउ में अधिकोश पद्धडिया छन्द का प्रयोग किया गया है। पद्धडिया छन्द के अतिरिक्त इसमें घत्ता, अडिल्ल, द्विपदी, रड्डा, भुजङ्ग ग प्रयात चन्द्रानन, सर्गिणी तथा संसग्गि छन्दों का प्रयोग किया गया है।

पद्धडिया (पठझडिया) :

प्रत्येक चरण के अन्त में जगण की रचना कर चार स्थान पर चतुमात्रिक गण की रचना करो, इस पद्धटिका छन्द में चारों चरण समान होते हैं तथा 64 मात्रा होती हैं। (इसे सुनकर) चन्द्रमा प्रस्रवित होता है⁶¹ जैसे-

पुणु रिसहणाहु पणाविवि जिणिंदु भवतम पिण्णासणि जो दिणिंदु ।
 सिरि अजिउ वि दोस कसाय हारि संभउ वि जयत्तय सोक्खकारि ॥

पासणाहचरिउ 1/1

61 चतमत्त करह गण चारि ठाई, ठवि अन्त पओहर पाई पाई।

चठसट्ठि मत्त पज्झरइ इंदु,

सम चारि पाअ पज्झडिय छंदु॥ प्राकृत पैगलम् 1/125

अडिल्ला :

प्रत्येक चरण में सोलह मात्रा हों, दोनों स्थानों पर चरणों में समक हो। इसमें कहीं जगण (पयोधर) का प्रयोग न किया जाये। चरण के अन्त में सुप्रिय दो लघु द्विमात्रिक हों। इसे अडिल्ला छन्द कहते हैं।⁶² जैसे-

आयण्णहु थिरु मणु धारेण्णिणु । संकप्पु वियण्णु (वि) छंडेण्णिणु ॥
जिउ सेणियहु गणैसै भासिउ । मण संदेह सल्लु णिण्णासिउ ॥

पासणाहचरिउ 1/9

घत्ता :

इसमें बासठ मात्रायें होती हैं। पिंगल कवि ने इसे उत्कृष्ट कहा है। दोनों चरणों में चतुर्मात्रिक सात गण तथा अन्त में तीन-तीन लघु रखना चाहिए।⁶³ जैसे-

इय साहुहु वयणे वियसिय वयणै पंडिएण हरिसेण्णिणु ।

तै कव्वरसायणु सुहसयदायणु पारद्धठ मणु देण्णिणु ॥ पासणाहचरिउ 1/8

द्विपदी :

प्रथम चरण के आरम्भ में जहाँ इन्द्र (षट्कलगण) हो, उसके बाद दो भनुधर (चतुष्कल) हों तथा फिर दो पदाति (चतुष्कल) स्थापित करो, अन्त में भनुकर चरण (षट्कल) दो। इसे द्विपदी कहते हैं।⁶⁴ मुख में (सर्वप्रथम) षट्कल की स्थापना कर पाँच चतुष्कलों की स्थापना करो। अन्त में एक गुरु देकर उसे द्विपदी कहना चाहिए।⁶⁵ जैसे-

भो धणय जक्ख अवहारि दक्ख। इह भरहवासि कासीणिवासि ।

वाणारसीहिं जण मण हरीहिं अससेण गेहि णं सरय-मेहि

62 सोलह मत्ता पाठ अडिल्ला वेवि जमक्का भेउ अडिल्ला।

हो ण पओहर किं पि अडिल्ला, अन्त सुपिअ भग छंडुअडिल्ला ॥ प्राकृत पेंगलम् 1/127

63 पिंगल कह दिट्ठउछंद उक्किट्ठउ घत्त मत्तवासिट्ठ करि।

चउ मत्त सत्त गण वि पाअ तिणिण तिणिण लहु अंत धरि। वही 1/99

64 आइय इंदु जत्थ हो पद्धमहि जिज्जइ तिणि धणुहरं।

तह पाइक्कजुअल परिमंठवहु विविहचिन्त सुन्दरं ॥ 1/152 ॥ प्राकृत पेंगलम्

65 छक्कलु मुह संठावि कइ चक्कलु पंच ठवेहु।

अंतहि एक्कह हार दइ दोअइ छंद कहेहु ॥ प्राकृत पेंगलम् 1/154



सिरिपासणाहु होहीइ वाहुतहिं जाहि सिग्घ सोहामहग्घ
 करि अप्पसत्ति जिणणाहभत्ति। अरु मणिणिहाउ वरसहि सराउ
 तहु सुणिवि वाय पणवेवि पाय। तहिं घणउ आउ पयडियसहाउ
 किय णयरसोह जण-मण-णिरोह। पुणु वरसुवण्णु वरसेइ धण्णु
 सुहि सयण बिंद पूरिय अणिद। णउ दव्वहीण तहें के वि हीण
 णउ रोय-दुक्खु णउ पुणु दुभिक्षु। धगकंचणइद सव्व जि वियइद ।
 इह अट्ठमत्त दुवई पउत्त ।

-पास. 2/1

भुजंगप्रयात :

जहाँ ध्वज (आदि लघु त्रिकल, 15) तथा चामर, (गुरु), इस प्रकार चार गण, प्रत्येक चरण में स्थापित किए जाय (अर्थात् जहाँ चार यगण 155 हों), पिंगल ने इसे समस्त छन्दों का सार कहा है तथा यह वैसे ही गले में स्थापित किया जाता है, जैसे- हार इस शुद्ध देह वाले छंद को भुजंगप्रयात कहा जाता है। इसके प्रत्येक चरण में 20 मात्रा होती हैं।⁶⁶

भुजंगप्रयात 155 155 155 155-12 वर्ण, 20 मात्रा

(भुजंगप्रयात छंद में) चार अहिगण (यगण) प्रसिद्ध हैं, (इस छन्द के) सोलह चरणों में (अर्थात् चार छन्दों में मिलाकर) सब कुल बीस अधिक तीन सौ (तीन सौ बीस) मात्रायें होती हैं। ऐसा पिंगल कहते हैं। जैसे-

तया पुत्त जुत्तं पउत्तं पवित्तं पणासंति विग्घ तुमं णाम मित्तं ।
 परं कारणं अज्ज बालत्तभावो सईणाह चित्तस्स मंदिण्ण रावो ।
 ण दिट्ठो सि संगाम रंगो भयंगो कयंतुज्ज पावयारु दूसियंगो ।
 ण पेसेमि तैं कारणेणं तुमं भो पमाणेहि इत्थच्छउ भोगलंभो ।
 सुणेऊण रायस्स वाया जिणेंदो पयंपेइ संसारवल्लीगंडो ।
 अहो ताय बालाणलो किं ण रण्णं डहेऊण संकीरए भप्फवण्णं ।
 मइंदस्स डिंभो गइंदाहें बिंदं ण किं भंजए रणिण पत्तं मइंधं ।

66 धओ चामरो हअओ सेस सारो,

उए कंठए मुद्धए जत्थ हारो।

चउच्छंद किज्जे तहा शुद्धदेहं,

भुजंगापअं पए बीस रेहं॥ प्रकृत पिंगलम् 2/124

अहिगण चारि प्रसिद्धा सोलह चरणेण पिंगलो भणइ।

तीणि सयावा बीसगल मत्तासंखय समग्गाइ॥ वही 2/125



तहाहं पि गंतूण पेच्छेमि जुद्धं विभंजेमि सत्तु जसासाहि लुद्धं ।
 पभणेवि सो राउ पुत्तस्स उत्तंइतिणा तं पयंपेइ सोंभण गत्तं ।
 रवेकित्तिमामस्सःअक्खंडरज्जं करेऊण आवेहु भो पुत्त सज्जं ।
 जिणेऊण कालज्जओ माणसत्तो भुयंगप्पयावां ठवेयीह मत्तो ।

(पासणाहचरित 3/5)

सुमौक्तिकदाम :

जहाँ चार पयोधर (जगण) प्रसिद्ध हों, (प्रत्येक चरण में) तीन और तेरह (अर्थात् $3 + 13 = 16$) मात्रा हों वह भौक्तिकदाम) (या सुमौक्तिकदाम) छन्द है। यहाँ आदि में या अन्त में हार (गुरु) नहीं दिया जाता। यहाँ (सोलह चरणों में) दो सौ अधिक छप्पन ($200 + 56 = 256$) मात्रा होती हैं⁶⁷ जैसे-

णिरंतरं दिति जहच्छियभोय, जि दुल्लह वुच्चहि एत्थ जि लोइ ।

गया छप्पस जि एण विहीए, पुणोणहिं वासरि जाय दिहीए ॥

पासणाहचरित 2/2

पासणाहचरित में रइडा⁶⁸ नामक पद्धड़ी छंद, सर्गिणी⁶⁹ संसर्गि⁷⁰ और चन्द्रानन⁷¹ छन्दों का प्रयोग भी हुआ है।

अति प्राकृत तत्व की भूमिका :

रइधू के 'पासणाहचरित' में अतिप्राकृत तत्व का सुन्दर सन्निवेश हुआ है। तीर्थंकर के गर्भ में आने के कारण इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। उसने अपने ज्ञान बल से वामा के गर्भ में तीर्थंकर को आया जानकर देवाङ्गनाओं को भेजा। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने मन को आकृष्ट करने वाली वाराणसी नगर की शोभा की। फिर उसने श्रेष्ठ स्वर्ग और धन की वर्षा की। इन्द्र के विशेष आदेश से श्री, ह्री, धृति, कीर्ति आदि प्रमुख देवियाँ वहाँ आगईं, जहाँ जिनवर की जननी

67 पओहर चारि पसिद्धह ताम,
 सि तेरह मत्तह मोत्तिअदाम।
 ण पुव्वहि हार म दिज्जइ अंत,
 बिह सअ अगल छप्पण मत्त॥ प्राकृत पैगलम्, 2/133

68 पासणाहचरित 2/3

69 वही 4/7

70 वही 5/10

71 वही 3/8

सुखपूर्वक निवास करती थी।⁷² देवियों में से कोई तो वामा देवी का सुन्दर-सुन्दर पदार्थों से उबटन करती थीं, कोई-कोई क्षीरसागर जाती थीं और वहाँ से विशुद्ध जल लाकर उसे स्नान कराती थीं। कोई-कोई सुन्दर निर्मल वस्त्र प्रदान करती थीं तो कोई प्रशस्त आभरण पहनाती थीं। कोई सिर के केशपाशों को मालती पुष्प की माला से सँवारती थी। कोई-कोई कपोलों पर सुन्दर चित्र लिखती थी तो कोई सुन्दर गीतों से उसका चित्त मोहित करती थी। कोई अपने हाथ से दर्पण दिखाती थी तो कोई पार्श्व में स्थित होकर सुन्दर चंवरद्वाराती थी। कोई अमृत-रसायन से युक्त भोजन समर्पित करती थी तो कोई नित्य नए आश्चर्य प्रकट करती थी। वे निरन्तर ऐसे भोग प्रदान करती थीं, जिन्हें इस लोक में दुर्लभ कहा जाता है। इस विधि से छः माह व्यतीत हो गए।⁷³

जब पार्श्व प्रभु का जन्म हुआ इन्द्रादि देवों ने नाना प्रकार के उत्सव मनाए। इन्द्र के ऐरावत हाथी के प्रत्येक मुख में सुशोभित दन्तमुसल था। प्रत्येक दाँत पर एक-एक सरोवर था। प्रत्येक सरोवर में नौकायें चल रही थीं। प्रत्येक सरोवर में पच्चीस-पच्चीस कमल थे। एक-एक कमल पर सवा-सवा सौ श्रीगृह थे। श्रेष्ठ कान्तिपूर्ण एवं विकसित एक-एक कमल में 133,708 पत्तें थे। पत्तों पर अप्सरायें नृत्य कर रही थीं। उन पत्तों पर चढ़कर इन्द्र भी गमन कर रहा था।⁷⁴

शचि प्रसूति गृह में आकर माँ के पास एक मायामय बालक रखकर परमेश्वर को उठाकर चल पड़ी। शचि ने वह बालक इन्द्र को अर्पित किया। ईशान इन्द्र ने बालक पर छत्र तान दिया।⁷⁵ पाण्डुक शिला पर ले जाकर देवों ने अभिषेक कार्य सम्पन्न किया।⁷⁶

सुरगणों की पंक्तियों ने क्षीरोदधि के सागरकूट की ओर प्रयाण किया। वहाँ विक्रियाकृद्धि करके देवगण आकाश मार्ग में स्थित होकर अभिषेक घटों को एक दूसरे को अर्पित करने लगे। देवगण मल को नष्ट करने वाले उन घड़ों को हाथों हाथ लेकर इन्द्र के हाथों में दे रहे थे और इन्द्र पुनः मन्त्र के पवित्र उत्तमरत्नों के समान दैदीप्यमान उन कुम्भों को जिननाथ के शीर्ष पर ढाल रहा

72 पासणाहचरित 2/1

73 वही 2/2

74 वही 2/6

75 वही 2/7

76 वही 2/12

था। इन्द्र ने दीर्घबाहुनाथ का मर्दन किया और इन्द्राणी ने उबटना⁷⁷, पुनः शुद्धोदक से स्नान कराकर उन लोगों ने गन्धोदक की वन्दना की। श्रेष्ठ वस्त्र से शरीर पोंछा एवम् मेरु के समान धीरे भगवान को दूसरे आर न पर स्थापित किया।⁷⁸ पुनः इन्द्र ने अष्टद्रव्य से भगवान की पूजा की।⁷⁹

इन्द्र ने जिनेन्द्र को कुण्डलचुगल से भण्डित किया। बहुमूल्य रत्नमुकुट एवं देवदूष्य तथा प्रशस्त स्वर्ण निर्मित तथा मणिजटित केयूर, कड़े, कटिसूत्र, शृङ्खला, हार एवं सिर पर तीन विशाल छत्र धारण किए। 'श्री पार्श्वनाथ' नाम रखकर वह वाराणसी की ओर चला। भगवान को इन्द्राणी ने माता को सौंपा। अश्वसेन के लिए इन्द्र ने दैदीप्यमान रत्नभूषण एवं पवित्र वस्त्र प्रदान किये।⁸⁰

जब भगवान को वैराग्य हुआ तब पञ्चम स्वर्ग में निवास करने वाले देवेन्द्र वाराणसी आए और भगवान की स्तुति की, तीर्थों के जल से उनका अभिषेक किया और वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया।⁸¹ शक्र ने मणियों से जटित एवं सुवर्ण निर्मित एक यान निर्मित किया। उस पर चढ़कर 'पार्श्व' अहिच्छन्नागर गए और वन में पहुँचकर दीक्षा ली।⁸² उन्होंने अपने मस्तक के केशों का लुंचन किया। जिन्हें इन्द्र ने क्षीरसागर में विसर्जित कर दिया।

जब पार्श्वनाथ तप कर रहे थे तो कमठ नामक एक देव जो अपनी भार्या सहित आकाशमार्ग से जा रहा था, अचानक विमान रुकने पर वहाँ आया और विमान के रुकने का कारण पार्श्व को ही समझकर उन पर भयंकर उपसर्ग प्रारम्भ कर दिया। उसी समय असुरेश्वर का आसन कम्पायमान हुआ। जब उसे पार्श्वप्रभु पर उपस्थित उपसर्ग का ज्ञान हुआ तो उसके निवारण के लिए वह वहाँ आया और कमलासन की रचना कर उस पर पार्श्वप्रभु को विराजमान कर दिया। पद्मावती ने उनके सिर पर छत्र तान दिया। पार्श्वप्रभु अपनी तपस्या से च्युत नहीं हुए। उन्हें कैवल्य की उपलब्धि हो गयी।⁸³

77 पासणाहचरित 2/12

78 वही 2/12

79 वही 2/13

80 वही 2/14

81 वही 3/26

82 वही 4/1

83 वही चौथी सन्धि



इन्द्र केवलज्ञान महोत्सव मनाने आया।⁸⁴ इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने सभाङ्गण (समवशरण) की रचना की।

जब भगवान का विदर्पि दुःश्रित भी इन्द्र अपने परिकर सहित निर्वाणस्थल पर आया और उसने विक्रियाक्रुद्धि से मायामय शरीर बनाकर उसे सिंहासन पर विराजमान कर अष्ट प्रकार से पूजा की और नाना प्रकारके काष्ठों से चिता तैयार कर उस मायामयी शरीर को उस पर रखकर चिता प्रज्ज्वलित की।⁸⁵

भस्म को क्षीरसागर में बहाकर वह वापिस स्वर्ग चला गया।⁸⁶ इस प्रकार 'पासणाहचरिउ' में अतिप्राकृत तत्त्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

84 पासणाहचरिउ 4/14

85 वही 7/4

86 वही 7/5



चतुर्थ परिच्छेद

पासणाहचरित : एक महाकाव्य

महाकाव्य की सबसे अधिक स्पष्ट और सुव्यवस्थित परिभाषा 15 वीं शताब्दी में 'विश्वनाथ' ने अपने ग्रन्थ 'साहित्य दर्पण' में दी है। तदनुसार पद्यबन्ध के प्रकारों में जो सर्ग-बन्धरूप काव्य प्रकार है, वह महाकाव्य कहलाता है। (चरितवर्णन की दृष्टि से) इस सर्गबन्धरूप महाकाव्य में एक ही नायक का चरित चित्रित किया जाता है। यह नायक कोई देव विशेष या प्रख्यातवंश का राजा होता है। यह धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त होता है।

- 1 सर्गबद्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥
एकवंशभवा भूमाः कुलजा बहवोऽपि वा ।
शृंगारतीरशान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते ॥
अङ्गान सर्वेऽपि रसः सर्वे नाटकसन्धयः ।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तोष्वेकं च फलं भवेत् ॥
आदौ नमस्क्रियाशीला वस्तुनिर्देश एव वा ।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम् ॥
एकवृत्तमयैः पद्यैः अवसानेऽऽन्य वृत्तकैः ।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥
सन्ध्यासूयेन्दुरजनी प्रदोषध्वान्त वाससः ।
प्रातर्मध्याह्न मृगयाशैलतुल्यसागराः ॥
संभोगविप्रलम्भां च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।
रणप्रवाणोपयममन्त्र पुत्रोदयादयः ॥
वर्णनीया यथाभोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ।
कवेर्वृत्तस्य वा नाप्ता नायकस्येतरस्य वा ॥
तामास्य सर्गोपादेय कथाया सर्गनाम तु ।
सान्ध्यङ्गानि यथास्वाभमत्र विधेयानि ॥
अवसानोऽन्यवृत्तकैः इति बहुवचनमविवक्षितम् ।

साङ्गोपाङ्गा इति अलकेलिपधुपानादयः ॥

विश्वनाथः साहित्यदर्पण 315-32

किसी-किसी महाकाव्य में एक राजवंश में उत्पन्न अनेक कुलीन राजाओं की भी चरित्र चर्चा दिखाई देती है। (रसाभिव्यंजन की दृष्टि से) श्रृंगार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस प्रधान होता है। इन तीनों रसों में से जो रस भी प्रधान रखा जाय, उसकी अपेक्षा अन्य सभी रस अप्रधान रूप से अभिव्यक्त किए जा सकते हैं। (संस्थान रचना की दृष्टि से) नाटक की सभी सन्धियाँ महाकाव्य में आवश्यक मानी गई हैं। (इतिवृत्त योजना की दृष्टि से) कोई भी ऐतिहासिक अथवा किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध कोई लोकप्रियवृत्त यहाँ वर्णित होता है। (उपयोगिता की दृष्टि से) महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टय का काव्यात्मक निरूपण होता है, किन्तु उत्कृष्ट फल के रूप में किसी एक का ही सर्वतोभद्र निबन्ध युक्तियुक्त माना जाता है। महाकाव्य का आरम्भ मङ्गलात्मक होता है। यह मङ्गल नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक होता है। किसी-किसी महाकाव्य में खलनिन्दा और सज्जनप्रशंसा भी उपनिबद्ध होती है। इसमें न बहुत छोटे और न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द होता है, किन्तु सर्ग का अन्तिम पद्य भिन्न छन्द का होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा को सूचना होनी चाहिए। इसमें सन्ध्या, सूर्य, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन प्रातःकाल मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, विवाह, यात्रा, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से या चरित्र के नाम से अथवा चरित्रनायक के नाम से होना चाहिए। सर्ग का नाम वर्णनीय कथा के आधार पर लिखा जाता है। संधि के अङ्ग यहाँ यथासम्भव रखने चाहिए। जलक्रीड़ा, मधुपानादि साङ्गोपाङ्ग होना चाहिए।

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षण न्यूनाधिक रूप में पासणाहचरित में घटित होते हैं। इसे सन्धियों में विभक्त किया गया है। सन्धि को ही सर्ग का पर्याय मानना चाहिए। सन्धियों का विभाजन कडवकों में किया गया है तथा कडवक का कलेवर पंक्तियों से बना है। प्रत्येक सन्धि का नाम वर्णनीय विषय के आधार पर रखा गया है। काव्य के प्रारम्भ में कवि ने चौबीस तीर्थंकरों, सरस्वती एवं गौतम गणधर की स्तुति कर भट्टारक सहस्रकीर्ति, यशःकीर्ति एवं श्री खेमचन्द साहू का स्मरण किया है। इसके बाद कवि ने गोपाचल

नगर का वर्णन कर गोपाचल नरेश तोमरवंशी राजा इंगरसिंह एवं उनकी वंश परम्परा का परिचय दिया है। अनन्तर कवि रङ्गू के आश्रयदाता साहू खेम सिंह अग्रवाल का परिचय है। खेळ साहू द्वारा ग्रन्थ के भार को धारण कर लेने की प्रतिज्ञा के अनन्तर काव्य को प्रारम्भ किया गया है। काव्य का प्रारम्भ तीर्थकर पार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए कथानक का भी निर्देश (आहासमिह चरित) कर दिया है, अतः वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण भी है।

ग्रन्थ की प्रामाणिकता हेतु रङ्गू कहते हैं कि जिस प्रकार गणधर ने मन के सन्देह रूपी शल्य को दूर करने वाला यह चरित श्रेणिक को सुनाया था, उसी प्रकार मैं भी अपनी शक्ति के अनुसार पापनाशक इस (पार्श्व चरित) को कहता हूँ।

“पासणाहचरित” के नायक देवाधिदेव भगवान श्री पार्श्वनाथ हैं। ये प्रख्यात वंश के क्षत्रिय राजकुमार हैं। इनमें धीरोदात्त नायक के त्याग, सहिष्णुता, उदारता, सहानुभूति, बन्धुत्व, करुणा इत्यादि सभी गुण विद्यमान हैं।

ग्रन्थ का प्रमुख रस शान्त है परन्तु शृंगार (संयोग और वियोग), वीर, करुण, भयानक, रौद्र इत्यादि अन्य रसों की व्यञ्जना अप्रधान रूप में हुई है।

भ. पार्श्वनाथ के लोकप्रिय जीवन को आधार बनाकर इस काव्य (पासणाहचरित) का सृजन किया गया है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय का वर्णन किया गया है, किन्तु अन्तिम ध्येय मोक्ष पुरुषार्थ निरूपित है। महाकाव्य का प्रारम्भ मङ्गलात्मक है। यह मङ्गल नमस्कारात्मक है। “पासणाहचरित” कहने का प्रारम्भ में ही कथन किया गया है। इसमें कमठ जैसे खल की निन्दा और पार्श्वनाथ जैसे सज्जन की प्रशंसा भी की गयी है। ग्रन्थ में सात सन्धियाँ हैं। सन्धियाँ न अधिक छोटी हैं और न अधिक बड़ी हैं।

समस्त काव्य में अडिल्ल, द्विपदी मौत्तिय दाम, रङ्गडा, चन्द्रानन, घत्ता, भुजङ्गप्रयात, संसगि, सर्गिणी आदि विविध छन्दों का समुचित प्रयोग किया गया है। इस काव्य में अलंकारों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग हुआ है। अनुप्रास का प्रयोग पदे-पदे किया गया है, साथ ही यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति आदि समाविष्ट अलंकारों की छटा भी काव्य को

अलंकृत करती है। इसमें सूर्य, रात्रि, दिन, पर्वत, वन, संयोग-वियोग, मुनि, स्वर्ग, नरक, नदी, सरोवर, युद्ध, यज्ञ, मन्त्र, पुत्र, यात्रा, ऋतु और अभ्युदय आदि के सुन्दर चित्रण में भी कवि की लेखनी सराबोर रही है। प्रकृति वर्णन भी कवि के प्रकृति प्रेम को दर्शाता है।

ग्रन्थ का नाम "पासणाहचरित" चरित्र नायक श्री पाशनाथ के नाम पर रखा गया है, जिससे वर्णित कथ्य का संकेत मिल जाता है। सूक्त वाक्यों का समावेश भी काव्य की अपनी विशेषता है। काव्य के अन्त में मङ्गल कामना किए जाने से यह मंगलांकित अन्त वाला महाकाव्य है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि "पासणाहचरित" में न्यूनाधिक महाकाव्य के लक्षण भली-भाँति घटित होते हैं। अतएव इन सब आधारों पर उसकी गणना महाकाव्यों के अन्तर्गत की जाती है।

नगर-वर्णन

गोपाचल² :

महाकवि रङ्ग ने "पासणाहचरित" में गोपाचल नगर का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। वर्तमान में मध्य प्रदेशान्तर्गत ग्वालियर जिला ही उस समय का गोपाचल था। कवि ने गोपाचल नगर को पृथ्वीमण्डल में प्रधान, सुमेरुपर्वत के समान विशाल, देवताओं के मन में भी आश्चर्य उत्पन्न करने वाला, भवन-शिखरों से मण्डित तथा पृथ्वीमण्डल के श्रेष्ठ पण्डित के समान³ माना है। गोपाचल नगर उस समय अत्यन्त वैभव से युक्त था। वहाँ के कलापूर्ण भवन, मन्दिर, जनावृत सड़कें, सोने-चाँदी, हीरे, जवाहरात और मोतियों से भरे हुए बाजार और दानशालायें; सभी आगन्तुकों को मोहित करती थीं। सभी मनुष्य धर्म एवं साहित्य की सेवा में रत रहते थे। वहाँ पर निरन्तर अर्चना, पूजा एवं दान से सुशोभित निर्मल बुद्धि से युक्त श्रेष्ठ मनुष्य निवास करते थे।⁴ जो सप्त व्यसनों तथा भय से रहित थे।⁵ वहाँ की स्त्रियाँ

2 भारतवर्ष के मध्यप्रदेशान्तर्गत ग्वालियर जनपद

3 पासणाहचरित : रङ्ग 1/4

4 रङ्ग, पासणाहचरित 1/4

5 वही 1/4

सोने के कड़ों से विशेष रूप से मण्डित, सभी प्रकार के श्रृंगारों से युक्त, सौभाग्य की निधान, जैन धर्म एवं शील गुण से युक्त मानपूर्वक श्रेष्ठ लीलायें किया करती थीं⁶ धन-धान्य से युक्त होने के कारण वहाँ लुटेरे, कपटी, चोर, दुष्ट, दुर्जन, क्षुद्र, दुष्ट, पिशु, ढीठ, दुःखी एवं अनाथ जन दिखाई भी नहीं देते थे।⁷ कवि ने गोपाचल को श्रेष्ठ नगरों का गुरु मानते हुए कहा है कि :-

सुहलच्छिजसायरु णं रयणायरु बहुयण जुठ णं इंदरु ।

सन्थत्थहिं सोहिउ जणमणु मोहिउ णं वरणयरुहंएहु गुरु ॥⁸

अर्थात् गोपाचल नगर सुख, समृद्धि एवं यश के लिये रत्नाकर के समान आकर था, बुधजनों के समूहों से युक्त वह नगर मानो इन्द्रपुरी ही था। शास्त्रार्थों से सुशोभित तथा जनमन को आकर्षित करने वाले सर्वश्रेष्ठ नगरों का मानो वह गुरु ही था।

नगर श्रेष्ठ गोपाचल की चरण रज के स्पर्श से पवित्र मानने वाली सुवर्ण रेखा नदी के चमत्कार को कवि ने बड़ी ही सरस शैली में चित्रित किया है :

सोवण्णरेह णं उवहिं जाय। णं तोमरणिव पुण्णेणआय ।

ताइ वि सोहिउ गोपायलक्खु । णं भज्जसमाण उँणाहु दक्खु ॥⁹

वहाँ (गोपाचल) के बाजार नगर के मध्य में स्थित थे। बाजारों में सोना-चाँदी, हीरा-मोती, वस्त्र, बर्तन, खाद्य पदार्थ आदि सभी मिला करते थे। वहाँ के धरातल पान के रंग में रंगे हुए रहते थे।¹⁰ कवि के इस कथन से उस समय बहुतायत से पान खाने के शौक का पता चलता है।

हस्तिनापुर¹¹ :

“पासणाह चरिउ” में भ. पार्श्वनाथ को वणिक श्रेष्ठ वरदत्त के द्वारा हस्तिनापुर में आहारदान दिए जाने का उल्लेख आया है।¹² आद्य तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने 52 आर्य देशों की स्थापना की थी, उनमें कुरुजाङ्गल देश भी था। इस प्रदेश की राजधानी का नाम गजपुर था। सम्भवतः इस प्रदेश

6 वही 1/4

7 वही 1/4

8 वही 1/3

9 वही 1/3

10 “तंबोल-रंग-रंगिब-धरग”, रङ्गू पासणाह. 1/3

11 वही 4/3

12 वही 4/3

के गंगा तटवर्ती जंगलों में हाथियों का बाहुल्य होने के कारण यह गजपुर कहलाने लगा। पश्चात् कुरु वंश में हस्तिन् नाम का एक प्रतापी राजा हुआ। उसके नाम पर इसका नाम हस्तिनापुर हो गया।¹³ प्राचीन साहित्य में इसी हस्तिनापुर के अनेक नाम आते हैं, यथा - गजपुर¹⁴, गजसाहयपुर¹⁵, नागपुर¹⁶, आसन्दीवन, ब्रह्मस्थल¹⁷, कुंजरपुर¹⁸, हस्तिनापुर आदि।

प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने सर्वप्रथम यहीं पर ही राजा सोमप्रथ और श्रेयांश के हाथों से इक्षुरस का आहार ग्रहण किया था।¹⁹

हस्तिनापुर सोलहवें, सत्रहवें एवं अठारहवें तीर्थंकर शान्ति, कुन्धु और अरहनाथ के गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान कल्याणक की भूमि रही है।²⁰ यहाँ गंगा नामक पवित्र नदी पवाहित होती है। भ. मल्लिनाथ स्वामी का समवसरण हस्तिनापुर आया था। इस नगर में श्री विष्णु कुमार मुनि ने बलि द्वारा हवन के लिए एकत्र सात सौ मुनियों की रक्षा की थी। सन्त कुमार, महापद्म, सुभीम और परशुराम का जन्म इसी नगर में हुआ था। इस महानगर में शान्ति, कुन्धु, अरह और मल्लिनाथ के मनोहर चैत्यालय थे।²¹ रक्षाबन्धन, अक्षय तृतीया जैसे मंगल पर्वों का जन्मदाता यह हस्तिनापुर अपनी पवित्रता के कारण आज भी पूजनीय है।

काशी²² :

महाकवि रङ्ग ने "पासणाह चरित" में काशी नगर का संक्षेप में वर्णन किया है। भ. पार्श्वनाथ की जन्मस्थली होने के कारण काशी का काव्य में महत्त्व होना निर्विवाद है। कवि ने काशी को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ मानते हुए कहा है कि :-

13 द्रष्टव्य भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ (प्रथम भाग) पृ. 22

14 पञ्चमचरित : विमलसुरि, 95/34

15 श्रीमद्भागवत् 1/1/48

16 पञ्चमचरित 6/71, 20/10

17 वही 20/180

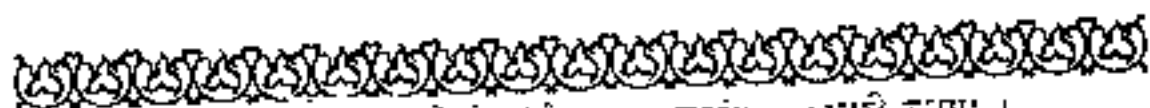
18 वही 95/34

19 पञ्चचरित 4/7-22

20 डॉ. रमेश चन्द जैन पावनतीर्थ हस्तिनापुर, पृ. 12

21 डॉ. रमेश चन्द जैन : पावनतीर्थ हस्तिनापुर पृ. 13-14

22 वर्तमान भारतवर्ष के उत्तरप्रदेशान्तर्गत वाराणसी जनपद



"तहिँ जणमणहारी सुरहँ पियारी - बाणारस - धधरी दसए ।

रयणेहिँ पमंडिय इरि-अखंडिय-गेहहिँ णं सम्गठ हसए ॥"23

अर्थात् उस काशी देश में जनमनोहारी तथा देवों के लिए प्रिय वाराणसी नाम की नगरी स्थित है, जो रत्नों से अलंकृत तथा वैरियों द्वारा अखण्डित है, जो अपने भवनों की शोभा से मानो स्वर्ग का उपहास करती है। कवि ने काशी की भौगोलिक स्थिति को ही मानो सामने रख कर कहा है कि - इसी जम्बूद्वीप में सुमेरुपर्वत के दक्षिण में लक्ष्मी के घर के समान भारतवर्ष में काशी नामक सुखकर देश हैं, जो मानो पृथ्वी रूपी युवती का सुखपूर्वक पोषण करने वाला वर ही हो।24 वहाँ के मनुष्य दयालु एवं स्त्रियाँ अत्यधिक रूप राशि से युक्त हुआ करती थीं। वहाँ सर्वत्र सुख व्याप्त था। वहाँ का राजा न्याय और सद्गुणों में विश्वास रखता था।25

पोदनपुर26 :

कवि रङ्ग ने "पासणाहचरित" की 6वीं सन्धि में इसका उल्लेख किया है। पोदनपुर सुरम्य देश का प्रधान नगर था। पोदनपुर नगर की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि - वहाँ के मनुष्य विनम्र, व्रतों को मानने वाले, शान्त प्रकृति वाले27 हुआ करते थे। वहाँ हिमवन्त कूट के समान ऊँचे-ऊँचे भवन हैं।28 उस नगर में उपवन, सरिता, सरोवरों की अधिकता थी। वहाँ के राजा शत्रुओं को परास्त करने वाले एवं यशस्वी थे। स्त्रियाँ शीलव्रती29 एवं मधुरभाषिणी30 हुआ करती थीं। दुराचारी एवं व्यभिचारी व्यक्तियों को नगर से निकाल दिया जाता था। तत्कालीन राजा अरविन्द द्वारा कमठ को नगर से निकाला जाना, इसी बात की पुष्टि करता है।31

23 पास. पन्ना 9

24 पास. 1/9

25 वही पन्ना - 126

26 पास. 61/10

27 पास. 6/1

28 वही 6/1

29 वही 6/1

30 वही 6/3

31 वही 6/3



कन्नौज³² :

हर्ष की राजधानी के रूप में प्राचीन काल से ही यह नगरी प्रसिद्ध रही है। सम्राट हर्षवर्धन ने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाकर चक्रवर्तित्व स्थापित किया था।³³ कन्नौज में ही संस्कृत के प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट ने कादम्बरी और हर्षचरित जैसे महनीय ग्रन्थों की रचना की थी।³⁴

कन्नौज बहुत दिनों तक संस्कृत कवियों का आश्रय दाता रहा है। अतः संस्कृत काव्य के प्रणयन में जितना महत्त्व उज्जयिनी का है, उतना ही कन्नौज का भी।³⁵

अयोध्या³⁶ :

प्राचीन अयोध्या नगरी कौशल-देश में थी। अयोध्या नगरी धन-धान्य से युक्त थी। प्रजा धर्मपरायण थी। वहाँ विशाल भव्य अनेक जैन मन्दिर थे। उस समय मन्दिरों में भगवान की मूर्ति की स्थापना करवाना पुण्य कार्य माना जाता था। वह नगरी अन्य शत्रुओं के द्वारा दुर्लभ्य थी और स्वयं अनेक योद्धाओं से भरी हुई थी, इसीलिए लोग उसे अयोध्या (जिससे कोई युद्ध नहीं कर सके) कहते थे। उसका दूसरा नाम विनीता भी था और वह आर्यखण्ड के मध्य में स्थित थी, इसलिए उस की नाभि के समान शोभायमान हो रही थी।³⁷

अहिच्छत्रा नगर³⁸ :

अहिच्छत्रा उत्तर पञ्चाल की राजधानी थी। भागीरथी नदी उत्तर एवम् दक्षिण पञ्चाल के मध्य विभाजक रेखा थी। वैदिक ग्रन्थों में पञ्चाल देश का पूर्वी एवम् पश्चिमी पञ्चाल के रूप में वर्णन किया गया है। इसका समर्थन पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में किया है। दिव्यावदान के अनुसार उत्तर पञ्चाल की राजधानी हस्तिनापुर थी किन्तु कुम्भकारजातक में कम्पिलपुर को

32 वही 5/1/5

33 मेहता : प्राचीन भारत - (वाराणसी 1933) पृ. 246

34 वही पृ. 247

35 रश्मि साहित्य का आलोचनात्मक परिशोधन, पृ. 512

36 पस. 6/17

37 महापुराण, पर्व 14, श्लोक 70

38 पासणाहचरित 4/1



इसकी राजधानी बतलाया गया है। ऐसा कहा जाता है कि साधक चार मास की आत्मशोधनार्थ की गयी तपः साधना के मध्य तीर्थकर भगवान् पार्श्वनाथ कुरु जनपद की महानगरी हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ पारणा करके गङ्गा के किनारे-किनारे विहार करते हुए वह भीमाटवी नामक वन में योग धारण कर कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ हो गए। इस अवस्था में वहाँ उन पर शंवर (अपर नाम मेघमाली पूर्वजन्म का कमठ) नामक दुष्ट असुर ने शोषण उपसर्ग किए। नागराज धरणेन्द्र और उनकी पत्नी पद्मावती ने उक्त विविध भयङ्कर उपसर्गों का निवारण करने का यथाशक्य प्रयत्न किया। नागराज (अहि) ने भगवान् के सिर के ऊपर अपने सहस्रफणों का वितान या छत्र बना दिया। श्वर्य योगिराज पार्श्व तो शुद्धात्म स्वरूप में लीन थे। उक्त उपसर्गों का उन्हें कोई ज्ञान नहीं था। उन्हें तभी केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी, वह अहन्त जिनेन्द्र बन गए। धन के बाहर आस पास के क्षेत्रों के निवासी लोगों की अपार भीड़ वहाँ एकत्रित हो गयी। भगवान् की अर्चना-वन्दना-स्तुतिगान हुआ। उनकी समवसरण सभा जुट गई और लोग उनके सर्व कल्याणकारी दिव्य उपदेश सुनकर कृतार्थ हुए। इस पुरीत स्थल से नाति दूर भीमाटवी वन के बाहर उत्तर पश्चात्त जनपद की राजधानी पंचालपुरी अपर नाम परिचक्रा एवं शैखावती अवस्थित थी। इस अभूतपूर्व घटना के कारण वह स्थान ही नहीं, वह नगरी भी छत्रावली या अहिच्छत्रा के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई।³⁹

अन्य नगर :

'पासणाहचरिउ' में कुशस्थल⁴⁰, आशापुरी⁴¹ आदि नगरों का भी उल्लेख मिलता है।

प्रकृति चित्रण :

भारतवर्ष प्राकृतिक सुषमा का विशाल आगार माना जाता है। इस देश का दूसरा पर्याय ही प्रकृति है। प्रकृति अनन्तकाल से मानव की सहचरी के रूप में प्रतिष्ठित है। सृष्टि के प्रथम पुरुष के जन्म से लेकर आज तक जन्मे

39 डॉ. रमेशचन्द्र जैन : अहिच्छत्रा की पुरासम्पदा पृ. 14, अनेकान्त वर्ष 39 कि. 4 (अक्टूबर-दिसम्बर, 1986) डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन का अहिच्छत्रा सम्बन्धी लेख।

40 पासणाहचरिउ 3/1

41 वही 6/15

सभी व्यक्तियों की क्रीड़ास्थली प्रकृति ही रही है। मानव की सभी आकांक्षाओं की पूर्ति प्रकृति के द्वारा ही होती है। वस्तुतः प्रकृति और मानव का सम्बन्ध शाश्वत होने के साथ ही साथ सत्य भी है। प्रकृति और मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण मानव द्वारा रचित काव्य भी उससे अछूता नहीं रहा और यही कारण है कि सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य प्रकृति के सुन्दर वर्णनों से भरा हुआ है।

अपभ्रंश काव्य में वर्णित प्रकृति के अनन्त रूप पूर्णतया सार्थक और सोद्देश्य हैं। काव्य में सरसता का संचार करने के लिए कवियों ने प्रकृति को माध्यम बनाया और काव्य में प्रकृति की अनिवार्यता को माना।

“काव्य प्रकृति का घर है और प्रकृति काव्य का प्राण है”, इस उक्ति को मान्यता देने वाले कवियों ने प्रकृति को गाना ही। कुछ कवियों ने तो प्रकृति का मानवीकरण ही कर दिया, जैसे – महाकवि कालिदास ने अपने “मेघदूत” में यक्ष का अपनी प्रिया को सन्देश मेघ से कहलाने की चेष्टा की।

भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्यकारों ने काव्य में प्रकृति की अनिवार्यता को माना। सातवीं शताब्दी के प्रख्यात संस्कृत कवि दण्डी ने महाकाव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उसमें समुद्र, पर्वत, चन्द्रोदय, सूर्योदय, सूर्यास्त, रात्रि आदि का अङ्कन आवश्यक बताया है।⁴²

महाकवि रङ्गधू ने अपनी कृति “पासणाहचरित” में भ. पार्श्वनाथ के जीवन चरित को प्रकृति के सुरम्य वातावरण में ही गुम्फित किया है। महाकाव्य में जगह-जगह हमें पृथ्वी, पर्वत, नदी, आकाश जीव-जन्तु, पशु-पक्षी आदि के अनेक वर्णन मिलते हैं :

महाकवि रङ्गधू ने काशी नगरी का वर्णन करते हुए उस नगर को प्रकृति के रूप में ही मानो परिवर्तित कर दिया है। “इसी जम्बूद्वीप में सुमेरु पर्वत के दक्षिण में लक्ष्मी के घर के समान भारतवर्ष में काशी नामक देश है, जो मानो पृथ्वी रूपी युवती का सुखपूर्वक पोषण करने वाला वर ही हो। जहाँ शुभ्र वर्ण वाले गौसमूह धान्यकण चरा करते हैं। वहाँ कोई भी उनके लिए (गायों के लिए) तृण नहीं काटता। जहाँ कोई कृषक-कन्या (तो) शुकसमूह

को भगाती है, किन्तु वह शुक समूह अपने कलरव में ही मानो उसी की प्रतिध्वनि को धारण करता है।⁴³

वामा देवी की केश सज्जा एवं सौन्दर्य प्रसाधन में भी प्रकृति ने अंलकार का कार्य किया है - कोई (सखी) ठरु (वामा) के तिर के केरापातों की द्विरेफ या भ्रमर की आवाजसहित मालती पुष्प की माला से रसाल मस्तक प्रदेश को सँवारती थी।⁴⁴

“पासणाहचरित” की द्वितीय सन्धि में वामा देवी को स्वप्नदर्शन के बहाने कवि के द्वारा मानो सम्पूर्ण प्रकृति-सुषमा का ही निरीक्षण करवाया गया हो - सर्वप्रथम (उस वामा देवी ने) सुगन्धित कर्णों से युक्त, चन्द्र किरणों के समान स्वच्छ चार धवल दाँतों वाले एवं प्रचण्ड गर्जन करने वाले गजेन्द्र को देखा। ढिंकार छोड़ते हुए विशाल कन्धों वाले तथा सैकड़ों प्रकार के सुख देने वाले वृषभ (बैल) को देखा। फिर अपने नाखून वाले पंजों को ऊपर उठाये हुए घुमंची के समान वरुण नेत्र वाले एवं भृगों के प्राण हरण करने वाले मृगेन्द्र को देखा। तत्पश्चात् जगवल्लभा लक्ष्मी को अपने समीप देखा तथा भ्रमरों से युक्त श्रेष्ठ पुष्पमाला को देखा। तदनन्तर अमृत को धारण करने वाला परिपूर्ण कलाकर, अन्धकार के भार का नाश करने वाला सूर्य, सरोवर में क्रीड़ा करते हुए मीनयुगल तथा आकाश में पल्लव शोभित घटयुगल को देखा। और भी विमलजल से युक्त कमलाकर, जलचर समूहों से चपल रत्नाकर, रत्नमय सिंहासन एवं आता हुआ एक विमान देखा। बहुत शोभा सम्पन्न नागालय, आश्चर्यचकित करने वाला रत्नपुंज, निर्धूम एवं सीधी शिखा वाली अग्नि देखी।⁴⁵

कवि ने मन्दर पर्वत की सुषमा का वर्णन करते हुए प्रकृति के साकार रूप को प्रत्यक्ष कर दिया है - “जो अपनी धवलिमा में चन्द्रमा के समान था, अलिवृन्दों के गुंजन से भरा था और गृद्ध पंक्ति रूपी अनेक घण्टों से मुखर था। वह पर्वत सहस्र योजन प्रमाण तथा कन्दरारूपी सौ मुखों से युक्त था। प्रत्येक मुख में सुशोभित दन्तमुसल था। प्रत्येक दाँत पर एक-एक सरोवर

43 पास. 1/9

44 वही 2/2

45 पास. 2/3

था और प्रत्येक सरोवर में नौकायें चल रही थीं। पुनः प्रत्येक सरोवर में पच्चीस-पच्चीस पुरैन (कमल) थे। एक-एक पुरैन पर सवा-सवा सौ श्रीगृह थे। श्रेष्ठ कान्तिपूर्ण एवं विकसित एक-एक कमल में 108-108 पत्ते थे।⁴⁶

भगवान पार्श्वनाथ की पूजा-सामग्री हेतु भी कवि ने प्रकृति प्रदत्त द्रव्यों, पुष्पों आदि का सहारा लिया - शक्रराज ने भक्तिभावपूर्वक जिननाथ की चन्दन से पूजा की। जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, भक्ष्य (नैवेद्य), दीप, धूप, फल - इन आठ द्रव्यों से भगवान की पूजा की गई। प्रमदवन में जाकर राय चम्पा और मालती (पुष्प) लाकर शची ने भव्यमाला ग्रथित की।⁴⁷

कवि ने "पासणाहचरित" में तापसियों का भोजन प्रकृति प्रदत्त फलों का ही बताया है - "वे तापस पञ्चाग्नि तपों के व्रती हैं। वे केवल फल, कन्द एवं मूल का भक्षण करते हैं।"⁴⁸

चतुर्थ सन्धि में कवि ने वर्षा ऋतु में होने वाली भयंकर जल वर्षा का बड़ा ही मनोहारी वास्तविक चित्रण किया है - "आकाश में प्रचण्ड वज्र तड़ितड़ाने, गरजने, घड़घड़ाने और दर्पपूर्वक चलने लगा। तड़क-भड़क करते हुए उसने सभी पर्वत समूहों को खण्ड-खण्ड कर दिया। हाथियों की गुराहट से मदोन्यत साँड़ चीत्कार कर भागने लगे। आकाश काले भ्रमर, ताल और तमाल वर्ण के मेघों से आच्छादित हो गया - मृगकुल भय से त्रस्त होकर भाग पड़े और दुखी हो गये, जल धाराओं से पक्षियों के पंख छिन्न-भिन्न हो गये। नदी, सरोवर, गुफायें, पृथ्वी, मण्डल एवं वनप्रान्त, सभी जल से प्रपूरित हो गये।"⁴⁹

केवलज्ञान प्राप्ति के उपरान्त भगवान को जो दश अतिशय हुए उनमें भी प्रकृति सहभागी रही - "वन पत्रों एवं पुष्पों से पूर्ण होने के कारण पृथ्वी हरित् वर्ण से आच्छादित दिखाई देने लगी। योजन प्रमाण क्षेत्र में पृथ्वी तृण एवं काँटों से रहित दर्पण के समान स्वच्छ दिखाई देने लगी।"⁵⁰

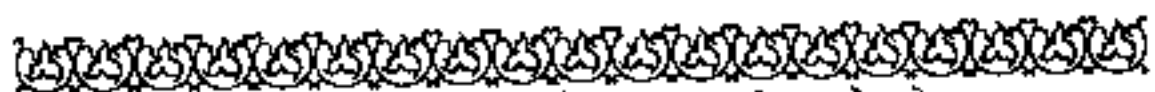
46 वही 2/6

47 वही 2/13

48 वही 3/11

49 पास. 4/8

50 वही 4/17



तत्कालीन विशाल नगर प्रकृति से पूर्णतया परिवृत थे। पोदनपुर नगर का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि - “जहाँ वृषभ टिकारते हुए घूमते हैं और गायों के साथ धान्य चरा करते हैं। जहाँ पर घना दूध देने वाली भैंसें हैं, जहाँ पर फलों एवं फूलों से युक्त श्रेष्ठ उद्यान हैं जहाँ पुंड़ (गजों) के खेत रस बहाते रहते हैं जहाँ के उपवन फलों से झुक जाये हैं।”⁵¹

कमठ जिस वन में तपस्या हेतु पहुँचा, उस वन का वर्णन करते हुए कवि कहता है - “उद्विग्न चित्त वह (कमठ) गिरि, कन्दरा एवं घने वृक्षों से युक्त भृग-कणों से सुशोभित, क्रुद्ध सिंहों से युक्त खेचरों एवं देवों के लिए सुखदायक वन में पहुँचा -

उल्लेइय चितइ सो वणि पत्तउ -

गिरिकंदरभूरुहघणऊँ ।

मिययणसोहिळउ हरि, कोहिळउखेयर- सुरहँ सुहावणहँ ।⁵²

प्राकृतिक सम्पदा :

प्राकृतिक सम्पदायें किसी भी देश का प्रगति का मूलभूत कारण होती हैं। प्राकृतिक सम्पदाओं का दोहन कर आर्थिक जीवन को सुदृढ़ किया जा सकता है। जन-जीवन का स्वस्थ होना भी प्रकृति पर ही निर्भर करता है। “पासणाहचरिउ” में रइधू ने भी इस सम्पदा को समाहित किया है, जो निम्न प्रकार है :

वन :

“पासणाहचरिउ” में निम्नलिखित वनों के नाम आये हैं :

भद्रशाल वन, नन्दन वन, सोमनस वन, पाण्डव वन⁵³ और सल्लकी वन⁵⁴।

पर्वत :

“पासणाहचरिउ” में निम्नलिखित पर्वतों के नाम आये हैं :

51 पास. 6/1

52 वही, पत्ता 110

53 पास. 2/9

54 वही 6/9



मन्दर पर्वत, 55 मेरु पर्वत, 56 विजयार्ध पर्वत, 57 हिमवान् पर्वत, 58 महाहिमवन्त पर्वत, 59 निषध पर्वत, 60 मानुषोत्तर पर्वत, 61 अञ्जनगिरि, 62 हिमगिरि, 63 सम्पेदशिखर, 64 हरिवर्ध, 65 रुक्मि, 66 शिखरिणी, 67 तथा नील 68 आदि।

सागर :

क्षीरोदधि (2/12), लवणोदधि (5/33) कालोदधि (5/33) इत्यादि सागरों के नाम 'पासणाहचरित' में वर्णित हैं।

नदियाँ :

“पासणाहचरित” में निम्नलिखित नदियों के नाम आये हैं :

स्वर्ण रेखा, 69 गंगा, 70 सिन्धु, 71 रोहित, 72 रोहितास्या, 73 हरित, 74 हरिकान्ता, 75 सीता, 76 तथा सीतोदा 77 आदि।

55 पास. 2/6, 2/9

56 वही 2/9, 5/31

57 वही 5/27

58 वही 5/29

59 वही 5/30

60 वही 5/31

61 वही 5/33

62 वही 6/9

63 वही 6/14

64 वही 7/2

65 वही 5/30

66 वही 5/32

67 वही 5/32

68 वही 5/32

69 वही 1/3

70 वही 5/27

71 वही 5/27

72 वही 5/27, 5/29

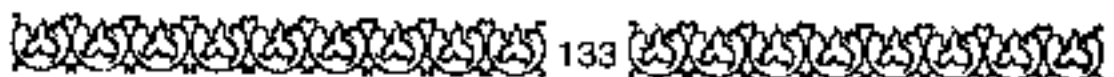
73 वही 5/29

74 वही 5/31

75 वही 5/31

76 वही 5/31

77 वही 5/32



सरोवर :

केसरि (5/32), महापुंडरीक (5/32) तिगिञ्छ (5/31), पद्म (5/28), महापद्म (5/31), पुण्डरीक (5/28) इत्यादि।

जीव-जन्तु :

“पासणाहचरिउ” में निम्नलिखित जीव-जन्तुओं का वर्णन मिलता है :

गौ (गाय) (1/4, 1/9), वृषभ/बैल (1/4, 2/3, 2/4, 6/1), गज (1/4, 2/3, 2/4), सिंह (1/4, 2/3), हंसिणी (1/6), कोयल (1/6), शुक (1/9) भृग (हरिण) (2/3, 4/8, 5/11), हय (घोड़ा 3/3), भुजंग (सर्प 2/4, 3/13), भ्रमर (2/3), मीन (2/3), संड (साँड़ 4/8), मार्जार, कुत्ता, नकुल, गिद्ध (5/6), मकड़ी, मच्छर, मक्खी (5/8), शूकर, सांभर (5/11), श्वान (कुत्ता 5/10), मत्स्य (मछली 5/18), महिष (भैंस 6/1), खर (गधा) (6/5), हंस (6/9) तथा शबर (6/16) आदि।

वनस्पतियाँ :

“पासणाहचरिउ” में निम्नलिखित वनस्पतियाँ वर्णित हैं :

शालि (2/16), कमल (1/6), मालती (2/2), चन्दन (2/13), रायचम्पा (2/13), शाल्मलिवृक्ष (5/19), तमाल, ताल (6/9) आदि।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि कवि रङ्गू को प्रकृति का अच्छा ज्ञान था और यही कारण है कि “पासणाहचरिउ” के अधिकांश प्रसंग प्रकृति से अपना सामीप्य बनाए रहे।

संवाद-सौष्टव :

किसी भी काव्य की सुन्दरता उस काव्य के संवादों में निहित होती है। जिस प्रकार किसी के भावों को जानने के लिए भावाभिव्यक्ति आवश्यक होती है और वह भावाभिव्यक्ति वाचनिक रूप में हो तभी उसे जाना जा सकता है। किसी अज्ञात लेखक ने कहा है कि - “यदि किसी व्यक्ति या महात्मा के चारित्रिक गुणों की टोह लेनी हो तो यह आवश्यक है कि उसके साथ संवाद स्थापित किया जाय।” वास्तव में यह बात सत्य ही है क्योंकि बाह्य-आकृति, वस्त्राभूषण आदि किसी व्यक्ति की विपन्नता या सम्पन्नता को

ही प्रकट कर सकते हैं उसके मनोभावों को व्यक्त करने में सहायक नहीं हो सकते। उसके मनोभावों की जानकारी तो संवाद अथवा कथोपकथन से ही मिल सकती है।

महाकवि रङ्गू की रचनाओं की एक प्रमुख विशेषता उनके संवादों की उत्कृष्टता रही है, जिसके लिये वे प्रसिद्ध भी हैं। भ. पार्श्वनाथ से सम्बन्धित जितने भी चरित काव्य आज सामने हैं उनमें संवादों की दृष्टि से सर्वाधिक सफल महाकवि रङ्गू कृत "पासणाहचरित" ही है। महाकवि रङ्गू के संवाद सम्बन्धित पात्रों के क्रियाकलाप व चारित्रिक गुणों जैसे - कर्मठता, त्याग, उदारता, दया, स्नेह, वात्सल्य आदि प्रवृत्तियों को उजागर करने में पूर्णतया सक्षम हैं। "पासणाहचरित" के कुछ प्रमुख संवाद इस प्रकार हैं

(1) काशी नरेश अश्वसेन और अर्ककीर्ति के दूत का संवाद :

काशी नरेश अश्वसेन की सभा में कुशास्थल नरेश राजा अर्ककीर्ति का दूत आता है⁷⁸ और वह अपने आने के अभिप्राय को तुरन्त प्रकट न कर, उसे भावनात्मक रूप देते हुए सर्वप्रथम अर्ककीर्ति के पिता शक्रवर्मा की संसार से विरक्ति और दीक्षा ग्रहण का सुखदायक समाचार सुनाता है⁷⁹ और फिर तुरन्त ही अर्ककीर्ति को यवन नरेश द्वारा दी गयी धमकी और अनीति युक्त शर्तों के विषय में बताता है⁸⁰ तो जिससे प्रथम आनन्द का संचार हुआ था वहीं अश्वसेन क्रोधाभिभूत भी हो जाते हैं।⁸¹ इस प्रसंग को दूत इतने सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है कि अश्वसेन रणक्षेत्र में ससैन्य जाने के लिए तैयार हो जाते हैं।⁸²

प्रस्तुत संवाद से हमें पता चलता है कि रङ्गू को मानवीय सम्बन्धों की अत्यन्त जानकारी थी और यही कारण है कि वे अर्ककीर्ति के अपमान को अश्वसेन का अपमान जतलाने में समर्थ होते हैं तथा कथानायक को भी अपना पराक्रम दिखाने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

78 पास. 3/1

79 वही 3/1/4-14

80 वही 3/2

81 वही 3/3/11-12

82 वही 3/2/1-10



कुशस्थलनरेश की सहायतार्थ युद्ध में जाने के लिए तैयार अपने पिता से विनम्रतापूर्वक निवेदन करते हुए पार्श्व का यह संवाद पिता-पुत्र की भूमिका को कितना न्यायसंगत बनाता है -

ताया भणमि महु गिहि हौँतैं, तहु किं गच्छहि पविहिय संतैं ।

कालजमणु रणमुहि उस्सारमि, जयसिरि - अणुराएँ करि धारमि ॥

महु सुवेण अच्छँतैं भो णिव समरि गमणु जुज्जह किंव ॥८३

अर्थात् हे तात् । आप ही कहें कि मुझ जैसे वज्र हृदय वाले पुत्र के घर में रहते हुए भी आप युद्ध में क्यों जा रहे हैं? मैं कालयवन को रणभूमि से उखाड़ फेंकूँगा और जयश्री को अनुरागपूर्वक अपने हाथों में ग्रहण करूँगा। मुझ जैसे पुत्र के रहते हुए हे राजन्! आप का युद्ध में जाना क्या योग्य (उचित) है? 84

युवराज पार्श्व के उक्त वचन सुनकर पिता अश्वसेन ने कहा कि -

“हे पुत्र, तुम्हारी प्रवृत्तियाँ उचित ही हैं। तुम्हारा नाम मात्र ही विघ्नों को नष्ट कर देता है। हे आर्य, दूसरों के लिए तुम अभी सरल स्वभाव वाले बालक ही हो। देवेन्द्र के चित्त के लिए आनन्ददायक मात्र हो। तुमने यमराज के समान पापकारी एवं दूषित संग्राम के भयानक रंग को अभी नहीं देखा है। हे पुत्र, इसी कारण से तुम्हें अभी युद्ध में नहीं भेजूँगा।” 85

पिता के उक्त वचनों को सुनकर पार्श्व ने पुनः उत्तर दिया -

“हे तात्! क्या अग्नि की एक चिनगारी समस्त वन को जलाकर भस्म नहीं कर देती? क्या मृगेन्द्र-शावक जंगल में मदान्ध गजेन्द्र समूह को पाकर उसे मार नहीं डालता? उसी प्रकार मैं भी जाकर युद्ध में देखता हूँ और यश-आशा के लोभी शत्रु को नष्ट कर डालता हूँ।” 86

उपर्युक्त संवाद के माध्यम से रङ्ग ने नायक के चरित्र को वीरोचित गुणों से भर दिया है। साथ ही इस जनभावना व भारतीय रीति की पुष्टि की है कि वीर युवा पुत्र को अपने पिता के प्रत्येक कार्य में अग्रगामी बनना चाहिए।

83 पास. 3/4/10-12

84 वही 3/4/10-12

85 वही 3/5/2-5

86 पास. 3/5/6-10



उक्त संवाद की मौलिकता पर टिप्पणी करते हुए रङ्गू साहित्य के प्रमुख अध्येता डॉ. राजाराम जी ने लिखा है कि -

पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थकर हैं। तीर्थकरों में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ एवं अरहनाथ, जो कि तीर्थकर होने के साथ-साथ चक्रवर्ती भी हैं⁸⁷ जिन्होंने शान्ति और सुव्यवस्था के हेतु आतताईयों का दुर्दमन कर अहिंसा-संस्कृति का प्रसार किया है। महाकवि रङ्गू के मस्तिष्क में तीर्थकर चक्रवर्ती का प्रत्यय (Conception) था। फलतः वे अपने नायक को भी तीर्थकर चक्रवर्ती के रूप में देखना चाहते थे। अतः हमारा अनुमान है कि उन्होंने पार्श्वनाथ के युद्ध में जाने की यह कल्पना कर नायक को एक नया ही रूप प्रदान किया है। जहाँ तक अन्य पार्श्वनाथ चरित्रों के अध्ययन का प्रश्न है, वहाँ तक हम यह कह सकते हैं कि कवि की यह कल्पना लगभग मौलिक है। अतः महाकाव्य का कवि पौराणिक महाकाव्य के लिखते समय भी अपने नायक को आरम्भ से ही देवत्व के वातावरण में खचित करना नहीं चाहता। आदर्श मानवीय गुणों का आविर्भाव कर ऐसे चरित्र का रसायन तैयार करता है जिससे मानवता अजर-अमर हो जाती है। महाकवि रङ्गू ने भी पौराणिक इस चरित काव्य में नायक पार्श्वनाथ को आरम्भ से ही तीर्थकर या देवत्व की चहारदीवारी से नहीं घेरा है। अतः इस संवाद में जहाँ पिता-पुत्र के वात्सल्य की संयमित धारा प्रवाहित हो रही है, वहाँ नायक के चरित का वीर्य और पौरुष भी झाँकता हुआ दिखाई पड़ रहा है। अतएव यह संवाद मर्मस्पर्शी एवं रसोत्कर्षक है।⁸⁸

पार्श्वनाथ और तापस का संवाद :

कुशस्थल को शत्रुओं से रिक्त कराकर और अर्ककीर्ति से शत्रु यवननरेन्द्र को पराजित कर जब पार्श्वनाथ कुशस्थल में ही रह जाते हैं, तब एक दिन पार्श्व अपने मामा अर्ककीर्ति के साथ वन में तापस संघ के दर्शनार्थ जाते हैं, और वहाँ एक तापस को पञ्चाग्नि तप करते हुए देखते हैं। कुछ अज्ञानी जनों द्वारा नमस्कृत उस तापस को देखकर सम्यक् ज्ञानी पार्श्व जिन बोले - "जो स्वयं ही संसार के दुःख को नष्ट नहीं कर सकता, उस मिथ्यादृष्टि की भक्ति

87 तिलोत्पण्णती 4/121

88 डॉ. राजाराम जैन : रङ्गू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ. 158

क्यों करते हो?" यह सुनकर कमठ नामक दुष्ट तापस क्रुद्ध हो उठा और बोला -

"हे नरश्रेष्ठ, अप्रिय क्यों बोलते हैं, हमारी क्या अज्ञानता हो गई? बड़े मात्सर्यपूर्वक आप परनिन्दा क्यों कर रहे हैं?"

उक्त तापस कमठ ही था, उसकी बात सुनकर पाश्व ने उझली अज्ञानता को दूर करने के उद्देश्य से पूछा -

"बताओ, तुम्हारा गुरु मरकर कहाँ उत्पन्न हुआ है?"

पाश्व के वचन सुनकर आरक्त नेत्र होकर वह कमठ प्रत्युत्तर में बोला -
 "इस बात को प्रत्यक्ष कौन जान सकता है? तुम ज्ञान में बड़े दक्ष दिखाई दे रहे हो। यदि तुम जानते हो तो इस बात को बताओ।"

यह सुनकर पाश्वनाथ बोले -

"तुम्हारा यह गुरु मरकर वृक्ष की कोटर में दर्पीला सर्प हुआ है। अरे मूर्ख, क्या जलते हुए को नहीं देख रहा है? वृक्ष फाड़कर तू उसे प्रत्यक्ष देख ले।"

उपर्युक्त वचन को सुनकर वह धृष्ट चिल्लाया -

"मेरे जो महान गुरु थे तथा जो तपस्या के कारण क्षीणकाय थे और जो पञ्चाग्नि के ताप-सहन करने में अत्यन्त प्रवीण थे, वे सर्प कैसे हो सकते हैं?"
 ऐसा कहकर उसने तीक्ष्ण कुठार से उस काष्ठ को बीचों बीच से फाड़ दिया और उसमें उसने अर्धदग्ध सर्पयुगल को अपना सिर धुनते हुए देखा।⁸⁹

उपर्युक्त संवाद के माध्यम में रङ्गू ने पाश्व को व्यावहारिक धरातल पर लाते हुए अनुचित क्रिया काण्ड का विरोध करते हुए दिखाया है। शायद रचनाकार का यह आशय रहा हो कि "बुराई को जानते हुए भी विरोध न करना पाप करने के समान ही है।" अस्तु विरोध करके नायक के पुण्यशील व्यक्तित्व को ही लेखक ने उजागर किया है।

अश्वसेन और मंत्री का संवाद :

पाश्व नाग-नागिनी का आकस्मिक मरण देख द्रवीभूत हो वैराग्य को प्राप्त हुए। यह जानकर पिता अश्वसेन जब पुत्र-विरह से दुखी हो, खिन्न चित्त हो

कहने लगे कि - "हाय पुत्र, तेरे बिना मेरे सुखद मनोरथ कौन पूरे करेगा हाय, मेरे हाथों का रत्न कहाँ गिर गया? हाय, उस गुणगरिष्ठ को मैंने क्यों बुद्ध में भेजा? हाय वज्रपाणि, तुमने बड़ा अयुक्त किया। हे अर्ककीर्ति, तुम मेरे पुत्र को वन में क्यों ले गये थे?"

इस प्रकार जब राजा अश्वसेन अति शोक से मोहित हो गया, तब निर्मलमति मन्त्री ने कहा -

"हे देव, पुत्र का शोक छोड़ो क्योंकि वह दुःखों का कारण व रोगोत्पादक है। संयोग का नियम से वियोग होता है, ऐसा जानिए। इस प्रकार समझकर विद्वज्जन शोक छोड़ देते हैं और फिर आपका पुत्र तो त्रिलोक जयी तेईसवाँ तीर्थंकर है, जिसने पवित्र रत्नत्रय को जान लिया, वह विषयों में आसक्त होकर कैसे रह सकता है?"⁹⁰

"जो तीनों लोकों का पितामह है तथा जो सुरखेचरों के लिए अत्यन्त पूज्य है, वह विषय भोगों में आसक्ति क्यों कर सकेगा? जिसने रागपूर्वक मुक्तिवधू का वरण किया है, उसके लिये शोक नहीं करना चाहिए, प्रत्युत उसके गुणों का स्मरण करना चाहिए।"⁹¹

उपर्युक्त संवाद से निम्न तथ्य सामने आते हैं :

- (क) पुत्र का वियोग असह्य होता है।
- (ख) संसार की असारता का जिसे ज्ञान हो जाता है वह वैराग्य धारण करना अपना कर्तव्य समझता है।
- (ग) मोक्षमार्ग पर चलने वालों के लिए शोक नहीं बल्कि उनके गुणों का स्मरण करना चाहिए।

आनन्द और मुनि का संवाद :

यह संवाद राजकुमार आनन्द और एक मुनिराज के बीच हुआ है। संवाद जहाँ दार्शनिक विषय से सम्बन्ध रखता है वहीं रस वृद्धि में सहायक होने के साथ-साथ आगम मान्यता की भी पुष्टि करता है। राजकुमार आनन्द ने मुनिराज से पूछा -

"पाषाण प्रतिमा के अर्चन एवं न्हवन से क्या पुण्य होता है?"

90 पास 4/6

91 वही, घत्ता 56



यह सुनकर मुनिराज ने उत्तर दिया -

“हे राजन्, यद्यपि जिन-प्रतिमा अचेतन है तथापि उसे वेदन शून्य नहीं मानना चाहिए। संसार में निश्चित रूप से परिणाम या भाव ही पुण्य और पाप का कारण होता है। जिस प्रकार वज्रभित्ति पर कन्दुक पटकने पर उसके सम्मुख वह फट जाती है उसी प्रकार सुख-दुखकारक निन्दा एवं स्तुतिपरक वचनों के प्रहार से यद्यपि प्रतिमा भङ्ग नहीं होती तथापि उससे शुभाशुभ कर्म तुरन्त लग जाते हैं। उनमें से धार्मिक कर्मों को स्वर्ग का कारण कहा गया है। यह जानकर शुद्ध भावनापूर्वक जिन भगवान का चिन्तन करो और उनकी प्रतिमा का अहर्निश ध्यान करो।⁹²

उपर्युक्त संवाद के माध्यम से रङ्ग ने मूर्ति-पूजा के औचित्य को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनका यह प्रसंग “भावो हि पुण्याय मतः शुभः पापाय चाशुभः”⁹³ के समान ही है।

महाकवि रङ्ग 15-16वीं सदी के कावे हैं और यह समय धार्मिक उथल-पुथल का समय था, मूर्ति भंजक अपनी मनमानी कर रहे थे, ऐसे समय में यह आवश्यक था कि मूर्ति-पूजा का भरपूर समर्थन किया जाता। मेरी दृष्टि में रङ्ग ने यह प्रसंग इसी समर्थन में जोड़ा होगा।

इस प्रकार रङ्ग ने अनेक संवादों के माध्यम से अपनी बात को सरल-सरस बनाने का प्रयास किया है जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। चरित काव्यों की श्रृंखला में “पासणाहचरित” का इसीलिए महत्व है क्योंकि इसके संवाद प्रासंगिक एवं मनोहारी हैं।

भावाभिव्यञ्जना :

प्रबन्ध काव्य का एक प्रमुख तत्व भावाभिव्यञ्जना होता है। महाकवि रङ्ग ने भी अपने इस चरित काव्य को पौराणिक कथानक पर आधारित होते हुए भी भाव सरिता में अवगाहन कराने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। भावों को अभिव्यञ्जित करने में उनकी यह सफलता या चातुर्य ही माना जाना चाहिए कि चरित्र-चित्रण, घटना-वर्णन, परिस्थिति संयोजन आदि के वर्णन करते समय भी काव्य के भाव तत्व को तमाच्छन्न होने से उन्होंने रोके रखा

92 रङ्ग : पास. 6/18

93 सागारधर्मावृत 2/65

हैं। जैन धर्म में द्रव्य-गुण और पर्याय की प्रधानता के साथ ही दुष्टों का मूल कषाय और वैर को माना है, क्योंकि यह अनन्त संसार का कारण होता है। “पासणाहचरित” में दो शक्तियों का प्रबल द्वन्द्व ही काव्य की आत्मा है, जिसके दो रूप हैं एक हिंसात्मक और दूसरा अहिंसात्मक। दोनों के नायक बने हैं क्रमशः कमठ और मरुभूति। वैर की परम्परा प्राणी को अनेक जन्म जन्मान्तरों तक भ्रमण कराती है और वैर ही कर्मबन्ध में सहायक बनता है। वैर यदि प्राचीन हो तो इसका फल भव-भवान्तरों तक भोगना पड़ता है और हर समय अहिंसा की ही विजय होती है।

महाकवि रङ्गधू ने पार्श्वनाथ के नौ भवों द्वारा अहिंसा और आत्मसाधना का उत्कृष्ट पक्ष प्रस्तुत किया है जिसका उद्देश्य यह भी माना जा सकता है कि रङ्गधू ने जिन धर्म और अन्य धर्म या सम्यक्त्व और मिथ्यात्व तथा सदाचार और दुराचार की समग्र झाँकी प्रस्तुत की है। सदाचरण और दुराचरण का संघर्ष ही प्रस्तुत काव्य का सर्वाधिक उदात्त-तत्त्व है और इसी के समग्र चित्रण करने के लिए कवि ने पार्श्वनाथ के चरित का आश्रय लिया है। भावाभिव्यञ्जना के समावेश की ऐसी पराकाष्ठा इस काव्य में ही देखने को मिलती है जो कि आन्तरिक भावों के प्रस्फुटन और अन्तःसत्य के उद्घाटन में सहायक हुई है।



पञ्चम परिच्छेद

सामाजिक जीवन

परिवार—

परिवार सामाजिक जीवन की रीढ़ है। परिवार में पति और पत्नी के अतिरिक्त माता-पिता, भ्राता-भगिनी, पुत्र-पुत्री आदि रहते हैं।

सामान्यतया परिवार के सदस्यों के पारिवारिक सम्बन्ध अच्छे होते थे। परिवार का स्वामी वयोवृद्ध सदस्य या पिता होता था। पिता की कीर्ति का बहुत ध्यान रखा जाता था। जब पिता अश्वसेन यवन नरेन्द्र से युद्ध करने के लिए जाने लगे तो पुत्र पार्श्व ने उनसे कहा— हे तात! आप ही कहें मुझ जैसे वज्र हृदय वाले पुत्र के घर में रहते हुए आप (युद्ध में) क्यों जा रहे हैं (मैं अकेला ही) कालयवन को रणभूमि से उखाड़ फेंकूंगा और जयश्री को अनुरागपूर्वक अपने हाथों में ग्रहण करूँगा। मुझ जैसे पुत्र के रहते हुए हे राजन्! आपका युद्ध में जाना क्या योग्य है? भाई का भाई के प्रति अनूठे प्रेम का उदाहरण मरुभूति के चरित्र में मिलता है। जब राजा अरविन्द ने नगर के लोगों से यह सुना कि मरुभूति का भाई कमठ अपने भाई की पत्नी से व्यभिचार करता है। तब वह मन में कुपित होता है और मरुभूति से कहता है कि “नगर में इस अनिष्ट कारी, धृष्ट, प्रमत्त, दुष्ट, पापकर्मी एवं निकृष्ट कमठ का होना इष्ट नहीं है। वह तुम्हारे लिए लज्जाकारी एवं कुलाचारसे भ्रष्ट है, उस भ्रष्ट को मैं नगर से निकालता हूँ। राजा की बात सुनकर वाक्पटु, मरुभूति अदीनभाव से बोला “तीनों लोकों में श्रेष्ठ नीति के विचारक हे राजराजेश्वर, भट्टारक, आपने यह क्या कहा है? कमठ कुलाचार का पालक एवं सद्देवों के अर्थ के स्वाध्याय में नित्य प्रवीण है। वह निन्द्य परदारा को कैसे चाह सकता है? वह मेरा अनिन्द्य ज्येष्ठ भाई है, तुम्हें किसी पापी ने झूठ ही कह दिया है। हे नरेन्द्र! वह माननीय नहीं है, (सर्वथा) अयुक्त है।”²

राजा अरविन्द को समझाकर जब मरुभूति सुख से रह रहा था, तभी किसी अन्य दिन जब वह घर में ही था, तब एक व्यक्ति ने उससे कहा—“तुम्हारा भाई

1 पासणाहचरित 3/4

2 वही 6/4

तुम्हारी गृहिणी में अनुरक्त है। मेरा कहा हुआ वह वचन (तुम) अपने हृदय में मानो। यह सुनकर सत्यसन्धायक वह मरुभूति बोला-क्या भाई कमठ ऐसा कर्म कर सकता है? भाई के ऐसे दोष कहकर दुष्टजन बान्धवों के स्नेहभाव में फूट डाल देते हैं।^३

जब राजा ने कमठ को कुकर्म मानकर निकाल दिया तो मरुभूति ने लज्जित होकर ताम्बूल एवं विलेपन छोड़ दिए। दिन रात (वह) अन्यमनस्क रहने (और सोचने) लगा। बान्धव के बिना मन्त्रीपन से क्या ऐसा विचारकर वह राजा के मना करने पर भी भाई से क्षमा याचना करने हेतु गया। पञ्चाग्नि तपस्या से तप्त शरीर वाले भाई को नमस्कार किया और बोला-“तपोलक्ष्मी के धारी हे बन्धुवर, तुम मुझे क्षमा करो, क्षमा करें, मैं तो अविनीत हूँ।” यह कहकर उसके चरणों पर अपना सिर रखकर जब तक वह विनयपूर्वक घोल ही रहा था कि छली कपल ने हित्ता के आघात से मरुभूति को मार डाला।^४ इस प्रकार भ्रातृप्रेम के बदले मरुभूति को अपने प्राण गँवाने पड़े। भाई के प्रति भाई की क्रूरता का उदाहरण कमठ के चरित्र में प्राप्त होता है।

नारी की स्थिति :

‘पासणाहचरिउ’ में सुलक्षणा और कुलक्षणा दोनों प्रकार की नारियों का उल्लेख है। अच्छी नारी पति के मन के पोषण करने में सावधान,^५ प्रेम से निबद्ध देह वाली, शील की आगार स्वरूपा, देवगंगा की गति के समान प्रकटित लीलाओं वाली, परिवार की पोषक, शुद्ध शील युक्त, नररत्नों की उत्पत्ति के लिए मानो खानस्वरूप, गति में हंसिनी के समान, वाणी में कोयल के समान, सौभाग्य एवं रूप सौन्दर्य में चेलना के समान अथवा राम के साथ सीता के समान,^६ सुखों की खानि, मधुरभाषिणी,^७ हाव-भाव एवं विभ्रमों की जलवाहिनी^८ तथा कामदेव के लिए रति के समान अत्यन्त बुद्धि-मती^९ होती हैं।

3 पासणाहचरिउ 6/5

4 वही 6/8

5 वही 1/5

6 वही 1/6

7 वही 6/3

8 वही 6/15

9 वही 7/9



कुलक्षणा स्त्री कुटिल चित्त वाली, चञ्चल यौवन के मद से सर्वत्र मत्त, नरक-पृथ्वी के समान अनेक दुःखों की खानि, कुल को मलिन करने वाली, दुष्ट तथा अपयश की योनि¹⁰ होती है।

पुत्र :

'पासणाहचरिउ' में सुपुत्र एवं कुपुत्र दोनों के लक्षण प्राप्त होते हैं। सुपुत्र प्रसन्न चित्त, लक्ष्मीयुक्त, स्वयंसेवी, अतुलित साहसी, सहस्रों को अकेला जीतने वाला, विज्ञान में कुशल, जिनेन्द्र द्वारा भाषित सूत्रों को जानने वाला, राज्य-कार्य एवं व्यापार कार्य में कुशल, गम्भीर, यशस्वी, बहुगुणज्ञ, प्रभावान्, ऋषि एवं देवभक्त, गृहस्थी का भार धारण करने में धुरन्धर, कपल के समान (सौम्य) मुख, देवोपम, यभी का नित्य श्रेष्ठ उपकार करने वाला, कल को प्रकाशित करने वाला, निखिल विद्या विलास को प्राप्त, जिन सिद्धान्त रूपों अमृत रस में तृप्त,¹¹ पिता के हाथों का रत्न,¹² बुद्ध में बृहस्पति के समान अथवा धन कुबेर, पृथ्वी पर मानों साक्षर होकर ही आया हुआ, पवित्र चित्त वाला, सुन्दर शरीर वाला, मेरु पर्वत के समान निर्मल एवं लोगों द्वारा नमस्कृत,¹³ दिशाओं का श्रृंगार, याचक जनों के मन की निर्भरता को दूर करने वाला, गुणों का सागर तथा चन्द्रमा के समान सौम्य होता है।¹⁴

कुपुत्र अपने अपयश से आच्छादित होता है।¹⁵ वह कलुषित मन वाला, दुर्नयकारी, काले नाग के समान कुटिल चालों वाला, कुत्सित कानों वाला अथवा कुत्सित शास्त्रों का ज्ञाता, परछिद्रान्वेषी तथा अत्यन्त अभिमानी¹⁶ होता है।

भोजनपान :

'पासणाहचरिउ' में प्रिय वास में सुवासित, ताजे लक्ष-लक्ष पक्कात्र स्वर्णनिर्मित स्वच्छ पात्रों से सजाकर रखे जाने का उल्लेख हुआ है।¹⁷ यहाँ निर्मल

10 पासणाहचरिउ 6/3

11 वही 1/6

12 वही 4/5

13 वही 6/2

14 वही 7/9

15 वही 4/8

16 वही 6/2

17 वही 2/13

शालि बीजों की छोटी-छोटी ढेरियाँ लगाने का भी उल्लेख है।¹⁸ मांसाहार की यहाँ निन्दा की गई है। कहा गया है कि जीवों को मारने से बसा, रुधिर, मैदा एवं अस्थिमिश्रित मांस की उत्पत्ति होती है। जो पापी व्यक्ति निदोष तिर्यज्ज्व का वधकर मन में रागपूर्वक उसके मांस का भक्षण करता है, वह मनुष्य के रूप में प्रत्यक्ष यम कहा जाता है। ऐसा जानकर तथा उसकी निकृष्ट स्थिति सुनकर मांसभक्षण को छोड़ देना चाहिए।¹⁹ भोजन दिन में ही करना चाहिए तथा अनछना पानी नहीं पीना चाहिए।²⁰

मद्यपान गर्हित माना गया है। मद्यपान करने वाले नरक में जाते हैं।²¹ मद्यपान की गणना सप्तव्यसनों में की गई है।²² मद्यपान से उन्मत्त व्यक्ति भटकता फिरता है। लज्जा छोड़कर वह नीच कार्य करने लगता है, कोई भी उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। मदिरापायी अनर्गल प्रलाप करता हुआ घूमता है।²³

बीमारी :

रङ्ग ने 'पासणाहचरिउ' में पित्तदाह²⁴ नामक बीमारी का उल्लेख किया है। लोगों का यह बीमारी बालक पार्श्व के प्रभाव से भङ्ग हो गयी।

विद्यार्थे :

'पासणाहचरिउ' में आगमशास्त्र²⁵ तथा वेद²⁶ का उल्लेख हुआ है। आगमशास्त्र से यहाँ तात्पर्य जिनवाणी से है और वेद के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद आते हैं। वेदों में स्वरगान का विशेष महत्व है। तृतीय सन्धि में कहा गया है कि राजकुमार पार्श्व के प्रभाव से अर्ककीर्ति की सेना उसी प्रकार त्रस्त हो गई, जिस प्रकार वेदगान में स्वरभङ्ग होने से कोई ब्राह्मण यति भ्रष्ट हो जाता है।²⁷ विद्याध्ययन करने वाले सुशिष्य का मन चञ्चल

18 पासणाहचरिउ, 2/13

19 वही 5/9

20 वही 5/8

21 वही 3/24

22 वही 5/8

23 वही 5/10

24 वही 2/13

25 वही 1/7

26 वही 6/7

27 वही 3/8

नहीं होना चाहिए। धरणेन्द्र के विषय में कहा गया है कि उसके मुख में लपलपाती हुई जिह्वा समूह कुशिष्य के मन के समान अत्यन्त चञ्चल हो रही थी।²⁸

विद्याध्ययन हेतु विशाल सङ्घ शालाये²⁹ हुआ करती थीं, जहाँ भव्यजन गोष्ठियाँ करते थे।

वाणी में मागधी वाणी की प्रशंसा की गयी है। जिनेन्द्र भगवान की मागधी वाणी सर्वत्र जीवों में प्रेम उत्पन्न करने वाली एवं आशा को पूर्ण करने वाली होती थी।³⁰

शकुन :

ऐसी आकस्मिक घटना को, जिसे भावी शुभाशुभ का द्योतक समझा जाता है, शकुन कहते हैं अथवा भावी शुभ या अशुभ फल की द्योतक किसी घटना, अद्भुत दृश्य या संयोग को शकुन कहते हैं। सूचक संकेत एवं भावी घटना में कार्य कारण नहीं होता। शकुन वस्तुतः ऐसा संकेत है जो कारणान्तर से उत्पन्न होने वाले कार्य की सूचना मात्र देता है, स्वयं उस भावी घटना का कारण नहीं होता है।³¹ बराहमिहिर के अनुसार शकुन जन्मान्तर में कृत कर्म के भावी फल की सूचना देता है।³² 'पासणाहचरित' में वामा देवी के 16 स्वप्न तथा उनके फलों का वर्णन है। ये स्वप्न उसने पश्चिम रात्रि में देखे थे। सर्वप्रथम उसने सुगन्धित कर्णों से युक्त, चन्द्रकिरण के समान स्वच्छ चार धवल दाँतों वाले एवं प्रचण्ड गर्जन करने वाले गजेन्द्र को देखा, फिर ढिङ्कार छोड़ते हुए, विशाल कन्धों वाले तथा सैकड़ों प्रकार के सुख देने वाले वृषभ को देखा। (पुनः) अपने नाखून वाले पंजों को ऊपर उठाए हुए, घुमंची के समान अरुण नेत्र वाले एवं मृगों के प्राणों का हरण करने वाले एक भृगेन्द्र को देखा। (तत्पश्चात्) जगवत्प्रभा लक्ष्मी को अपने समीप देखा तथा भ्रमरों से युक्त श्रेष्ठ पुष्पमाला को देखा। तदनन्तर अमृत को धारण करने वाला परिपूर्ण कलाकर, तिमिर के भार

28 पासणाहचरित 4/11

29 वही 4/15

30 वही 4/16

31 डॉ. रमेशचन्द्र जैन : पद्मचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति अस्य जन्मान्तर कृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम्।

32 यत् तस्य शकुन : पाकं निवेदयति गच्छताम् ॥

बराहमिहिर : बृहत्संहिता, पृ. 500 अध्याय 86/5

का नाशक भास्कर, संरोवर में क्रीड़ा करते हुए मीन युगल तथा आकाश में पल्लवशोभित घट युगल को देखा। और भी, विमल जल से युक्त कमलाकर, जलवर समूहों से चपल रत्नाकर, रत्नमय मिंहासन एवं आता हुआ शक्र विमान देखा। बहुशोभासम्पन्न नागालय, आश्चर्यचकित करने वाला रत्न पुञ्ज, निर्धूम एवं सीधी शिखा वाली अग्नि देखी।३३

पूछने पर राजा अश्वसेन ने उपर्युक्त स्वप्नों का फल इस प्रकार कहा-तुम्हारा पुत्र सन्त होगा, जो भव रूपी भुजङ्ग के विष के लिए गारुड़िक मन्त्र के समान होगा।

1. हाथी के स्वप्नदर्शन का यह फल है कि वह गुरुओं का गुरु एवं ज्ञान का सागर होगा।
2. वृषभ के देखने का फल यह है कि वह अतुलित बल एवं शक्ति का घर होगा।
3. सिंह के दर्शन के फलस्वरूप वह (यौवन) काल में भी शील के भार का निर्वाहक एवं दूसरों के साथ संसार को पार उतारने वाला होगा।
4. लक्ष्मी के दर्शन से वह समवसरण में निवास करेगा।
5. युगल पुष्पमाला के दर्शन से वह श्रेष्ठ यशरूपी प्रकाश से युक्त होगा।
6. चन्द्र दर्शन से वह समस्त कलाओं का स्वामी होगा।
7. भास्करदर्शन से वह लोकालोक को प्रकाशित करेगा।
8. मीन युगल के दर्शन से वह तप-विलास में क्रीड़ा करेगा।
9. घट युगल के दर्शन से वह नवनिधि रूपी लक्ष्मी का निवासस्थल बनेगा।
10. कमलाकर के दर्शन से वह शिव सुख का स्थान होगा।
11. रत्नाकर दर्शन से वह सर्वप्रधान होगा।
12. स्वर्णासन के दर्शन से वह त्रैलोक्य का स्वामी बनेगा।
13. इन्द्र विमान के दर्शन से वह इन्द्र द्वारा सेवित होगा।
14. नागालय के दर्शन के फलस्वरूप (वह ऐसा महान होगा कि) इन्द्र भी उसे प्रणाम करेगा।
15. रत्न पुञ्ज के दर्शन से वह मोक्षलक्ष्मी से रमण करेगा।

16. अग्निशिखा के दर्शन से वह नाथ अत्यन्त घने कर्म रूपी ईंधन को विशेष रूप से जलायेगा³⁴

वर्ण :

गोपाचल नगर का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वहाँ उत्तम चतुर्वर्ण के लोग पुण्य से प्रकाशित दिव्य भोगों को भोगते हुए विचरण करते रहते हैं³⁵ चतुर्वर्ण से तात्पर्य यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण से है।

विभिन्न जातियाँ एवं वर्ग :

‘पासणाहचरित’ में विभिन्न जातियों या वर्गों के नाम आए हैं। ये जातियाँ एवं वर्ग निम्नलिखित हैं :

1. वणिक³⁶ - गोपाचल वर्णन के प्रसङ्ग में कहा गया है कि वहाँ वणिक श्रेष्ठ पदार्थों का व्यापार करते हैं।

ब्राह्मण :

एकत्वानुप्रेक्ष के प्रसङ्ग में कहा गया है कि जीव अकेला ही ब्राह्मण, शूद्र अथवा वणिक बनता है³⁷ पद्मचरित में ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले को ब्राह्मण कहा है³⁸

शूद्र : 39

जो नीच कार्य करते थे तथा शास्त्र से दूर भागते थे, उन्हें शूद्र संज्ञा प्राप्त हुई। शूद्रों के प्रेष्य आदि अनेक भेद थे⁴⁰

चरित⁴¹ - लुटेरे।

कुसुमाल⁴²-चोर।

34 वही 2/4

35 पासणाहचरित 1/3

36 वही 1/3

37 वही 3/17

38 ब्राह्मणों ब्रह्मचर्यतः, पद्मचरित 6/209

39 पास. 3/17

40 शूद्रसुपदसुती भेदो आषिभिर्मिस्तव यशचरित 3/258

41 पास. 1/3

42 वही 1/3



म्लेच्छ (मिच्छ) :

गोपाचल नरेश डूंगर सिंह के विषय में कहा गया है कि वह म्लेच्छ वंश को दहा देने वाला था।⁴³ भारतक्षेत्र की स्थिति के सन्दर्भ में कहा गया है कि सरोवरों एवं गुफाओं को पूर्ण करने वाली गङ्गा एवं सिन्धु नदियों द्वारा भारत क्षेत्र के छह खण्ड किए गए हैं। उनमें से दक्षिण भारत के तीन खण्डों में से मध्य का खण्ड आर्यखण्ड है और शेष पाँच खण्डों में भयानक म्लेच्छों का निवास है। जिन भगवान का धर्म वहाँ नहीं जाना जाता है।⁴⁴

नट :

नट तरह तरह का वेष धारण कर⁴⁵ विचित्र प्रकार की चेष्टायें करते थे।⁴⁶ 'पद्मचरित' में कहा गया है कि संसारी प्राणियों की अनेक जन्म धारण करने के कारण नट के समान विचित्र चेष्टायें होती हैं।⁴⁷ 'पासणाहचरित' में कहा गया है कि समवसण में नट पटु-पटह के शब्द के अनुसार आश्चर्यकारक नृत्य कर रहे थे। वहाँ एक नटशाला भी थी।⁴⁸

पण्डित⁴⁹ :

जिसकी सदसद्विवेकिनी बुद्धि हो वह पण्डित है।

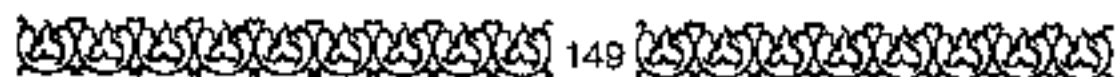
संघपति (संघवी) :⁵⁰

प्रचीनकाल में व्यापार अथवा तीर्थ यात्रादि के लिए संघ बनाकर जाया करते थे। इन संघों का एक मुखिया होता था, जिसे संघपति कहते थे। उसी संघपति का अपभ्रंश रूप संघवी, संग, सिंघई तथा सिंधी आज भी मिलता है।

गोपालक⁵¹ :

गायों की रक्षा करने वाले।

-
- 43 पास, 1/4
 44 वही 5/27
 45 पद्मचरित 12/310
 46 वही 85/92
 47 वही 85/92
 48 पास, 4/15
 49 वही 1/5
 50 वही 1/7
 51 वही 1/9





सूणार⁵² (कसाई) :

'पासणाहचरिउ' में कहा गया है कि जिस प्रकार बकरा अस्थि, वासा, अजश्रृङ्गादि वीभत्स पदार्थों से भयानक सूणार (कसाई) के दर में घी चिखता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है, उसी प्रकार जीव भी मृत्यु को प्राप्त होता है।

शबर⁵³ :

जो जङ्गल में रहते थे और शिकार आदि किया करते थे, उन्हें शबर कहा जाता था। 'पद्मचरित' के 32 वें पर्व में इनका शर्वरी नदी के किनारे रहने का उल्लेख मिलता है।⁵⁴

धीवर :

सरोवर में जाल डालकर जीविकोपार्जन करने वाली जाति। सुरम्य देश के पोदनपुर नगर की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि वहाँ धीवर भी सरोवर में जाल नहीं डालते।⁵⁵

आभूषण :

सोवण्ण चूड (सोने के कड़े) : 'पासणाहचरिउ' में गोपाचल नगर की सोने के कड़े से मण्डित नारियों का कथन है।⁵⁶

णेर (नूपुर) : नूपुर सादे या मणिजटित और मधुर झंकार करने वाले घुंघुरुओं से युक्त होते थे। इन्हें जल्दी से पहनाया-उतारा जा सकता था।⁵⁷ कामादेवी के चरणों में धारण किए हुए नूपुर इस प्रकार शब्द किया करते थे, मानो वे उसके आज्ञापालक किंकर ही हों।⁵⁸

केउर (केयूर) : बाँहों में भुजबन्द (अंगद या केयूर) पहनने की परम्परा स्त्री और पुरुष दोनों में थी। 'पासणाहचरिउ' में इन्द्र द्वारा बालक पार्श्व को माणिक्य केयूर धारण कराने का उल्लेख हुआ है।⁵⁹

52 पास. 3/18

53 वही 6/16

54 पद्मचरित 32/29

55 पास. 6/1

56 वही 1/3

57 शान्तिकुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति पृ. 61

58 पास. 1/10

59 वही 2/14



कंठक (कडथ) : 'पद्मचारेत' से ज्ञात होता है कि कड़े की आभा से किरणें निकला करती थीं, जिनसे हाथों की हथेलियाँ आच्छादित हो जाती थीं⁶⁰ 'पासणाहचरित' में मणिक्य कडय का उल्लेख है।⁶¹

कडिसुत्त⁶² : (कटिसूत्र) कटिबन्धन को कटिसूत्र कहते हैं।

मेखला⁶³ : मणियों की दानेदार करधनी।

हार⁶⁴ : इन्द्र ने शिशु पार्श्व को जो आभूषण पहिनाए, उनमें कण्ठहार भी था। हार प्रायः रत्नों या मणियों से गूथे जाते थे। रामायण में हारों को चन्द्ररश्मियाँ की सी कान्ति वाला बतलाया गया है।⁶⁵

मुकुट (मउड) : 'पासणाहचरित' की द्वितीय सन्धि में रत्नमुकुट का उल्लेख हुआ है।⁶⁶

वस्त्र :

देवदूष्य (देवंग वत्थ) : इन्द्र द्वारा शिशु पार्श्वको देवंग वत्थ (देवदूष्य) धारण कराया गया था।⁶⁷

प्रसाधन : वामादेवी का शचियों द्वारा प्रसाधन उस समय के प्रसाधन के विषय में कुछ प्रकाश डालता है। कोई शची तो वामादेवी का सुन्दर-सुन्दर पदार्थों से उबटन करती थी, कोई-कोई शची क्षीर सागर जाती थी और वहाँ से विशुद्ध जल लाकर उसे स्नान कराती थी। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो वर्षाकाल दुग्ध की वर्षा कर रहा हो। कोई-कोई सुन्दर-सुन्दर निर्मल वस्त्र प्रदान करती थी तो कोई साक्षात् आभरण पहनाती थी। कोई सिर के केशपाशों को द्विरेफ या भ्रमर की आवाज सहित मालती पुष्प की माला से रसाल मस्तक प्रदेश को सँवारती थी कोई-कोई कपोलों पर सुन्दर चित्र लिखती थी तो कोई

60 पद्म 33/131

61 पास. 2/14

62 वही 2/14

63 वही 2/14

64 वही 2/14

65 शान्तिकुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति प. 60

66 पास. 2/14

67 पास. 2/14

(अपने) हाथ से दर्पण दिखाती थी। कोई पार्श्व में स्थित होकर सुन्दर चँवर दुराती थी।⁶⁸

कलायें :

पासणाहचरित में गीत, नृत्य, वादित्र और मूर्तिकला का उल्लेख प्राप्त होता है।

गीतकला : द्वितीय सन्धि में कहा गया है कि कोई शची सुन्दर गीतों से वामादेवी के चित्त को मोहित करती थी।⁶⁹

नृत्यकला : जिनाभिषेक विधि के समय इन्द्र ने सूर्यकान्ति के सम्मान दीप्त स्वर्णभाजन में चित्त को सुख देने वाला, धूमरहित शुद्ध दीपक सजाकर दुन्दुभि के साथ नृत्य किया, मानो वह सहस्र भुजाओं से उन भगवान की पूजा कर रहा हो।⁷⁰

वाद्यकला :

पटह⁷¹ - पार्श्व प्रभु के समवतरण में नटपटु -पटह के शब्द के अनुसार आश्चर्यजनक नृत्य कर रहे थे।⁷² पटह आवनुस की लकड़ी से बनाया जाता था। उसकी लम्बाई 211 हाथ की है। मध्य में घेरे का नाप 60 अङ्गुल है। दायें मुख का व्यास 11 अङ्गुल है। बायें मुख का व्यास 10 अङ्गुल है। दाहिनी ओर लोहे का पट्टा होता है। बायीं ओर लताओं का पट्टा लगाना पड़ता है। उसमें चारअङ्गुल दूर लोहनिर्मित तीसरा पट्टा लगता है। दोनों और मृत बछड़े के चमड़े से मढ़ाया जाता है। बायीं ओर के चमड़े के घेरे में सात छिद्र बनाकर उनमें पतली रस्सी से सोने, चांदी आदि से बनाए हुए चार अङ्गुल लम्बे सात कलशों को ढीला बांधा जाता है। दाहिनी ओर से उन्हें फिर उस चमड़े से बाँध दिया जाता है। इसे कोण नामक साधन या हाथ से बजाते हैं। इसी तरह का पटह कुछ छोटा रहे तो उसे देशी पटल या अड्वावुज कहते हैं।⁷³

68 पासणाहचरित 2/2

69 वही 2/2

70 वही 2/13

71 वही 2/6

72 वही 4/15

73 डॉ. रमेशचन्द्र जैन : पद्मनर्तक में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति, पृ. 155



दुन्दुभि⁷⁴ : जिनाभिषेक के समय देवों द्वारा दुन्दुभि बाजों का बजना जैन साहित्य में प्रसिद्ध है। दुन्दुभि की ध्वनि मधुर और उच्च होती थी। यह एक मुँह वाला चमड़े से मढ़ा हुआ वाद्य है और डण्डे से पीट पीटकर इसका वादन किया जाता है। मङ्गल और विजय के अवसर पर इस वाद्य का विशेष प्रयोग होता था। दुन्दुभि को मधुर और कटु दोनों ही प्रकार के वाद्यों में ग्रहण किया जाता है।
75

कसाल⁷⁶ : घनवाद्यों में कसाल या कांस्यताल का सर्वप्रथम उल्लेख किया जाता है।⁷⁷ इनका जोड़ा होता है। ये छह अङ्गुल व्यास के गोल काँसे के बने हुए बीच में से दो अङ्गुल गहरे होते हैं। मध्य में छेद होता है, जिसमें एक डोरी द्वारा वे जुड़े रहते हैं और दोनों हाथों से पकड़कर बजाए जाते हैं। इसकी ध्वनि बहुत देर तक गूँजती है।

तूर⁷⁸ : तूर्य या तूर प्राचीन वाद्य है। इसकी गणना सुष्ठि वाद्यों में है। वर्णमान में इसे तुरही कहते हैं। तुरही के अनेक रूप हैं। यह दो हाथ से लेकर चार हाथ तक की होती है। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने कहा है कि तूर्य की अपेक्षा तूर कुछ कठोर वाद्य है, यद्यपि दोनों एकार्थक प्रतीत होते हैं।⁷⁹ 'पासणाहचरित' के अनुसार पार्श्वनाथ के वनगमन के पूर्व लाखों तूर बज उठे थे।⁸⁰ इससे स्पष्ट है कि यह एक मृदङ्ग वाद्य है।

क्रीडायें :

'पासणाहचरित' में गेंद, गम्मत,⁸¹ हिन्दोला,⁸² द्यूतक्रीड़ा तथा शिकार का वर्णन है। द्यूतक्रीड़ा तथा शिकार की यहाँ निन्दा की गई है। तृतीय सन्धि में कहा गया है कि धन एवं सुख इन्द्रधनुष के समान अस्थिर हैं। वे जुए के धन के

74 पासणाहचरित 2/12, 4/1

75 डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत पृ. 318

76 पासणाहचरित 2/12

77 संगीतराज 3/3/4/6 16

78 पासणाहचरित 4/1

79 आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ. 320

80 पास. 4/1

81 झिंदुव-गेंदो-पमुहाई लील, वही 2/15

82 वही 2/15

समान क्षणभर में दूसरे के हो जाते हैं।⁸³ पञ्चम सन्धि में कहा गया है कि भृष्ट, पापिष्ठ एवं दर्पिष्ठ द्यूतान्ध मनुष्य जन्म भर भी विशिष्ट कर्मों का अनुमरण नहीं करता। वह गुणहीन जुआरी व्यक्ति घर का द्रव्य चुराकर ले जाता है और उस सबका हारकर भयवस्त होकर भटकता रहता है। पत्नी, पुत्र और बहिन उसका विश्वास नहीं करती, सभी लोग उसे देखकर उसका उपहास करते हैं। उसके लिए न घर होता है और न गृहिणी, न भूख, न प्यास और न निद्रा और वह लोगों के घरों में छिद्र दूँढ़ता रहता है।⁸⁴

शिकार खेलना (पारार्द्ध) भी अनर्थी एवं दुःख का कारण है। अतः निर्दोष प्राणियों को नहीं मारना चाहिए। बेचारे शूकर, साँभर एवं हिरण अपने शरीर की रक्षा करते हुए वन में घूमते रहते हैं। दौंतों के अग्रभाग में तृण दबाए एवं भय से काँपते-कुड़के-कुर्वते, कटी-खरंखर खूं-खूंकाओं में रहते हैं। जो पापी उन्हें पकड़कर सन्ताप देता है, वह अनन्त दुःखों को प्राप्त करता है। जो कुत्तों के उच्छ्रास का भक्षण करता है, नरक में गिरते हुए उसे कौन बचा सकता है? जो जीव दुर्लभ गुण को जानता है, सो प्रिय एवं हितकारी रत्नत्रय का ध्यान करता है। जो अपने शरीर की वेदना को जानता है, वह अन्य के प्राणों का विध्वंस नहीं करता।

सदर्बाद्ध धाना व्यक्ति तिर्यज्चों को भी अपने बच्चों के समान मानता है, उनकी रक्षा करता है और वध नहीं करता। वह व्यक्ति कहीं भय नहीं देखता। पृथ्वी एवं स्वर्गभवनों में वह देवियों का भोग करता हुआ ज्ञान का धारी बनता है।⁸⁵

आर्थिक जीवन :

'पासणाहचरित' में समुन्नत आर्थिक जीवन की झाँकी प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ गोपाचल में पाण्डुर एवं भुवर्ण वर्ण वाली अनेक पताकाओं से युक्त जिन मन्दिर, तारण तथा अट्टालिकाओं से सुशोभित हर्म्य, चारों ओर बाजार, चौक, दुकानों में विविध प्रकार की सामग्रियाँ, कसौटियों पर भौम्यखण्ड, स्वर्ण रेखा नदी एवं सप्तव्यसनों से गंहित लोगों का सद्भाव था। उसमें श्री मान् और

83 पासणाहचरित, 3/14

84 वही 5/9

85 वही 5/11


 श्रीमान् दोनों रहते थे। सुख, समृद्धि एवं यश के लिए वह रत्नाकर के समान आकर था, बुध जनों के समूह के लिए वह इन्द्रपुरी था तथा जनमन को आकर्षित करने वाले सर्वश्रेष्ठ नगरों का वह गुरु था।⁸⁶ उसका राजा डोंगरेन्द्र कुबेर के समान प्रचुर धन का धनी था।⁸⁷ काशी देश के वर्णन के प्रसङ्ग में कहा गया है कि वह लक्ष्मी के घर के समान था। वहाँ शुभ्र वर्ण वाले गोसमूह धान्यकण चरा करते थे।⁸⁸ सुरम्य देश में विपुल आराम वाले ग्राम बसे थे। वहाँ नृपथ ढिक्काते हुए भ्रमते थे और गायों के साथ धान्य चरते थे। वहाँ घना दूध देने वाली भैंसें भी थीं, फल और फूलों से युक्त उद्यान थे, पुंड़ के खेत रस कं बहाते थे, उपवन फलों से झुके थे तथा अतिशीतल जल से पूरित सरिता औ सरोवर व्रतों को पालने वाले शान्त प्रकृति वाले व्यक्तियों के समान थे।⁸⁹

सर्वाङ्गानां च शरीरानां च सुविहितानां च महामयः

86 भासणाचरि. 3 1/3

87 वहाँ 1/4

88 वहाँ 1/9

89 वहाँ 6/1

पासणाहचरिउ में वर्णित राजनैतिक व्यवस्था

साहित्य समाज का दर्पण होता है। किसी भी समय के समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जानकारी का स्रोत तत्कालीन साहित्य ही होता है। मनुष्य ने अपने आरम्भिक समय से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में राजसत्तात्मक शासन को ही अपनाया है। चाहे वह भारतीय लोकतंत्र हो या अमेरिका की अध्यक्षतात्मक प्रणाली। फ्रांसीसी विचारक बोसे के अनुसार- "राजतंत्र प्राचीनतम, सबसे अधिक प्रचलित, सर्वोत्तम तथा सबसे अधिक स्वाभाविक शासन का प्रकार है।"¹ महाकवि रघु ने अपनी कृति "पासणाहचरिउ" में भगवान् पार्श्वनाथ के पौराणिक कथानक के वर्णन को ही मुख्य लक्ष्य रखा है, फिर भी प्रसंगवश उसमें तत्कालीन राजतंत्र और शासन व्यवस्था का विवेचन भी आ गया है जिसमें तत्कालीन राजनीति का एक लघु एवं महत्वपूर्ण चित्र उपस्थित होता है। संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है-

राजा (नृप) :

राजा (राजन) शब्द का शाब्दिक अर्थ शासक होता है। लेटिन में राजा के लिए रेक्स (Rex) शब्द का प्रयोग हुआ है, जो इसी अर्थ का द्योतक है किन्तु भारतीय परम्परा में राजा की एक विशिष्ट व्याख्या की गई है। हरिवंश पुराण में राजा की स्पष्ट और सर्वाङ्गीण परिभाषा इस प्रकार की गई है "उसे (राजा को) मनुष्यों की रक्षा करने के कारण नृप, पृथ्वी की रक्षा करने के कारण भूप और प्रजा को अनुरज्जित करने के कारण राजा कहते हैं।"² महाभारत में युधिष्ठिर द्वारा राजा शब्द की व्याख्या करने का निवेदन किए जाने पर भीष्म उनके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि "समस्त प्रजा को प्रसन्न करने के कारण उसे राजा कहते हैं।"³ महाकवि कालिदास ने रघुवंश में रघु का वर्णन

1 राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, लेखक-पुखराज जैन, पृ. 261

2 नृपस्तवं रक्षणानृणां भूपो रक्षणतो भुवः ।
त्वमेव जगतो राजा, राजन् प्रकृतिरञ्जनात् ॥

3 महाभारत, शान्तिपर्व 59/125

हरिवंश पुराण 19/16

करते हुए कहा है कि-रघु ने प्रजा का रंजन करके अपना राजा नाम सार्थक किया।⁴ इससे शासक को राजा कहने का प्रयोजन स्पष्ट होता है। अतः “राजा” शब्द की निष्पत्ति “राज+कनिन्” की अपेक्षा “रज्ज्+कनिन्” भारतीय परिवेश में अधिक सटीक है। बौद्धों के पालि साहित्य में भी राजा की यही सैद्धान्तिक व्याख्या उल्लेख्य होती है।⁵ द्वाजीयसिंह के अनुसार राजा द्वारा समस्त पृथ्वी एक नगर के समान रक्षित होने पर राजन्वती (श्रेष्ठ राजा वाली) और रत्नसू (रत्नों की खान) हो जाती है।⁶ राजा जन्म को छोड़कर सब बातों में प्रजा का माता-पिता है, उसके सुख और दुःख प्रजा के आधीन हैं।⁷ राजा दण्डयोग्य व्यक्तियों को दण्डविधान और अदण्डयोग्य व्यक्तियों को सम्मानपूर्वक प्रजाओं को भलीप्रकार शत्रुओं के हाथ से रक्षा करके पालन करता है तो प्रजागण भी धन-धान्यादि के द्वारा राजा की सम्पत्ति को बढ़ाता है। बढ़ाना और रक्षा करना, इनमें रक्षा करना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि शत्रुओं के हाथ से प्रजा की रक्षा न करने से राजा का मंगल नहीं होता।⁸ आचार्य सोमदेव के अनुसार जो धर्मात्मा, कुलाचार व कुलीनता के कारण विशुद्ध प्रतापी, नैतिक दुष्टों से कुपित व शिष्टों से अनुरक्त होने में स्वतंत्र और आत्मगौरवयुक्त तथा सम्पत्तिशाली हो, उसे स्वामी (राजा) कहते हैं।⁹

‘पासणाहचरित’ के अध्ययन से पता चलता है कि राजा अश्वसेन ऐसा ही राजा था, जो अपनी प्रजा का सदैव ध्यान रखता था, जो अपने कुलरूपी कमलों के लिए दिनकर के समान तथा लावण्य और गम्भीरता में परिपूर्ण आवर्त (शारीरिक चेष्टा विशेष) से मण्डित शरीर वाला था, जिसने रणक्षेत्र में पराक्रमी शत्रुजनों का विग्रह किया था और जो ऐसा था, मानो पृथ्वी पर धर्म ही अवतीर्ण हो गया हो अथवा जय लक्ष्मी ने मानो नवीन वस्त्र ही धारण कर लिया हो।¹⁰

4 तथैव सोऽधुदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥ रघुवंश 4/12

5 “धम्मेन परे रंजतीति खो वासेदृठ राजा, राजा त्वेव ततियं अक्खरं” उपनिब्वत्तं ॥ दीघनिकाय (पालि) पथकवग्ग अग्गञ्जसुत्त 3/21. पृ. 73

6 छत्रचूड़ामणि 11/9

7 बही 11/4

8 प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम् ।

वर्द्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तदभावे सदप्यसत् ॥ कामन्दकोयनीतिसार 1/12

9 नीतिवाक्यामृत 17/1 3

10 रघुश्रु : पासणाहचरित 1/10

राजा अरविन्द भी गुणों का सागर एवं सूर्य समान तेजस्वी, शत्रुसमूह को सन्त्रस्त करने वाला था।¹¹ जिसके भय से शत्रुजन जंगलों में निवास करते थे, जिसने सेवक जनों की आशाओं को पूर्ण किया था, जिसके यश ने आठों दिशामुखों को घबलित किया था, जो जय श्री का निवास था, अत्यन्त प्रचुर कोश का स्वामी था और जिसने अपराधियों को दण्ड से खण्डित कर दिया था।¹²

जैन आगमों में सापेक्ष और निरपेक्ष दो तरह के राजाओं का उल्लेख हुआ है। सापेक्ष राजा अपने जीवनकाल में ही पुत्र को राज्यभार सौंप देते थे, जिससे राज्य में गृहयुद्ध की सम्भावना न रहे। निरपेक्ष राजा अपने जीवित रहते किसी को भी राज्य का उत्तराधिकारी नहीं बनाते थे।¹³

‘पासणाहचरिट’ में प्रधान तथार के सापेक्ष राजाओं का ही वर्णन किया गया है। राजा अरविन्द ने दिगम्बरी दीक्षा (तपोभार) धारण करने से पूर्व ही राज्य का भार अपने पुत्र को सौंप दिया था।¹⁴

राजा के गुण :

‘पासणाहचरिट’ के अनुसार राजा को गुणवान् अन्याय और न्याय के शासन में प्रवीण, पंचांगमंत्र के नीतिशास्त्र में प्रवीण, शत्रुराजाओं को सन्त्रस्त करने वाला, शूरवीर, अद्वितीय सौन्दर्य से युक्त, विशाल शरीर एवं अतुलित बलशाली, सप्ताङ्ग राज्य के भारवहन करने में समर्थ, दानवीर, साहसी, छत्तीस प्रकार के शस्त्रास्त्र चलाने में निपुण, कुबेर के समान प्रचुर कोश का धनी, यशस्वी¹⁵, समुद्र के समान गम्भीर¹⁶, प्रजापाल, परिजनों का स्नेह पूर्वक पालन पोषण करने वाला¹⁷ होना चाहिए।

‘पासणाहचरिट’ में वर्णित राजा इन्हीं गुणों से युक्त हैं।

11 पास. 6/6

12 वही 6/2

13 निशोधसूत्र, सूत्र 71, गाथा 3363 की चुर्णी, पृ. 198

14 रङ्गधू : पास. 6/10

15 रङ्गधू : पास. 1/4

16 वही 1/10

17 वही 3/1

राजा का उत्तराधिकारी :

राजा का उत्तराधिकारी वंशानुगत ही होता था। प्रायः राजा के पुत्र को ही राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जाता था। आदिपुराण से ज्ञात होता है कि यद्यपि सामान्यतः ज्येष्ठ पुत्र राज्य का अधिकारी होता था। किन्तु मनुष्यों के अनुराग और उत्साह को देखकर राजा छोटे पुत्र को भी राजपट्ट बौध देता था।¹⁸ यदि पुत्र बहुत छोटा हो तो राजा उसे राज सिंहासन पर बैठाकर राज्य की सब व्यवस्था सुयोग्य मंत्रियों के हाथ सौंप देता था।¹⁹ राज्य का अधिकारी बनाते समय योग्यता को प्रमुखता दी जाती थी, ऐसा 'वराहगचरित'²⁰ से पता चलता है। 'पासणाहचरित' में भी राजा शक्रवर्मा²¹ और राजा अरविन्द²² आदि राजाओं के उत्तराधिकारी उन्हीं के पुत्र ही हुए हैं, ऐसा उल्लिखित है। प्रायः राजा वृद्धावस्था या संन्यास से पूर्व अपने पुत्र को ही राज्य भार सौंप दिया करते थे।

राज्य के अङ्ग :

महाकवि रङ्घू ने 'पासणाहचरित' में राजा झूँगर सिंह को "सप्ताङ्ग राज्य" के भारवहन करने लिए अपने कन्धे समर्पित करने वाला कहा है।²³ इससे राज्य के सात अङ्ग होने की पुष्टि होती है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में स्वामी (राजा), अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड (सेना) और मित्र, ये सात राज्य के अङ्ग कहे गये हैं।²⁴ महाभारत के शान्ति पर्व में राज्य के सप्ताङ्ग स्वरूप को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है- आत्मा, अमात्य, कोश, दण्ड, मित्र, जनपद और पुर; ये सात राज्य के अङ्ग हैं।²⁵ इसमें राजा को राज्य की आत्मा मानते हुए राजा के लिए आत्मा शब्द का प्रयोग किया गया है। मनुस्मृति²⁶ विष्णुधर्मसूत्र²⁷, शक्रनीतिसार²⁸ आदि में भी राज्य के सात अंग ही माने गये हैं।

18 आदिपुराण 5/207

19 वही 8/254

20 वराहगचरित 2/16

21 रङ्घू : पास. 3/1

22 वही 6/10

23 वही 1/4

24 कौटिल्य अर्थशास्त्र 8/1

25 महाभारत, शान्तिपर्व 59/64-65

26 मनुस्मृति 9/294

27 विष्णु धर्मसूत्र 3/23

28 शक्रनीतिसार 1/61

‘कामन्दकीय नीतिसार’ में कहा गया है कि राज्य के सात अंगों में से एक अंग के भी विकल होने से राज्य में गड़बड़ होती है, इस कारण राजा को परीक्षापूर्वक इसकी सम्पूर्णता रखनी चाहिए²⁹

मन्त्री :

राजतंत्र में राज्यकार्य के सफल संचालन के लिए राजा मन्त्रियों की नियुक्ति किया करते थे। मंत्री भी वंशानुगत ही होते थे किन्तु दुराचारी मंत्रीपुत्र को मंत्री नहीं बनाया जाता था। शुक्रनीति में कहा गया है कि राजा चाहे समस्त विद्याओं में कितना ही दक्ष क्यों न हों फिर भी उसे बिना मन्त्रियों की सहायता के राज्य के किसी भी विषय पर विचार नहीं करना चाहिए³⁰ रङ्ग ने राज्य परिषद् के व्यक्तियों का निरूपण करते हुए “पञ्चाङ्ग मन्त्र”³¹ का उल्लेख किया है। ‘कौटिल्य अर्थशास्त्र’ के अनुसार कार्यारम्भ करने का उपाय, पुरुष तथा द्रव्य सम्पत्ति, देश-काल का विभाग, विघ्न प्रतीकार एवं कार्यसिद्धि; ये पाँच “पञ्चाङ्गमन्त्र” कहे जाते हैं³²

पञ्चाङ्ग मन्त्र का विवेचन :

1. कार्य आरम्भ करने का उपाय :

अपने राष्ट्र को शत्रुओं से सुरक्षित रखने के लिए उसमें छाई, परकोटा और दुर्ग आदि के निर्माण करने के साधनों पर विचार करना और दूसरे देश में शत्रुभूत राजा के यहाँ सन्धि व विग्रह आदि के उद्देश्य से गुप्तचर व दूत भेजना आदि कार्यों के साधनों पर विचार करना मन्त्र का प्रथम अङ्ग है।

2. पुरुष तथा द्रव्य सम्पत्ति :

“यह पुरुष अमुक कार्य करने में निपुण है”, यह जानकर उस कार्य में निपुण करना तथा द्रव्य सम्पत्ति-इतने धन से अमुक कार्य सिद्ध होगा। यह क्रमशः पुरुष सम्पत् तथा द्रव्यसम्पत् नाम का दूसरा मन्त्र का अङ्ग है।

29 कामन्दकीयनीतिसार 4/2

30 सर्वविद्यासु कुशलो नृपो हापि सुमन्त्रवित् ।
मन्त्रिभिस्तु बिना मन्त्रं नेकोऽर्थं चिन्तयेत् क्वचित् ॥ शुक्रनीति 2/2

31 पास. 1/4

32 कर्मणायारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसम्पद् देश-काल विभागः ।

विनिपात प्रतीकारः कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गमन्त्रः ॥

कौटिल्य अर्थशास्त्र 1/10/14



3. देश और काल :

अमुक कार्य करने में अमुक देश या अमुक काल अनुकूल एवं अमुक देश और काल प्रतिकूल है, इसका विचार करना मंत्र का तीसरा अंग है।

4. विघ्न प्रतीकार :

आयी हुई विपत्ति के विनाश का उपाय चिन्तन करना। जैसे-अपने दुर्ग आदि पर आने वाले अथवा आए हुए विघ्नों का प्रतीकार करना, यह मंत्र का विघ्न प्रतीकार नाम का चौथा अङ्ग है।

5. कार्य सिद्धि :

उन्नति, अवनति और समवस्था; यह तीन प्रकार की कार्य सिद्धि है। जिन सामादि उपायों से विजिगीषु (जीतने का इच्छुक) राजा अपनी उन्नति, शत्रु की अवनति या दोनों की समवस्था प्राप्त हो, यह कार्य सिद्धि नाम का पाँचवाँ अङ्ग है।³³

देखा जाए तो मंत्री वही सफल हो सकता है जो राज्य के अभ्युदय एवं सुरक्षा के हेतु समयोचित परामर्श (मन्त्रणा) देने की क्षमता रखता है।

मंत्री के गुण :

महाकवि रङ्घू ने पासणाहचरित में मंत्री के गुणों पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए कहा है कि मंत्री को विविध प्रकार के शास्त्र एवं अर्थों का रत्नाकर (ज्ञाता), कलाकार के समान विविध कलाओं से परिपूर्ण, मति से विशाल, कुल एवं जाति में विशुद्ध, दूसरों के हृदयों के विकारों को जानने वाला, सुप्रसिद्ध, अपने स्वामी के कार्यारम्भ में सम्मान प्राप्त, अपने कुल रूपी कमलों के लिए दिवाकर के समान³⁴ और षट्कर्मों में अनुरक्त³⁵ आदि गुणों से युक्त होना चाहिए।

सोमदेव के अनुसार राजा का प्रधानमंत्री द्विज, स्वदेशवासी, सदाचारी कुलीन, व्यसनों से रहित, स्वामिभक्त, नीतिज्ञ, युद्ध-विद्या विशारद और निष्कपट होना चाहिए।³⁶ 'महाभारत' के अनुसार जो काम, क्रोध, लोभ और

33 द्र. डॉ. एम. एल. शर्मा : नीतिवाक्यामृत में राजनीति, पृ. 97

34 पास. 3/1

35 वही 6/2

36 सोमदेव : नीतिवाक्यामृत 10/5

भय आदि विकारों से ग्रसित होने पर भी धर्म का त्याग न करे, ऐसे मंत्री होना चाहिए।³⁷ कायर और मूर्ख पुरुष को मंत्री पद के अयोग्य मानते हुए सोमदेव ने लिखा है कि—“जिस प्रकार बछड़े को भारी बोझा ढोने के कार्य में लगाने से कोई लाभ नहीं, उसी प्रकार कायर पुरुष को युद्ध के लिए एवं मूर्ख को शास्त्रार्थ के लिए प्रेरित करने से कोई लाभ नहीं हो सकता।³⁸

राजा और मंत्री के बीच सम्बन्ध :

राजा और मंत्री किसी भी राज्य को चलाने में रथ के दो पहियों की तरह कार्य करते हैं। दोनों में सन्तुलन और सामञ्जस्य होना अत्यन्त आवश्यक होता है। राजगण प्रत्येक कार्य की सम्पन्नता से पूर्व मन्त्रियों से मन्त्रणा किया करते थे। “पासणाहचरित” में उल्लेख मिलता है कि जब राजा अरविन्द को कमठ के व्यभिचार का पता लगता है तो वे अपने मंत्री मरुभूति से इस बात की सत्यता के विषय में विचार-विमर्श करते हैं,³⁹ और जब मरुभूति है नरेन्द्र! वह माननीय नहीं है, अयुक्त है; ऐसा कहकर प्रतिकार करता है तो राजा भी उसका उल्लघन नहीं करता।⁴⁰ इससे सिद्ध होता है कि राजा मंत्री की बात पर विश्वास करते थे।

शोक के समय राजा को मंत्री ही सान्त्वना एवं धर्मोपदेश देकर उनके शोक को दूर करते थे। अर्ककीर्ति के मंत्री ने शक्रवर्मा की मृत्यु से उद्विग्न शोक के क्षणों में इसी प्रकार उपदेश द्वारा सान्त्वना दी थी।⁴¹

सैन्य व्यवस्था :

देश की सुरक्षा और शत्रु का मान मर्दन करने के लिए प्रत्येक राज्य में सैन्य व्यवस्था की जाती थी। सेना का प्रमुख सेनानायक या सेनापति कहलाता था। राजकार्य को चलाने के लिए दण्ड (सेना) को एक प्रमुख अंग माना गया है। कौटिल्य ने सैन्यबल पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि—राजा पर बाह्य एवं आन्तरिक दो प्रकार के कोप आते हैं। अमात्यादि का कोप आन्तरिक कोप कहलाता है तथा बाह्य कोप शत्रु के आक्रमण से उत्पन्न कोप होता है। इन दोनों कोपों में आन्तरिक कोप अधिक कष्टदायक होता है। इन दोनों कोपों से

37 महाभारत : शान्ति पर्व 83/26

38 सोमदेव : नीतिवाक्यामृत 10/21

39 पास. 6/3

40 वही 6/4

41 वही 6/3

अपनी रक्षा करने के हेतु राजा को दण्ड और कोष को अपने अधीन रखना चाहिए।⁴²

दण्ड (सेना) की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में कहा गया है कि-दण्डनीति अप्राप्त वस्तुको प्राप्त करा देती है, जो प्राप्त हो चुका हो उसकी रक्षा करती है, यह रक्षित वस्तु को बढ़ाती है और बढ़ी हुई वस्तु का उपयुक्त पात्र में उपयोग करती है। लोक यात्रा (सामाजिक व्यवहार) इस दण्ड नीति पर निर्भर है, अतः एव जो राजा लोकयात्रा का निर्माण करने में तत्पर हो, उसे चाहिए कि सदा दण्डनीति का उपयोग करने को उद्यत रहे।⁴³

सेना की परिभाषा :

जो शत्रुओं का निवारण करके धन, दान व मधुर भाषणों द्वारा अपने स्वामी को सभी अवस्थाओं में शक्ति प्रदान करती है, उसका कल्याण करती है, उसे सेना करते हैं।⁴⁴

सेना के भेद :

समस्त प्राचीन ग्रन्थकर्त्ता आचार्यों ने सेना के चार अंग माने हैं और उसे चतुरङ्ग बल के नाम से सम्बोधित किया है।⁴⁵ "पासणाहचरित" में काल्यवन नरेन्द्र और राजा अर्वकीर्ति के युद्ध के समय चार प्रकार की सेना का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है।

1. हस्ति सेना⁴⁶
2. अश्व सेना⁴⁷
3. रथ सेना⁴⁸
4. पदाति सेना⁴⁹

42 कौटिल्य अर्थशास्त्र 8/2

43 आलब्धलाभार्था लब्धापरिरक्षणी रक्षितविवर्धनो वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च ।
तस्याभायता लोकयात्रा तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदष्टः स्यात् ॥
कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 1/4

44 द्रविणदानप्रियभाषणाभ्यामराति निवारणेन यदि हितं स्वामिर्न सर्वावस्थासु चलते संवर्णोतीति बलम्-नीतिवाक्यामृत 22/1

45 पद्मचरित 27/47, वराहचरित 2/58-59 द्विवसन्यानपहकव्य 16/8

46 पास. 3/6

47 वही 3/6

48 वही 3/6

49 वही 3/7



हस्ति सेना :

चतुरंग बल में हस्ति सेना को प्रमुखता दी गई है।⁵⁰ 'पासणाहचरित' में हस्ति सेना का वर्णन इस प्रकार मिलता है- मदोन्मत्त हाथियों पर सवार होकर योद्धागण चल पड़े। उत्तम स्वर्ण से सुशोभित उन योद्धाओं ने कुछ भी न देखा, अरिजनों को मृत्यु का मार्ग दिखाते हुए तथा उनका सम्पर्दन करते हुए हाथियों के समूह चल पड़े, जिससे सुमेरुपर्वत पर क्षोभ आ गया।⁵¹

'कौटिल्य अर्थशास्त्र' के अनुसार अपनी सेना के आगे चलना, नये मार्ग, निवास स्थान तथा घाट निर्माण के कार्य में सहायता देना, बाहु की तरह आगे बढ़कर शत्रु सेना को खदेड़ना, नदी आदि के जल का पता लगाने, पार करने या उतारने, विषम स्थान (तुणों तथा झाड़ियों से ढँके स्थान और शत्रु सेना के जमघट के संकटमय शिविर) में घुसना, शत्रु शिविर में आग लगाना और अपने शिविर में लगी आग बुझाना केवल हस्ति सेना से ही विजय प्राप्त करना, छितराई हुई अपनी सेना का एकत्रीकरण, संघबद्ध शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न करना, अपने को विपत्ति से बचाना, शत्रुसेना का मर्दन, भीषण आकार दिखाकर शत्रु के हृदय में भय संचार करना, अपनी सेना का महत्त्व प्रदर्शित करने के लिए शत्रुसेना को पकड़ना, अपनी सेना को शत्रु के हाथ से छुड़ाना, शत्रु के प्राकार, गोपुर, अट्टालक आदि का भंजन और शत्रु के कोश तथा वाहन का अपहरण; ये सब काम हस्ति सेना से ही सम्पन्न होते हैं।⁵²

अश्व सेना :

अश्वसेना अपनी वेगशीलता के लिए प्रख्यात रही है। आचार्य सोमदेव के अनुसार अश्व सेना चतुर्ङ्ग सेना का चलता-फिरता भेद है, क्योंकि अश्व चपलता एवं वेग से गमन करने वाले होते हैं।⁵³ 'पासणाहचरित' में उत्तम घोड़ों पर सवार, हाथ में कृपाण और तलवार लिए स्वर्ण कवच पहने हुए,⁵⁴ योद्धाओं का उल्लेख मिलता है, जो अश्वसेना का परिचायक है। अश्वसेना के प्रभाव को दर्शाते हुए कवि रङ्घु कहते हैं कि उत्तम घोड़ों के गमन करने के कारण (उनके

50 नीतिवाक्यामृत 22/2

51 पास. 3/6

52 कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् 10/4

53 नीतिवाक्यामृत 22/7

54 पास. 3/6

पैरों के खुर पृथ्वी को भग्न करने लगे,⁵⁵ प्रचण्ड घोड़ों के द्वारा गजयूथ खण्डित कर दिए गए।⁵⁶ घोड़ों की चञ्चलता सागर के समान थी।⁵⁷ घोड़ों पर जीने कसे जाने का भी उल्लेख मिलता है।

आचार्य सोमदेव ने अश्वसेना की प्रशंसा करते हुए कहा है कि- जिस राजा के अश्वसेना प्रधानता से विद्यमान है, उस पर युद्धरूपी गेंद से क्रीड़ा करने वाली लक्ष्मी प्रसन्न होती है और दूरवर्ती शत्रु भी निकटवर्ती हो जाते हैं। इसके द्वारा वह आपत्ति में समस्त मनोरथ प्राप्त करता है। शत्रुओं के सामने जाना, वहाँ से भाग जाना, उन पर आक्रमण करना, शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न कर देना; ये कार्य अश्वसेना द्वारा सिद्ध होते हैं।⁵⁸ अश्वों में जात्यश्व को प्रधानता दी गई है और उसे विजय का कारण माना है।⁵⁹

‘कौटिल्य अर्थशास्त्र’ से ज्ञात होता है कि अश्वपालन को प्रमुखता दी जाती थी। कौटिल्य के ही अनुसार अश्वपालन विभाग के प्रमुख अधिकारी को अश्वाध्यक्ष कहा जाता था।⁶⁰

रथ सेना :

यह चतुरङ्ग सेना का तृतीय उपयोगी अंग था। ‘पासणाहचरित’ में रथ सेना का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। राजकुमार पार्श्व कालयवन से हुए युद्ध में राजा रवि कीर्ति की सहायता करने के लिए “देव घोष” नामक रथ पर सवार होकर गए थे।⁶¹ जिस रथ पर राजा, युद्ध आदि करने जाते थे, वे रथ उत्तम धवलवर्ण के छत्र एवं ध्वजाओं से सुशोभित होते थे।⁶² मेरी दृष्टि में छत्र, ऐश्वर्य और ध्वजा स्वतंत्र देश के सूचक होते होंगे। रथ पर आरूढ़ बौद्धा धनुष-बाण से लड़ते थे।⁶³ ‘वराहचरित’ के इस कथन से भी इसी बात की पुष्टि होती है - रथों पर

55 पास. 3/6-3

56 वही 3/7-3

57 वही 3/7-6

58 नीतिवाक्यामृत 22/8

59 वही 22/9

60 कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 2/30

61 पास. 3/6-7

62 वही 3/7/7-8

63 वही, पृ. 32

सवार योद्धाओं के सिर पर मुकुट बँधा रहता था। वे अपने शरीर को कवच द्वारा सुरक्षित रखने का यत्न करते थे तथा उनका प्रमुख अस्त्र धनुष-बाण होता था।⁶⁴

पदाति सेना⁶⁵ :

हस्ति, अश्व तथा रथमय सेना के आगे पदाति सेना चलती थी।⁶⁶ "पासणाहचरित" में पदाति सेना की अत्यन्त वीरता का वर्णन किया गया है- प्रचुर धूलि से धूसरित शरीर वाले वे धीरे पुरुष मार्ग में ऐसे जा रहे थे, मानो पर्वत ही हों।⁶⁷ सैनिकों के द्वारा खींची गई तीक्ष्ण तलवारें साक्षात् यमराज की जीभ के समान प्रतीत होती थीं।⁶⁸ समर्थ पदातिगण आह्वान करते थे और दोनों ओर की सेनाओं के योद्धागण थककर मरते थे।⁶⁹ दौड़ते हुए किसी को छाती में बीध दिया गया, मानो स्वामी के दान का फल ही सफल हो गया हो, शक्ति नामक अस्त्र के प्रहार से कोई-कोई भट्ट ऐसा काट दिया गया, मानो भग्न शरीर से ही अपना जीवन धारण कर रहा हो।⁷⁰

अस्त्र-शस्त्र :

युद्ध के अवसर पर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। 'पासणाहचरित' में कविवर रश्मू ने प्रसंगवश निम्नलिखित अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख किया है-

करवाल,⁷¹ खग,⁷² असि⁷³ (तलवार), छुरिय⁷⁴ (छुरी), फरिस⁷⁵ (फरसा), कुन्त⁷⁶ कुदाल⁷⁷ (कुदाल), कुहाड़ी⁷⁸ (कुल्हाड़ी), फालु⁷⁹

64 वराहगचरित 17/74

65 रश्मू : पास. 3/7-9

66 वराहगचरित 17/18

67 पास. 3/6-6

68 वही 3/7-1

69 वही 3/7-9

70 वही 3/8/4-5

71 वही 3/2, 1/4

72 वही 3/7

73 वही 5/6

74 वही 5/6

75 वही 5/6

76 वही 5/6

77 वही 5/6

78 वही 5/6

79 वही 5/6

(फावड़ा), धनुर्वर⁸⁰ (धनुष), सत्ति⁸¹ (शक्ति नामक अस्त्र), कुठार,⁸² तथा घण⁸³ (घन, हथौड़ा)।

दूत (दूत)⁸⁴ :

दूत का लक्षण :

जो अधिकारी दूरदेशवर्ती राजकीय कार्य का साधक होने के कारण मन्त्री के समान होता है, उसे दूत कहते हैं।⁸⁵

दूतों के भेद :

दूत तीन प्रकार के होते हैं - 1. निःसृष्टार्थ, 2. परिमितार्थ, 3. शासनहर।

निः सृष्टार्थ :

स्वामी के कान के पास रहने वाला, रहस्य रक्षा करने वाला, सुयोजित पत्र लेकर जल्दी जाने वाला, मार्ग में सीधे जाने वाला, शत्रुओं के हृदय में प्रवेश कर कठिन से कठिन कार्य को सिद्ध करने वाला⁸⁶ तथा विवेकी बुद्धि वाला⁸⁷ दूत निः सृष्टार्थ कहलाता है। आचार्य सोमदेव के अनुसार- जिसके द्वारा निश्चित किये हुए सन्धि विग्रह को उसका स्वामी प्रमाण मानता था, वह निः सृष्टार्थ है। जैसे- पाण्डवों के कृष्ण⁸⁸

परिमितार्थ या मितार्थ :

परिमित समाचार सुनाने वाला⁸⁹ अथवा राजा द्वारा भेजे हुए सन्देश और लेख को जैसा का तैसा शत्रु से कहने वाला⁹⁰ दूत परिमितार्थ या मितार्थ कहलाता था।

80 पास. घत्ता-32

81 वही 3/8

82 वही 3/12

83 वही 5/19

84 वही घत्ता 26

85 नीतिवाक्यामृत 16/1

86 आदिपुराण 44/136-137

87 वही 34/89

88 नीतिवाक्यामृत 13/4

89 आदिपुराण 43/202

90 नीतिवाक्यामृत



शासनहर :

उपहार के भीतर रखे हुए पत्र को ले जाने वाला दूत शासनहार कहा जाता है।⁹¹

पासणाहचरित में वर्णित दूत :

“पासणाहचरित” की तृतीय सन्धि के प्रारम्भ में कुशस्थलनरेश अर्ककीर्ति का मंत्री राजा अश्वसेन के पास दूत के रूप में आता है और राजा अश्वसेन से यवन नरेन्द्र द्वारा शत्रुवर्मा को मारे जाने और उनके पुत्र अर्ककीर्ति के सहायता माँगने आदि का वृत्तान्त कहता है। अपने वार्तालाप के बीच ही वह यवन नरेन्द्र के दूत द्वारा धमकी देने की भी बात कहता है, जिससे सिद्ध होता है कि दूत अपने शासन की ओर से धमकी देने का भी कार्य करते थे। दूत के विशाल मति वाल, विद्वान्, दूसरों के हृदयों के विचारों को जानने वाला और अर्थज्ञाता आदि लक्षणों का भी यहीं पता चलता है।⁹²

उपर्युक्त पासणाहचरित में वर्णित दूत के लक्षणों एवं कथन आदि से उसका शासनहर नामक दूत होना सिद्ध होता है। डॉ. राजाराम जैन ने भी उसे शासनहर दूत ही माना है।⁹³

युद्ध :

युद्ध का कारण :

पौराणिक कथानकों में युद्धों के प्रसंग प्रायः नायक की वीरता को प्रदर्शित करने के लिए रखे जाते होंगे, ऐसा ‘पासणाहचरित’ से आभास मिलता है। प्राचीनकाल में प्रायः युद्ध किसी न किसी कारण से होते थे, जैसे-श्रेष्ठता का प्रदर्शन, साम्राज्य विस्तार, स्वाभिमान की रक्षा और कन्या। ‘पासणाहचरित’ में वर्णित कालयवन और अर्ककीर्ति का युद्ध “कन्या” के कारण ही होता है।⁹⁴

युद्ध वर्णन :

‘पासणाहचरित’ में एकमात्र कालयवन और राजा अर्ककीर्ति के बीच ही युद्ध होना दिखाया गया है। इस युद्ध में राजा अर्ककीर्ति की सहायता राजकुमार

91 आदिपुराण 43/202

92 पास. 3/1-2

93 रङ्गू ग्रन्थावली, भूमिका, पृ. 77

94 तद्गुणियपुत्ति देहि सुहि णिवसहि ॥ -पास. 3/2

पार्श्व ने भी की थी। इस युद्ध का वर्णन कवि ने इस तरह किया है, मानो वह प्रत्यक्षदर्शी रहा हो। पाठक भी इस वर्णन को पढ़कर वीररस से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते। वर्णन इस प्रकार है -

कालयवन एवं राजा रविकीर्ति (अर्ककीर्ति) क्रोधावेश में आकर रण में प्रविष्ट हो गये और दर्प से उद्भट वे दोनों ही राजा जयश्री के हेतु परस्पर में भिड़ गये।⁹⁵ अत्यन्त तीक्ष्ण तलवारें खींच ली गई, मानो यमराज प्रत्यक्ष ही जीभ दिखा रहा हो। लोग पार्श्व द्रिष्टे को शयानक कानन के सागर गानकर कोई भी योद्धा शस्त्र धारण नहीं कर पा रहा था। प्रचण्ड घोड़ों के द्वारा गजयूथ खण्डित कर दिये गये। बलशाली योद्धा परस्पर में (दोनों ओर के) एक-दूसरे को खण्डित करने लगे। किसी का हाथी, तो किसी का घोड़ा विदीर्ण हो गया। किसी के द्वारा किसी का शीर्ष ही छिन्न-भिन्न हो गया। किसी ने अञ्जन पर्वत के समान कान्ति वाले मदोन्मत्त हाथी को मार गिराया, तो किसी ने सागर की चञ्चल तरंग के समान घोड़े को सुभट सहित मार गिराया। चन्द्रनख नामक शस्त्र के द्वारा उत्तम धवल वर्ण के छत्र काट दिये गये, उससे ऐसा लगने लगा मानो रणभूमि में कमल (सफेद) ही खिल उठे हों। फहराती हुई ध्वजायें काट दी गई, उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो पृथ्वी पर असतियों के वस्त्र ही पड़े हों। समर्थ पदातिगण आह्वान करते थे ओर दोनों ओर की सेनाओं के योद्धागण टक्कर मारते थे। दोनों ओर की सेनाओं के युद्ध करते-करते शत्रुओं का दल (कालयवन की सेना) भाग उठा।⁹⁶ अपनी सेना को भागते हुए देखकर कालयवन बहुत क्रुद्ध हुआ और परस्पर सवार होकर तथा हाथ में धनुष-बाण लेकर क्रोधावेश में आकर दौड़ा।⁹⁷ और भागते हुए अपने योद्धाओं को रोका। क्रोध के पूर से उसे पीछे से मारा। वे भी लज्जा से भरकर पुनः युद्ध में लग गये और क्रोध के पूर से वहीं हाथी एवं घोड़ों को विदीर्ण करने लगे। कोई किसी के द्वारा नाम लेकर ललकारा गया तो कोई जिनवचन का उच्चारण करने लगा। दौड़ते हुए किसी योद्धा की छाती को बीध दिया गया, मानो स्वामी के दान का फल ही सफल हो गया हो। "शक्ति" नामक अस्त्र के प्रहार से कोई -कोई योद्धा ऐसा काट दिया गया मानो भग्न शरीर से ही वह जीवन धारण कर रहा

95 पास. घत्ता-31

96 वही 3/7

97 वही घत्ता-32

हो। विदीर्ण एवं मरे हुए योद्धाओं से पृथ्वी रँध गई, तो योद्धागण उनके सम्मुख आकर दौड़ते थे, तब उससे राजा अर्ककीर्ति की सेना उसी प्रकार त्रस्त हो गई, जिस प्रकार वेदगान में स्वरभग्न होने से कोई यति भ्रष्ट हो जाता है। अपने सैन्य को भागते हुए देखकर जब तक रविकीर्ति ने उसे धैर्य बँधाया और मारो-मारो करते हुए दौड़ा तभी उसका शत्रु कालयवन उसके सम्मुख आया और वे दोनों नृप सिंह के समान क्रुद्ध हो गये⁹⁸ वे दोनों नरेश्वर धनुष-बाण हाथ में लेकर परस्पर तर्जना कर ही रहे थे, तभी देवों एवं मनुष्यों में श्रेष्ठ पार्श्व जिनेश भी वहाँ पहुँचे⁹⁹ जैसे ही पार्श्व जिनेश को कालयवन ने देखा, वह उनके प्रताप से भयभीत होकर युद्धभूमि छोड़कर भाग गया।¹⁰⁰

युद्ध का फल :

युद्ध हमेशा दो पक्षों में ही होता है और उनमें से एक पक्ष अन्यायी, राजलोलुपी होता है और दूसरा न्यायवान्। युद्ध में प्रायः अन्याय पर न्याय की और असत्य पर-सत्य की ही जीत होती है। अतः हम कह सकते हैं कि युद्ध का परिणाम शान्ति की स्थापना एवं प्रजा के हितों की रक्षा करना ही होता था।

98 पास. 3/8

99 वही वृत्त 33

100 वही 3/9-6



समम परिच्छेद

धर्म और दर्शन

धर्म का लक्षण :

जो धारण करे सो धर्म है। “धरतीति धर्मः” यह उसका निरुक्त्यर्थ है।¹ आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि-“चारित्र ही वास्तव में धर्म है, जो धर्म है वह साम्य है, साम्य मोह, क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम है।² श्री समन्तभद्रस्वामी ने धर्म की परिभाषा को सर्वाङ्गीण बनाते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धर्म कहा है।³ महाकवि रङ्गधू ने दस अंगों एवं रत्नत्रय से युक्त धर्म को श्रेष्ठ मानते हुए बारह विध तप का धारण एवं तेरहविध चारित्र का आचरण ही धर्म है,⁴ ऐसा कहा है। धर्म प्राप्ति हेतु चार कषायों का निग्रह आवश्यक है। अतः क्षमा भाव से क्रोध का दमन किया जाता है, मार्दवभाव से मानकषाय को जीता जाता है, आर्जवभाव से माया का निवारण किया जाता है एवं सन्तोष से लोभ को विदीर्ण किया जाता है।⁵ दयाप्रवर धर्म ही सारभूत है, जो उसे धारण कर मन को स्थिर नहीं करता, वह स्वयं अपने को ठगता है।⁶ डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य ने धर्म शब्द की व्युत्पत्ति-“ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा धर्मः अथवा इष्टे स्थाने धरो इति धर्मः” इस प्रकार की है।⁷ जिससे सिद्ध होता है कि जो आत्मा को इष्ट स्थान-मुक्ति में धारण कराता है अथवा जिसके द्वारा लोक के श्रेष्ठ स्थान में धारण किया जाता है अथवा जो लोक को श्रेष्ठ स्थान में धारण करता है, वह धर्म है।

1 “धारणाश्चै धृतो धर्म शब्दो वार्त्तिपरिस्थितः” -पद्मचरित, रविषेण, 14/103

2 चारित्रं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिदिददत्ता ।

मोहवज्रोह विहोणो परिणामो अभणो हु समो ॥ प्रवचनसारः आ. कुन्दकुन्द, गाथा-7

3 सद्दृष्टिज्ञान धृत्तानि, धर्म धर्मेश्वरा विदुः ।-रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 3

4 पासणाहर्धरि 3/23

5 वही 3/21/3-4

6 वही 3/22

7 द्रष्टव्य-तौर्थङ्कर महावीर और आचार्य परम्परा, खण्ड-1 पृ. 487



धर्म की आवश्यकता :

मानव जीवन के प्रमुख चार उद्देश्य निर्विवाद हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इस चारों में से मोक्ष को मानव जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है। इस दुःखमयी संसार का प्रत्येक जीव शाश्वत सुख की निरन्तर अभीप्सा करता है और उसकी प्राप्ति हेतु अनेकानेक उपाय भी। किन्तु धर्म रूष श्रेणी का आश्रय लिए बिना उसके वे उपाय "भृगुमरीचिका" बनकर रह जाते हैं। अर्थ और काम सांसारिक दुःखों को बढ़ाने में साधक ही बनते हैं, ऐसी स्थिति में एक धर्म ही ऐसा मार्ग बचता है जो व्यक्ति को परम शान्ति के आगार मोक्ष में पहुँचाने का मार्ग बताता है और कर्ममल कलंक से युक्त आत्मा को शुद्ध एवं स्वभावगत करके मोक्ष में पहुँचाने का काम करता है।

धर्म का माहात्म्य :

दयाप्रधान धर्म छोड़कर प्राणी के लिए इस संसार में कोई अन्य सहायक नहीं है।⁸ व्यक्ति धर्म के बिना चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है।⁹ दयाप्रवर धर्म ही सारभूत है, जो उसे धारण कर अपने मन को स्थिर नहीं करता, वह स्वयं अपने को ठगता है।¹⁰ धर्म ही लाखों दुःखों का निवारण करने वाला है। धर्म ही दुस्तर भवसमुद्र से पार उतारने वाला है। धर्म से ही तेज, रूप बल एवं विक्रम प्राप्त होते हैं। धर्म से ही दीर्घ आयुष्य एवं पराक्रम प्राप्त होता है। धर्म से इन्द्र, फणीन्द्र एवं नरेन्द्र की गति मिलती है और धर्म से ही आकाश में गमन करने वाला रवि एवं चन्द्र होता है। धर्म से ही संसार परम्परा का नाश होता है, धर्म से ही मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्ति होती है। धर्म ही कल्याणमित्र है, धर्म ही परम स्वजन है। धर्म से कोई भी व्यक्ति दुर्जन नहीं दिखाई देता। धर्म से इस संसार में क्या-क्या प्राप्त नहीं होता? धर्म से ही कामधेनु घर में दही जाती है अर्थात् धर्म कामधेनु के समान ही ईच्छित फल का देने वाला है।¹¹ धर्म के बिना वह मनुष्य भव विफल है; यह समझकर वैसा उपाय करो जिससे पाप रूपी वृक्ष को काटकर शीघ्र ही परमात्म पद प्राप्त किया जा सके।¹²

8 खड्ग : पाम , पन्ना -10

9 वही 3/16-5

10 वही, पन्ना 47

11 वही 3/23

12 वही, पन्ना -48



सर्वोत्कृष्ट धर्म :

'पासणाहचरिउ' के कर्ता महाकवि रङ्धू जैन धर्म के अनुयायी और जैन तत्त्वों के महान ज्ञाता थे अतः उन्होंने जैनधर्म को ही सर्वोत्कृष्ट धर्म माना था। उनकी इस भावना की झलक 'पासणाहचरिउ' में भी दिखाई देती है, यथा जिनवर की वाणी सुनना,¹³ दया करना,¹⁴ क्षमा भाव रखना,¹⁵ संवर धारण करना,¹⁶ मधु मद्य माँस का त्याग,¹⁷ सत्य बोलना¹⁸ आदि कार्यों को करना ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है। जिन धर्म की महत्ता बताते हुए वे कहते हैं कि -अनेक सुखों को प्रदान करने वाले जिनधर्म रूपी रसायन का जिसने नरथव में मेघन नहीं किया वह दुर्लभ रत्न के समान प्राप्त नर जन्म को हार जाता है और शुभगति को दूर कर देता है।¹⁹

धर्म के भेद :

धर्म के दो भेद हैं-सागार धर्म²⁰ और मुनि²¹ धर्म (अनगार धर्म) इन दो प्रकार के धर्मों को मनुष्यों के दो आश्रम भी कहा गया है।²² सागार धर्म के पालक गृहस्थ अवस्था में रहकर कषायों को मन्द करने और इन्द्रियों के विषय जीतने के साधन रूप अणुव्रतों का पालन करते हैं। अनगार धर्म के पालक वीतरागी मुनि होते हैं, वे गृहस्थपने का त्याग, सर्वथा आरम्भ-परिग्रह तथा विषय-कषाय से रहित होकर निज शुद्धात्मस्वरूप की सिद्धि के अर्थ महाव्रत, तप, ध्यान आदि की साधना करते हैं।

गृहस्थ (श्रावक) धर्म :

जो जिनवर की वाणी मनुते हैं, वे श्रावक कहलाते हैं।²³ श्रावक शब्द जैन गृहस्थ के लिए रूढ़ है। आचार्यकल्प पं. आशाधर जी के अनुसार-न्यायपूर्वक

13 रङ्धू : पास. 1/8 16

14 वही 3/21 9

15 वही 3/21 3

16 वही 3/21 8

17 वही 5/4 8

18 वही 5/5

19 वही 6/27

20 वही 5/2 5

21 वही 4/3

22 पद्मचरित 5/196

23 रङ्धू : पास. 1/8 16

घन कमाने वाला, गुणों की तथा माता-पिता आदि गुरुओं और सम्यक्च आदि गुणों से श्रेष्ठ मुनियों की पूजा करने वाला, प्रशस्त और सत्य वचन बोलने वाला, परस्पर में विरोध न कर धर्म, अर्थ तथा काम इन तीन पुरुषार्थों का सेवन करने वाला, अर्थ व काम पुरुषार्थों के योग्य स्त्री, ग्राम नगरादि और गृह से युक्त होने वाला, लज्जाशील, योग्य आहार तथा विहार को करने वाला, आर्यपुरुषों की संगति करने वाला, अपने ऊपर किए हुए उपकारों को जानने वाला, इन्द्रियों को वश में करने वाला, धर्म की विधि को प्रतिदिन सुनने वाला, दुःखी प्राणियों पर दया करने वाला और पापों से डरने वाला पुरुष गृहस्थ धर्म को धारण करने योग्य है।²⁴ श्रावक कुल समुद्र में गिरे हुए रत्नप्राप्ति के समान ही दुर्लभ है।²⁵ गृहस्थ धर्म का सेवन करने वाले व्यक्ति को पंचाणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का पालन आवश्यक बताया गया है, क्योंकि यह शाश्वत सुख प्राप्त कराने वाले हैं।²⁶

अणुव्रत का स्वरूप :

हिंसादिक से एकदेश निवृत्त होना अणुव्रत है।²⁷ इसी का खुलासा हमें आचार्य समन्तभद्र की इस परिभाषा से मिलता है-

प्राणतिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूच्छेभ्यः ।

स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ।²⁸

अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह, इन पाँच पापों से विरक्त होना ही अणुव्रत है।

अणुव्रत के भेद :

अणुव्रत पाँच प्रकार के होते हैं :

- | | |
|------------------------|----------------------|
| 1. अहिंसाणुव्रत | 2. सत्याणुव्रत |
| 3. अचौर्याणुव्रत | 4. ब्रह्मचर्याणुव्रत |
| 5. परिग्रह परिमाणुव्रत | |

24 पं. आशाधर : सागरधर्मांश 1/11

25 रङ्गधू : पास. 1/8-14

26 वही, घत्ता-76

27 द. पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि: हिन्दी व्याख्या 7/2

28 रत्नकरण्ड श्रावकचरित्र 3/52



अहिंसाणुव्रत :

मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय जीवों का घात न करना, अहिंसाणुव्रत है, 29 जीवों के लिए मैत्री का विधान किया गया है। अपनी ज्ञान शक्ति के अनुसार जीव को जानकर उसे नहीं मारना चाहिए 30 जिससे प्राणियों के प्राणों का क्षय होता है, वैसा उपदेश किसी को भी न दे। 31 मधु, मद्य और मांस का दूर से हां त्याग कर देना चाहिए, जिससे दया का भाव बढ़े 32 पाँच उदुम्बरों के भक्षण से अपनी रक्षा करो तथा कन्द-मूल का त्याग करो। संसार रूपी वन में वास कराने वाली उक्त वस्तुओं को सज्जन व्यक्ति न तो स्वयं चखे और न उनके सेवन का दूसरों को उपदेश ही दे, 33 सो अहिंसाणुव्रत है।

सत्याणुव्रत :

जो स्थूल झूठ न तो स्वयं बोलता है और न दूसरों से बुलवाता है तथा विपत्ति का कारणभूत सत्यवचन भी न तो स्वयं बोलता है और न दूसरों से बुलवाता है, उसी को सत्याणुव्रत कहते हैं 34 विवेकशील व्यक्ति को ऐसा वचन बोलना चाहिए, जिसमें पाप की अल्प भी सम्भावना न हो, वह तत्त्व को प्रकट करे, तत्त्व का ही उपदेश दे और तत्त्व ही बोले। जिनवर द्वारा भाषित तत्त्व को दूषित न करे। सत्य से देव एवं मनुष्य भी चरणों में प्रणाम करते हैं। सत्य से तीर्थङ्कर की वाणी भी प्राप्त होती है 35

अचौर्याणुव्रत :

स्वयं अथवा अन्य व्यक्तियों के द्वारा दिए गए परद्रव्य को ग्रहण नहीं करना, मार्ग में पड़े हुए अथवा रखे हुए परद्रव्य को नहीं लेना, न उसे दूसरे व्यक्ति को देना, न अपने हाथों से स्पर्श करना, चोरों के समूह में भ्रमण नहीं करना, चोर के साथ व्यापार एवं स्नेह नहीं करना, न लोभ से उसके घर जाना

29 रत्नकरण्ड श्रावकाचार 3/53

30 रङ्घू : पा. 5/4-2

31 वही 5/4-4

32 वही 5/4-8

33 वही, घत्ता-75

34 रत्नकरण्ड श्रावकाचार 3/55

35 रङ्घू : पा. 5/5/1-3

और मन, वचन एवं काय से चोर के कार्यों का त्याग कर देना,³⁶ सो अर्चौर्याणुव्रत है। अर्चौर्याणुव्रत के पालन करने से लोक और परलोक में सुख की प्राप्ति होती है।³⁷

ब्रह्मचर्याणुव्रत :

अत्यन्त सुन्दर पर नारी को देखकर अपनी दुर्निवार दृष्टि को रोकना, जो-जो भी पर युवतियाँ हों, उन्हें माँ एवं बहिन के समान मानना, अपनी पत्नी में ही रमण करना तथा इतर सबका पाप जानकर त्याग कर देना³⁸ सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इसी व्रत का दूसरा नाम स्वदार सन्तोषव्रत भी है।³⁹ इसी के विपरीत स्त्रियों के लिए भी स्वपतिसन्तोषव्रत जानना चाहिए। जो व्यक्ति इस लोक में दासी एवं वेश्याओं में आसक्त होता है, उसको नियम से एक भी व्रत नहीं होता।⁴⁰

परिग्रहपरिमाणुव्रत :

धन, धान्य, स्वर्ण, गृह, दासी, दास, ताम्बूल, विलेपन एवं उत्तम सुवास इनके प्रति लोभ की भावना का त्यागकर⁴¹ इन वस्तुओं का परिमाण कर लेना सो परिग्रह परिमाणु व्रत कहलाता है।

पंचाणुव्रत धारण करने का फल :

ये पंचाणुव्रत दुःखों का क्षय करने वाले हैं।⁴² अणुव्रतधारियों के अवधि ज्ञान, अणिभा, महिमादि अष्ट त्रहृदियों और परम सुन्दर शरीर प्राप्त होते हैं।⁴³

गुणव्रत :

गुणव्रत का स्वरूप और भेद :

जो अणुव्रतों की या अष्टमूलगुणों की रक्षा करें, उसे गुणव्रत कहते हैं। गुणव्रत तीन प्रकार के होते हैं :

36 पास. 5/5/4-7

37 वही 5/5/7

38 वही 5/5/8-12

39 आ. समन्तभद्रकृत रत्नकरण्ड श्रावकाचार 3/59

40 रङ्गधू : पा. 5/5/11

41 वही 5/5/13-14

42 वही पृष्ठा-76

43 आ. समन्तभद्र-रत्नकरण्ड श्रावकाचार 3/63



1. दिग्व्रत,
2. अनर्थदण्डव्रत और
3. भोगोपभोगपरिमाणव्रत।⁴⁴

1. दिग्व्रत :

दिशाओं, विदिशाओं का प्रत्याख्यान न करना, खड़े हुए मन का विरोध करना एवं दिन-प्रतिदिन प्रभातकाल में नियम ग्रहण करना, प्रथम (दिग्व्रत नामक) गुणव्रत है, जो कि पाप का हरण करने वाला है।⁴⁵ जिनभासित धर्म का जहाँ पालन न किया जा सके, वहाँ भव्य जन आजन्म न जाय, पापासक्तमनवाले खस बब्बर, भील, पुलिन्द आदि जहाँ निवास करते हों, मन को स्वप्न में वहाँ नहीं जाने देना चाहिए।⁴⁶

2. अनर्थदण्डव्रत :

प्रयोजन रहित पाप बंध के कारणभूत कार्यों से विरक्त होने को अनर्थ दण्डव्रत कहते हैं।⁴⁷

अनर्थदण्डव्रत के भेद :

अनर्थदण्डव्रत पाँच प्रकार का होता है-पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति, प्रमादचर्या।⁴⁸

- (1) पापोपदेश - तीव्र पापबंधके कारणभूत कार्यों का उपदेश देना।
- (2) हिंसादान - हिंसा के कारणभूत हथियारों व उपकरणों को देना।
- (3) अपध्यान - दूसरों के प्रति बुरा विचारना।
- (4) दुःश्रुति - रागादिवर्धक छोटे शास्त्रों का सुनना।
- (5) प्रमादचर्या - निष्प्रयोजन यहाँ-वहाँ घूमना, पृथ्वी खोदना, वनस्पति आदि का तोड़ना।

अनर्थदण्डव्रत धारी के लिए करणीय बातें :

अनर्थदण्डव्रत का धारी जीव असि, छुरिका, फरसा, कुन्त आदि वध करने वाले आयुध न तो लेवे और न बेचे। अपनी कुदाल, कुल्हाड़ी एवं फावड़ा किसी

44 रत्नकरण्डश्रावकाचार 4/67

45 रङ्गभू : पास. 5/6/1-2

46 वही 5/6/3-5

47 रत्नकरण्डश्रावकाचार 4/74

48 वही 4/75

को भी काम में लाने हेतु न दे। अनेक पाप के कारणभूत महुआ आदि एवं लाख, विष, लोहा तथा सन आदि वस्तुयें न बेचे। माजरि, कुत्ता, नकुल, गिद्ध आदि सैकड़ों जीवों के प्राणों का हरण करने वाले (शिकारी) तथा मौसाहारी पापों दासी एवं दासों को न रखे और न पाले, इनके प्रति माध्यस्थ भाव ही धारण करे।⁴⁹

3. भोगोपभोग परिमाणव्रत :

विषयासक्ति को कम करने के लिए हमेशा भोगोपभोग सम्बन्धी वस्तुओं का परिमाण करना, सो भोगोपभोग परिमाणव्रत हैं।⁵⁰ अपने मन को स्थिर करके भोगों एवं उपभोगों की संख्या सीमित करना चाहिए जिनसे संवर बढ़ता है, संसार रूपी वृक्ष जल जाता है और सुस्थिर (मोक्ष) पद प्राप्त होता है।⁵¹

शिक्षाव्रत

शिक्षाव्रत की परिभाषा :

जिनके प्रभाव से विशेष श्रुतज्ञान का अभ्यास हो या जिससे मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा मिले, उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं।⁵²

शिक्षाव्रत के भेद :

शिक्षाव्रत चार प्रकार के होते हैं- 1-देशव्रत, 2-सामायिक, 3-प्रोषधोपवास, 4-अतिथिसंविभाग (वैयावृत्य)।⁵³

1. देशव्रत :

दिग्व्रत में धारण किए गए विशाल देश का दिवस-पक्षादि काल की मर्यादा से प्रतिदिन त्याग करना, सो अणुव्रतधारियों का देशव्रत होता है।⁵⁴

49 रङ्धू : पासणाहचरिउ 5/6

50 समन्तभद्रकृत रत्नकरण्डश्रावकाचार 4/82

51 रङ्धू : पास. घत्ता-77

52 रत्नकरण्डश्रावकाचार, भावार्थ 5/91

53 वही 5/91

54 देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदेन देशस्य ।

प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥ वही 5/92



2. सामायिक शिक्षाव्रत :

“सभी जीवों को मैं नियम से क्षमा करता हूँ, वे भी मुझे प्रसन्न होकर क्षमा करें” ऐसा विचारकर सभी सावद्य कर्मों का त्याग करे तथा जिन भगवान् के सम्मुख बैठकर निष्कपट भाव से पर्यङ्कासन भारकर, मन को स्थिर करके और सुखकारी रत्नत्रय का स्मरण करके अपनी शक्तिपूर्वक संकल्प छोड़कर सामायिक करे। ज्ञानी व्यक्ति सिद्ध, बुद्ध, चेतन, पवित्र, अमूर्त, निरञ्जन एवं निर्दोष आत्मा का भावनापूर्वक ध्यान करे। निश्चय से इसे सामायिक शिक्षाव्रत समझना चाहिए।⁵⁵

3. प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत :

अष्टमी, चतुर्दशी एवं पर्व के दिनों में आरम्भ कार्यों में संवर करे, सप्तमी एवं नवमी को भव्यजन लालसा छोड़कर एक बार भोजन करे। आशा छोड़कर तथा जिन भगवान् को प्रणामकर मन एवं वचन की शुद्धिपूर्वक पञ्चमी का उपवास ग्रहण करे। उस दिन सावद्य कर्मों का त्याग करे और अहर्निश शुभ धर्मध्यान में रत रहे, तदनन्तर सत्पात्र को भोजन कराकर ग्रास ले, यही प्रोषधोपवास नामक शिक्षाव्रत है।⁵⁶

4. अतिथि संविभाग व्रत :

गुणवान् व्यक्ति को घर के दरवाजे पर आये हुए सत्पात्र को पड़गाहना चाहिए। अपनी शक्तिपूर्वक उसे बड़े ही गौरव के साथ मान (कषायादि) को छोड़कर दान देना चाहिए। यही अतिथि संविभागव्रत है।⁵⁷

व्रत की परिभाषा और उसकी भावनायें :

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह, इन पाँच पापों से विरक्त होने को व्रत कहते हैं।⁵⁸ ये व्रत भावनाओं से युक्त हैं। प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनायें होती हैं,⁵⁹ जो इस प्रकार हैं

55 रङ्गधू : पास. 5/7/1-6

56 वही 5/7/7-11

57 वही 5/7/12-14

58 हिंसानृतस्तेषाञ्जहापरिग्रहेभ्यो विरतिव्रतम् ।

- तत्त्वार्थसूत्र 7/1

59 तत्त्वैर्योर्थ भावनाः पंच पंच ।

- तत्त्वार्थसूत्र 7/3



अहिंसाणुव्रत की पाँच भावनायें :

- वाग्गुप्ति - वचन को रोकना।
- मनोगुप्ति - मन की प्रवृत्ति को रोकना।
- ईर्यासमिति - चार हाथ जमीन देखकर चलना।
- आदाननिक्षेपण समिति - भूमि को जीवरहित देखकर सावधानी से किसी वस्तु को उठाना, रखना।

आलोकित पानभोजन :

देख-शोधकर भोजनपान ग्रहण करना। इस प्रकार ये पाँच⁶⁰ अहिंसाव्रत की भावनायें हैं।

सत्यव्रत की पाँच भावनायें :

- क्रोधप्रत्याख्यान - क्रोध का त्याग करना।
 - लोभप्रत्याख्यान - लोभ का त्याग करना।
 - भीरुत्वप्रत्याख्यान - भय का त्याग करना।
 - हास्यप्रत्याख्यान - हास्य का त्याग करना।
 - अनुवीचिभाषण - शास्त्र की आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना।
- ये पाँच⁶¹ सत्यव्रत की भावनायें हैं।

अचौर्यव्रत की पाँच भावनायें :

- शून्यागारावास - पर्वतों की गुफा, वृक्ष की कोटर आदि निर्जन स्थानों में रहना।
- विमोचितावास - राजा वगैरह के द्वारा छुड़वाए हुए दूसरे के स्थान में निवास करना।
- परोपरोधाकरण - अपने स्थान पर ठहरे हुए दूसरे को नहीं रोकना।
- भैक्ष्यशुद्धि - शास्त्र के अनुसार भिक्षा की शुद्धि रखना।
- सधर्माविसंवाद - सहधर्मी भाईयों से यह हमारा है, वह आपका है, इत्यादि कलह न करना।

ये पाँच⁶² अचौर्याणुव्रत की भावनायें हैं।

60 तत्त्वार्थसूत्र 7/4

61 "क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनु वीचिभाषणं च पञ्च ।" - वही 7/5

62 "शून्यागार विमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धि सधर्माविसंवादः पञ्च॥" वही 7/6



ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच भावनायें :

- | | |
|---------------------------|---|
| स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग | - स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं के सुनने का त्याग करना। |
| तन्मनोहराङ्गनिरीक्षणत्याग | - स्त्रियों के मनोहर अंगों के देखने का त्याग करना। |
| पूर्वरतानुस्मरण त्याग | - अव्रत अवस्था में भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग करना। |
| वृष्येष्टरस त्याग | - कामवर्धक गरिष्ठ रसों का त्याग करना। |
| स्वशरीरसंस्कार त्याग | - अपने शरीर के संस्कारों का त्याग करना। |

ये पाँच⁶³ ब्रह्मचर्यव्रत की भावनायें हैं।

परिग्रह त्यागव्रत की पाँच भावनायें :

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र (कर्ण) इन पाँच इन्द्रियों के इष्ट, अनिष्ट विषयों में क्रम से रागद्वेष का त्याग करना। ये पाँच⁶⁴ परिग्रह त्यागव्रत की भावनायें हैं।

सप्तव्यसन⁶⁵ त्याग :

व्यसन की परिभाषा :

जहाँ अन्याय रूप कार्य को बार-बार सेवन किये बिना चैन नहीं पड़े, ऐसी आदतों का पड़ जाना व्यसन कहलाता है अथवा व्यसन नाम आपत्ति का भी है, इसलिए जो घोर दुःख को उत्पन्न करे, अत्यन्त विकलता को उत्पन्न करे, वही व्यसन कहलाता है⁶⁶ जिस कार्य को एक बार करने पर भी उचित-अनुचित के विचार रहित हो पुनः प्रवृत्ति हो वह व्यसन कहलाता है⁶⁷ व्यसन से तात्पर्य बुरी आदतों, बुरे कार्यों से है। लोक में निंद्य सात व्यसन निम्न प्रकार कहे गए हैं:

63 "स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षण पूर्वरतानुस्मरण वृष्येष्टरसस्वशरीर संस्कारत्यागाः पञ्च।" - तत्त्वार्थ सूत्र 7/7

64 "मनोऽज्ञापनोऽज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च।" वही 7/8

65 रङ्गधू : पास. 1/3,3/24

66 मूलाचार

67 स्याद्वादमञ्जरी



जुआ :

धृष्ट, पापिष्ठ एवं दर्पिष्ठ द्यूतान्ध जन्म भर भी क्लिष्ट कर्मों का अनुसरण नहीं करता। वह गुणहीन जुआरी व्यक्ति घर का द्रव्य चुराचुर ले जाता है और उस सबको हारकर, भय व्रस्त होकर भटकता रहता है। पत्नी, पुत्री और बहिन उसका विश्वास नहीं करतीं, सभी लोग उसे देखकर उसका उपहास करते हैं। उसके लिए न घर होता है और न गृहिणी, न भूख, न प्यास और न निद्रा और वह लोगों के घरों के छिद्र ढूँढ़ता रहता है। जुआरी व्यक्ति पीटा जाता है, लूट लिया जाता है और (कारागार) में बन्द कर दिया जाता है, यह सोचकर जुए का व्यापार (कार्य) छोड़ दो।⁶⁸

मांसाहार :

जीवों को मारने से बसा, रुधिर, मेदा एवं अस्थिमिश्रित मांस की उत्पत्ति होती है। जो पापी व्यक्ति निर्दोष तिर्यञ्च का वधकर मन में रागपूर्वक उसके मांस का भक्षण करता है, वह मनुष्य के रूप में प्रत्यक्ष यम कहा जाता है। ऐसा जानकर तथा उसकी निकृष्ट स्थिति सुनकर मांस भक्षण को छोड़ देना चाहिए।⁶⁹

मद्यपान :

मद्यपान से उन्मत्त व्यक्ति भटकता रहता है। लज्जा छोड़कर वह नीच कार्य करने लगता है। स्त्री के गले में बाँह डालकर उसे बुलाता है और माता अथवा बहिन आदि जो मन में आता है, वही कहकर पुकारता और भगता है। भार्या को देखकर "माँ" इस प्रकार कहकर उसे प्रणाम करता है। सुरारसपान के कारण चक्कर काटता हुआ लड़खड़ाकर चलता एवं बल खाता हुआ वह मार्ग के मध्य में ऊपर मुख किये हुए लेट जाता है। कोई भी व्यक्ति सम्मान के साथ उसे नहीं देखता। श्वान उसके मुँह में शीघ्र ही पेशाब कर देता है, किन्तु वह उसको भी श्रेष्ठ सुवर्णरस (मदिरा) समझ लेता है और हे मित्र! कल्याणकारी अमृतपान के समान यह मदिरा और दो, और दो;" इस प्रकार कहता है, व्यर्थ बोलता हुआ वह सभी के लिए अपना माथा झुकाता है एवं गाता हुआ भी लड़खड़ाता हुआ घूमता रहता है।⁷⁰ यह जानकर भी जो व्यक्ति रसनेन्द्रिय का संवरण कर तत्का

68 रङ्गधू : पास. 5/9/1-5

69 वही 5/9/6-8

70 वही 5/10

ही मद्यपान छोड़ देता है, वह अनेक दुःखों के आकर संसारसमुद्र को भी क्रीड़ा के समान पार कर लेता है।⁷¹

वेश्या सेवन :

जो सुरामद में मत्त होकर मांस का स्वाद लेती है, जो जन्मभर किसी के भी रूप सौन्दर्य में आसक्त नहीं होती, जो द्रव्यवान् (धनवान्) नीच व्यक्ति का भी सम्मान करती है तथा उसके साथ रत्नसुखों को मांगती है और दुःख, कष्ट, गुणवान् एवं सुन्दर होने पर भी अर्थहीन व्यक्ति को अपने घर में प्रवेश नहीं करने देती। अन्य को भोगती है और अन्य को देखती है तथा किसी अन्य ही व्यक्ति का मन में ध्यान करती है। जिस प्रकार वारुही का जल रथ को काट देता है, उसी प्रकार वेश्या अपने स्नेहसे वर्तन करती है। कूट कपट आलापों से मनोरंजन करती है और पेट पालने के निमित्त अपने शरीर का मर्दन कराती है। जो देखने वालों के लिए गुब्जाफल के समान सुन्दर है किन्तु भोगने में वह प्राण लेवा है; यह जानकर बाजारु (वेश्या) स्त्रियों को छोड़ो। दुर्लभ शील रूपी रत्न को भग्न मत करो।⁷²

शिकार :

शिकार खेलना भी दुखों का कारण है, अतः निर्दोष प्राणियों को नहीं मारना चाहिए। बेचारे शूकर, साँभर एवं हरिण अपने शरीर की रक्षा करते हुए वन में घूमते रहते हैं, दाँतों के अग्रभाग में तृण दबाए एवं भय से काँपते हुए वे पर्वत, नदी, सरोवर एवं गुफाओं में रहा करते हैं। जो पापी उन्हें सन्ताप देता है, वह अनन्त दुखों को प्राप्त करता है। जो अपने शरीर की वेदना को जानता है, वह अन्य के प्राणों का ध्वंस नहीं करता।⁷³

सद्बुद्धि वाला व्यक्ति तिर्यज्चों को भी अपने बच्चों के समान मानता है, उनकी रक्षा करता है और वध नहीं करता। वह व्यक्ति कहीं भय नहीं देखता, पृथ्वी एवं स्वर्ग भवनों में वह देवियों का भोग करते हुए ज्ञान का धारी बनता है।⁷⁴

71 रङ्गी : पास, पन्ना - 81

72 वही 5/11/1-9

73 वही 5/11/10-16

74 वही, पन्ना- 82

चोरी :

तत्कर दूसरे के द्रव्य को चुराकर काँपते हुए उसे छिपाकर बाहर भाग जाता है। अत्यन्त व्याकुल होकर घने वन में जाकर वहाँ अपने शरीर को संकुचित कर निर्जन स्थान में छिप जाता है। यदि कभी वह किसी प्रकार उस जंगल से निकलता है तो सोचने लगता है कि कोई मुझे देख न ले, कोई जाग न उठे। अत्यन्त साहस करके यदि वह गया भी, तो फिर कहीं कोतवाल उसे देख लेता है और उसे बाँधकर राजा के सम्मुख लाकर दिखा देता है और तब उसमें वह (राजा) लाखों दुगुणों की संभावना करता है। राजन्य वर्ग के लोगों द्वारा उसे शूली पर चढ़ा दिया जाता है, हाथ, पैर या शिरच्छेद कर दिया जाता है, मारे जाते हुए भी उसे कोई नहीं बचाता और वह पापी मरकर शीघ्र ही नरक को प्राप्त करता है।⁷⁵

परस्त्री सेवन का त्याग :

परस्त्री के दुर्गति के द्वार के समान रूप को चित्त में धारण मत करो।⁷⁶ कामुक व्यक्ति परस्त्रियों को देखते ही कामदेव के बाणों से विंध जाता है। वह अपने मन में तिल-तिल करके जलता रहता है। उन्हें प्राप्त न कर वह दुराश ने भग्न हो जाता है, इस प्रकार वह बहुत से पापों को अर्जित करता है। विरहातुर होकर वह दुखी होता है, हँसता है, व्रस्त होता है और वह कामी देव एवं गुरु को भी नहीं मानता। दूसरों की प्रियतमा को प्राप्त न कर वह कलपता रहता है और अहर्निश मदन ज्वाला से सन्तप्त होता है। एकान्त प्रदेश में यदि बड़ी कठिनाई पूर्वक कभी प्राप्त कर भी लिया तब भय से दाँतों का मन बड़ा क्षुब्ध रहता है कि कहीं कोई देख न ले या बाँध न ले। जहाँ इतना बड़ा दुख है, वहाँ सुख कैसा अथवा उसे बाँधकर राजा के पास ले जाया जाता है और सिर मुँड़ाकर उसे गधे की पीठ पर बैठाया जाता है, फिर सिर पर झाड़ू बाँधकर उसे नगर में भ्रमण कराते हैं अथवा उसका अवयव (अंग) ही भग्न कर दिया जाता है; यह सब जानकर परस्त्री का त्याग कर देना चाहिए और अपने शुद्धकुल को नहीं लजाना चाहिए।⁷⁷

75 रघु : पास. 5/12

76 वही, घत्ता-83

77 वही 5/13



रात्रि भोजन त्याग :

मनुष्यों को दिन में ही भोजन कर लेना चाहिए, रात्रि में उसकी मन में आकांक्षा भी नहीं करना चाहिए। जिस रात्रि में क्षुधातुर निशाचर किलकिलाते रहते हैं, रवि पश्चिम समुद्र में लुप्त हो जाता है, मकड़ी, मच्छर एवं मक्खियों से भरा आकाश भी दिखायी नहीं देता, उस रात्रि में बुद्धिमान् व्यक्ति को भोजन नहीं करना चाहिए।⁷⁸

अनछना जल का त्याग :

अनछना जल किसी को भी नहीं देना चाहिए, स्वयं भी कभी नहीं पीना चाहिए, क्योंकि दो घड़ी वाले जल में सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं।⁷⁹

मुनि धर्म :

मुनि संसार रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य के समान⁸⁰ और वीतरागी⁸¹ होते हैं। मुनिराज बाह्य-आन्धन्तर तप के भार को धारण करते हैं, विषम परीषहों को भी सहन करते हैं, रत्नत्रय का ध्यान करते हैं, तप से शरीर को तपाते हैं, करण (त्रिगुण) के द्वारा मन के प्रसार को रोकते हैं⁸² राग-द्वेष को तिरस्कृत करते हैं, जीव-अजीव रूप पदार्थों को जानते हैं,⁸³ केशलोच करते हैं⁸⁴ मुनि का मन अत्यन्त निर्मल होता है⁸⁵ मुनि के लिए निर्ग्रन्थ (निर्गन्ध)⁸⁶ शब्द का भी प्रयोग हुआ है। भगवान् पार्श्व ने अपनी दिव्यध्वनि में कहा है कि जो परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ साधु हैं, जिन्होंने काम के तीव्र दाह को शान्त कर दिया है, स्वाध्याय एवं ध्यान में अहर्निश प्रवीण हैं, मांस तथा पक्ष में पारणा लेने के कारण क्षीणकाय हो गये हैं, मोह, माया एवं प्रमाद को छोड़ दिया है, उनके चरणों में भावपूर्वक प्रणाम करो, क्योंकि मोक्षप्राप्ति के लिए निर्ग्रन्थ मार्ग को छोड़ अन्य मार्ग नहीं है⁸⁷

78 रघु : पास. 5/8

79 वही 1/2/5

80 वही 6/12/9

81 वही 6/12/13

82 वही, पता 124

83 वही 6/20/1

84 वही 4/2/1

85 वही 1/5

86 वही 2/11

87 वही 5/3



मुनि की विशेषताये⁸⁸ :

1. मुनि प्रायः गिरि कन्दराओं में रहते हैं।
2. वे बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करते हैं।
3. रत्नत्रय का ध्यान करते हैं।
4. विषय परीषहों को सहन करते हैं।
6. तप से शरीर को तपाते हैं।
7. मन के प्रसार (चंचलता) को रोकते हैं।
8. राग और द्वेष से रहित होते हैं।
9. जीव-अजीव रूप पदार्थों को जानते हैं।
10. अहर्निश शुद्धात्मा की आराधना करते हैं।
11. मासोपवास भी करते हैं।
12. ग्यारह अंगों (जिनवाणी) का अभ्यास करते हैं।
13. कायोत्सर्ग करते हैं।
14. क्षमागुण के धारक और काम के निःस्पृह होते हैं।

मुनियों के अट्टाईस मूलगुण :

मुनिराज पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों का निरोध, समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान; ये छह आवश्यक, स्नान त्याग, दन्त धावन त्याग, भूमि शयन, केशलोच, नग्नत्व, खड़े होकर आहार लेना, दिन में एक बार भोजन लेना-ये सात व्रत, इस तरह अट्टाईस मूल गुणों का पालन करते हैं।⁸⁹

पाँच महाव्रत⁹⁰ :

हिसां, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों के पूरी तरह त्याग करने को पाँच महाव्रत कहते हैं।⁹¹

पाँच समिति :

ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और उत्सर्ग, ये पाँच समितियां हैं।⁹² इनका खुलासा इस प्रकार इस प्रकार है-

88 1 से 14 तक देखें पास. : रङ्गू 6/19, वत्ता 124 एवं 6/20

89 आचार्य कुन्धुसागर : मुनिधर्मप्रदीप, पृ. 4

90 रङ्गू : पास. 3/20

91 तत्त्वार्थसूत्र 7/1-2

92 "ईर्याभाषणादाननिक्षेपोत्सर्गः समितयः।" - तत्त्वार्थसूत्र 9/5



ईर्यासमिति :

नेत्रगोचर जीवों के समूह से बचकर गमन करने वाले मुनि के प्रथम ईर्यासमिति होती है, यह व्रतों में शुद्धता उत्पन्न करती है।⁹³

भाषा समिति :

सदा कर्कश और कठोर वचन छोड़कर यत्नपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले यति का धर्म कार्यों में बोलना भाषासमिति है।⁹⁴

एषणासमिति :

शरीर की स्थिरता के लिए पिण्ड शुद्धि पूर्वक मुनि का आहार ग्रहण करना एषणा समिति है।⁹⁵

आदान निक्षेपण समिति :

देखकर योग्य वस्तु का रखना और उठाना आदाननिक्षेपण समिति है।⁹⁶

उत्सर्ग समिति :

इसे प्रतिष्ठापनसमिति भी कहते हैं। प्रासुक (जीव-जन्तु से रहित) भूमि पर शरीर के भीतर का मल-मूत्र छोड़ना उत्सर्ग समिति है।⁹⁷

गुमि :

विषय सुखाभिलाषा रहित मन, वचन, काय की यथेष्ट प्रवृत्ति का रोकना गुमि है।⁹⁸ अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में तप करके जितने कर्मों को दूर करता है उतने कर्मों को ज्ञानी (आत्मज्ञानी) जीव अपने मन, वचन और काय इन तीनों को वश में करके क्षण भर में नष्ट कर देता है।⁹⁹ इन गुमियों से योगों का निरोध होता है।¹⁰⁰

93 हरिवंश पुराण 2/122

94 वही 2/123

95 वही 2/124

96 वही 2/125

97 वही 2/125

98 तत्त्वार्थसूत्र 9/4

99 छहदाला 2/19

100 रङ्गधु : पास. 3/21



पंचेन्द्रियों का निरोध :

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण (श्रोत्र) ये पाँच इन्द्रियाँ हैं।¹⁰¹ इन इन्द्रियों की विषयों के प्रति प्रवृत्ति रोकना ही इन्द्रिय निरोध कहलाता है। इन्द्रिय जनित सुख विजली के समान चंचल माना गया है।¹⁰² पंचेन्द्रियों के (आसक्ति पूर्वक) रसास्वादन से विकार उत्पन्न होता है।¹⁰³

छह आवश्यक :

समता, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग; ये छह आवश्यक हैं।¹⁰⁴

समता :

किसी भी प्राणी के प्रति द्वेष न रखकर सदा आत्म स्वभाव की ओर दृष्टि लगाना।

स्तुति :

पूज्य पुरुषों (तीर्थङ्करों) के गुणों की प्रशंसा करना, स्तुति करना।

वन्दना :

सिद्ध के स्वरूप की प्राप्ति के लिए तीर्थङ्करों की श्रद्धा भक्तिपूर्वक वन्दना करना।

प्रतिक्रमण :

प्रमाद से लगे हुए दोषों की निन्दा एवं आलोचनापूर्वक उनसे अरुचि या ग्लानि करना।

प्रत्याख्यान :

जिन दोषों से ग्लानि हुई है, उनका आगे के लिए त्याग करना।

101 तत्त्वार्थसूत्र 2/19

102 "इन्द्रिय-सुहु तडि-तरलतण्ड।"-रङ्गभूः पास. 3/14

103 वही 3/20

104 इदमावश्यकषट्कं समतास्तधवन्दनाप्रतिक्रमणं ।

प्रत्याख्यानं वपुषो व्युत्सर्गश्चेति कर्तव्यम्॥

आ. अमृतचन्द्र पुरुषार्थ सिद्धयुपाय 9/201



कायोत्सर्ग :

शरीर से ममत्व छोड़कर आत्मध्यान में लीन होकर शरीर से एकाग्रतापूर्वक तप करना।

परीषह जय¹⁰⁵ :

संवर के मार्ग से च्युत न होने के लिए और कर्मों का क्षय करने के लिए जो सहन करने योग्य हों, वे परीषह हैं।¹⁰⁶ इनकी संख्या बाईस है, जो इस प्रकार हैं- क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या, निषदा, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण, स्पर्श, मद, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन।¹⁰⁷ इन वेदनाओं को जीतना ही परीषह जय कहलाता है।

आठ मदों का त्याग :

ज्ञान, पूजा (प्रतिष्ठा), कुल, जाति, बल, क्रुद्धि (धन-सम्पत्ति), तप और शरीर; इन आठ का आश्रय करके गर्व करना मद कहलाता है।¹⁰⁸ मुनि इन आठ मदों के त्यागी होते हैं।

तप¹⁰⁹ :

समस्त रागादि भावों के त्यागपूर्वक आत्मस्वरूप में लीन हो जाना अर्थात् आत्मलीनता द्वारा पर विकारों पर विजय प्राप्त करना, तप कहलाता है।¹¹⁰ तप बारह प्रकार का होता है¹¹¹ :

अनशन (उपवास), अवमौदर्य (एकाशन), वृत्ति परिसंख्यान, रस परित्याग और कायक्लेश ये छह बाह्य-तप हैं।¹¹² प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य,

105 रङ्घू : पास. 3/1, 6/12, 7/2

106 "मार्गाच्चिवननिर्जरार्थं परिषोद्व्याः परीषहाः । तत्त्वार्थसूत्र 9/8

107 "क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनागन्यारति स्त्रीचर्या निषदाशय्याक्रोशवधयाचनालाभ रोगतृणस्पर्शमलसत्कार पुरस्कार प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि।"- तत्त्वार्थसूत्र 9/9

108 ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।

अष्टावांश्चित्यमानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥ -रत्नकरण्डश्रावकाचार 25

109 रङ्घू : पास. 7/5

110 "समस्त रागादिपरभावेन्तज्यागेन स्वस्वरूपे प्रतापनं विजयनं तपः।"

आ. कुन्दकुन्द कृत प्रवचनसार : तात्पर्यवृत्ति संस्कृत टीका (जयसेन कृत) भाषा - 79

111 रङ्घू : पास. 3/23

112 तत्त्वार्थसूत्र 9/19

स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान, ये छह आभ्यन्तर तप हैं।¹¹³ ये सभी बारह प्रकार का तप धर्म कहलाता है।

अनुप्रेक्षा :

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म-स्वाख्यात इन बारह के स्वरूप का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा कहलाता है।¹¹⁴

अनित्यानुप्रेक्षा :

पुद्गल, आयु, धन, राग, राज्यभोग, स्त्रीभोग भाग्य, नवयौवन, सौन्दर्य और इन्द्रियसुख आदि सभी बिजली के समान चंचल हैं, यहाँ तक कि अवसान (मृत्यु) के समय शरीर भी अपना नहीं रहता, इस प्रकार समस्त जगत को अनित्य मानकर अपने मन में नित्य, निरञ्जन और शुद्ध जीव की भावना का चिन्तन करना; अनित्यानुप्रेक्षा है।¹¹⁵

अशरणानुप्रेक्षा :

बन्धु-बान्धव, स्त्री, पुत्र, कलत्र, हाथी, सिंह, योद्धा शरीर आदि में से कोई भी किसी की रक्षा नहीं कर सकते, इस संसार में दयाप्रधान धर्म (जिनधर्म) को छोड़कर प्राणी के लिए अन्य कोई सहायक नहीं,¹¹⁶ इस प्रकार की भावना का चिन्तन करना, अशरणानुप्रेक्षा है।

संसारानुप्रेक्षा :

यह जीव चारों गतियों में भटकता हुआ अनेक प्रकार के दुखों को सहता हुआ चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है और सुख-दुःख रूप कर्मों को भोगता है, कोई भी किसी का सहायक नहीं,¹¹⁷ इस प्रकार संसार के स्वरूप का चिन्तन करना; संसारानुप्रेक्षा है।

113 तत्त्वार्थसूत्र 9/20

114 वही 9/7

115 रङ्गभू : पास. 3/14 एवं घत्ता-39

116 वही 3/15 एवं घत्ता-40

117 वही 3/16



एकत्वानुप्रेक्षा :

यह जीव स्वयं ही कर्मों का कर्ता और उसका भोक्ता है। अकेला ही चारों गतियों में भटकता रहता है। दर्परहित आत्मा बिल्कुल असहाय और अकेला है, शुद्ध जीव अकेला ही निरञ्जन, ज्ञानमय एवं कर्मविमुक्त होता है, यहाँ संसार में उसका कोई अन्य नहीं¹¹⁸ इस प्रकार की भावना का चिन्तन करना एकत्वानुप्रेक्षा है।

अन्यत्वानुप्रेक्षा :

शरीर, पंचेन्द्रियजनितसुख, माता-पिता, पुत्र, मित्र, बन्धु, भवन, हाथी, घोड़े आदि सब बाह्य पदार्थ हैं, मेरा कुछ भी नहीं है। जीव (आत्मा) ही मेरा है।¹¹⁹ इस प्रकार की भावना करना अन्यत्वानुप्रेक्षा है। अपने मन में अन्यत्व को जानकर भी जो दुर्घन उस नहीं करता, वह अनेकों दुःखों और लाछों पोनियों से युक्त संसार में भटकता रहता है।¹²⁰

अशुच्यानुप्रेक्षा :

यह अशुचि देह अशुचि पदार्थों में से उत्पन्न हुई है। जो शोक, रोग तथा अनेको दुःखों से आच्छादित रहती है, अत्यन्त दुर्गन्धिपूर्ण है और जिसमें से पसीना और मैल विगलित होते रहते हैं। वह सप्त धातुओं का घर, अस्थि-पंजर से युक्त, चर्माच्छादित, अन्तर्द्वियों की पोटली और यमराज के मुख में प्रड़कर असार एवं विकृत हो जाती है। यह शरीर श्रीखण्ड, कर्पूर आदि तथा देवों द्वारा मान्य क्षीरसागर के जल से धोने पर भी पवित्र नहीं होता।¹²¹ तप, व्रत, एवं संयम का धारण करना ही संसार में शरीर का सार है, उन्हें धारण किये बिना जीव के लिए माया एवं मदप्रचुर यह शरीर केवल कर्माश्रय का ही कारण बना रहता है।¹²² इस प्रकार देह की अशुचिता का चिन्तन करना अशुच्यानुप्रेक्षा है।

आस्रवानुप्रेक्षा :

मिथ्यात्व, अविरति, योग और कषाय तथा पंचेन्द्रियों के रसास्वादन से उत्पन्न विकार, नोकषाय और अज्ञान के विविध प्रकार आदि अनेक भावों के

118 पास 3/17 एवं धत्ता-42

119 वही 3/18

120 वही, धत्ता-43

121 वही 3/19

122 वही, धत्ता-44

द्वारा कर्मास्त्रव होता है। पंच महाव्रतों के भार को धारण न करने से, षड्व्रत रूपात्मियों का पालन न करने से तथा प्रकट राग से कर्मास्त्रव होता है। जीव कर्म से आबद्ध होता है और भवावली (संसार) को प्राप्त करता है। मन, वचन एवं काय के अशुभ एवं सारहीन संचार से अशुभ कर्मास्त्रव होता है, उसके कारण जीव बहुत से दुःखों को भोगता है और चौससी लाख योनियों में घूमता है। शुभ योग से शुभ आस्त्रव होता है, जिसके कारण जीव वांछित लक्ष्मी प्राप्त करता है। जिस प्रकार सरोवर में जल नालियों के द्वारा आता है, उसी प्रकार जीव प्रदेशों में कर्ममल आता है।¹²³ आते हुए उस कर्मास्त्रव को, जो संवर के द्वारा नहीं रोकता है, वह शठ टूटी हुई नाव में चढ़कर अपने को संसार रूपी संरोवर में उतारता है।¹²⁴ इस प्रकार कर्मों के आने रूप आस्त्रव के बारे में चिन्तन करना ही आस्त्रवानुप्रेक्षा है।

संवरानुप्रेक्षा :

आस्त्रव द्वारों का रुक जाना संवर कहलाता है। यतिवर मिथ्यात्व के लिए सम्यक्त्व, योगों के निरोध के लिए गुप्ति, क्रोध के दमन हेतु क्षमा, मान को जीतने के लिए मार्दव, माया के निवारणार्थ आर्जव, लोभ को विदीर्ण करने के लिए संतोष (शौच) का पालन करके कर्मास्त्रव को अवरुद्ध करते हैं। कायोत्सर्ग से शरीर को मण्डित करते हैं। अशुभ लेश्या, संज्ञा आदि का त्याग करते हैं, जिससे शुद्ध भावना की प्राप्ति के उपरान्त संवर बढ़ता है। मोक्षमार्ग के लिए चतुर्गति के तापों के भय का हरण करने वाला ही सहचर है।¹²⁵ इस प्रकार संवर की प्राप्ति के कारणों के बारे में चिन्तन करना संवरानुप्रेक्षा है।

निर्जरानुप्रेक्षा :

जो भव्य जीव संवर को धारण करता है, वह चिरकाल से अर्जित दुखरूप प्रचुर शुभाशुभ कर्मों की निर्जरा करता है।¹²⁶ सविपाक और अविपाक के भेद से उत्तम निर्जरा दो प्रकार की होती है।¹²⁷ अपना समय आने पर कर्मों का नष्ट

123 पास 3/20

124 वही, घटा-45

125 वही 3/21

126 वही, घटा-46

127 वही 3/22/1

होना सविपाक निर्जरा और समय से पूर्व ही तप के द्वारा कर्मों का नष्ट हो जाना या कर देना, सो अविपाक निर्जरा कहलाती है।¹²⁸ निर्जरा से सम्यक्ज्ञान प्रकाशित होता है और ज्ञान से लोकालोक भाषित होता है।¹²⁹ इस प्रकार हे भाई! तू विषय-कषायों और अपने मन की चंचलता भरी आदतों का त्यागकर अपने आनन्दमयी निज स्वरूप का ध्यान करो, जिससे तेरे दुःखदायक कर्मबन्ध की निर्जरा हो जाय और केवलज्ञान का प्रकाश हो।¹³⁰

धर्मानुप्रेक्षा :

दयाप्रवर धर्म ही सारभूत है, जो उसे धारण कर अपने मन को स्थिर नहीं करता वह स्वयं अपने को उठाता है।¹³¹ दस धर्म, रत्नत्रय, बारह विध तप एवं तेरहविध चारित्र का आचरण ही धर्म है। धर्म ही समस्त दुःखों का निवारण एवं संसार समुद्र से पार उतारने वाला है। धर्म से ही तेज, रूप, बल एवं विक्रम प्राप्त होते हैं। धर्म से ही मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति होती है। धर्म ही कल्याणमित्र है, धर्म ही परम स्वजन है। धर्म से कोई भी व्यक्ति दुःख नहीं दिखाई देता।¹³² धर्म के बिना यह मनुष्य भव विफल है, यह समझकर वैसा उपाय करो, जिससे पापरूपी वृक्ष को काटकर शीघ्र ही परमात्मपद को प्राप्त किया जा सके।¹³³ इस प्रकार धर्म के बारे में चिन्तन करना धर्मानुप्रेक्षा है।

लोकानुप्रेक्षा :

लोक तीन हैं, (अधः, मध्य और ऊर्ध्व), जो तीन वात वलयों पर आधारित हैं और छह द्रव्यों से निरन्तर भरे हुए हैं। यह लोक (तीनों क्रमशः) वेत्रासन, झल्लरी एवं पटह के समान हैं और चौदह राजू ऊँचा तथा प्रथुल है। लोक का सम्पूर्ण क्षेत्रफल 343 राजू है, जो किसी के द्वारा कम या अधिक नहीं किया जा

128 निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना ।

तप करि जो कर्म छिपावे, सोई शिव सुख उपजावै ॥

पं. दौलतराम जी कृत छहढाला 5/11

129 रइधू : पास. 3/22

130 तजि कषाय मन की चलचाल, ध्याओ अपनो रूप रसाल ।

झरै कर्मबन्धन दुःख-दान, बहुरि प्रकाशै केवलज्ञान ॥

कविवर बुधजन कृत छहढाला, 1/10

131 रइधू : पास., घत्ता- 47

132 वही 3/23

133 वही, घत्ता-48

सकता है। सभी अध्याचर्यों में यह परिपूर्ण है और कहीं-कहीं बस जाकों में आच्छादित है। बहुत पाप करने जीव अधोगति की प्राप्त होते हैं और वहाँ विभिन्न प्रकार के दुःख पाते हैं। पशु तथा परस्त्रीहरण में आसक्त रहकर, सप्त रथसन एवं मदिरापान में मस्त होकर वे नरकगति का भोग करके पुनः नरकगति में जाते हैं। फिर पापकर्मों के फलस्वरूप तिर्यञ्चगति प्राप्त करते हैं, कभी मनुष्य होते हैं। वे पृथ्वी जगत् में अनेक ऋद्धियों से युक्त होकर राज्य करते हैं।¹³⁴ इस संसार में जहाँ भी प्रदेश ऐसा नहीं है जहाँ चिरकाल तक इस जीव ने जीवन-मरण प्राप्त न किया हो,¹³⁵ इस प्रकार मन में लोक के स्वरूप का चिन्तन करना लोकानुप्रेक्षा है।

बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा :

समस्त गतियों में मनुष्यगति ही दुर्लभ है और उसमें भी अत्यन्त दुर्लभ है उत्तम कल ही प्राप्ति। दीर्घायु एवं इन्द्रियों की पूर्णता प्राप्ति होने पर भी कभी निरोगता की प्राप्ति नहीं होती। यदि जीव यौवन, लक्ष्मी एवं कान्ति प्राप्त कर भी ले, तो धर्म अच्छा नहीं लगता। यदि उस धर्म को किसी प्रकार कष्ट से प्राप्त कर ले तो धर्म परमार्थ से गुरुवचनों को नहीं सुनता। यदि वह भी सुन ले तो कुगतिवाला वह जीव उसे धारण नहीं करता। वह दिनरात कुशास्त्रों में रत रहता है और हाथ में प्राप्त हुए मनुष्य जन्म रूपी माणिक्य को पाकर भी खो देता है। यदि वह सब किसी प्रकार पा भी ले तो रत्नत्रय की भावना मन में नहीं आता। यदि नहीं अतिदुर्लभ रत्नत्रय मुझे किसी प्रकार प्राप्त हो गया है तो अब मैं उसमें किसी प्रकार आमावधान नहीं होऊँगा।¹³⁶ इस प्रकार ज्ञान की दुर्लभता के बारे चिन्तन करना बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा है।

धर्मस्वाख्यातानुप्रेक्षा :

११, धर्म और स्वजन सभी शरदकालीन मेघ के समान क्षणभंगुर हैं।¹³⁷ जिनेन्द्रदेव ने जो अहिंसाधर्म कहा है, सत्य उसका आधार एवं क्षमा उसका बल है, ब्रह्मचर्य से रक्षित है, उपशम की उसमें प्रधानता है, नियति उसका लक्षण है,

134 गस. 3/24

135 वही, घटा-49-

136 वही 3/25

137 वही, घटा-50

अपरिग्रह उसका आलम्बन है। इसकी (धर्म की) प्राप्ति नहीं होने से दुष्कर्म विपाक से जायमान दुःखों को अनुभव करते हुए ये जीव अनादि संसार में परिभ्रमण करते हैं परन्तु इसका लाभ होने पर नाना प्रकार के अभ्युदयों की प्राप्ति पूर्वक मोक्ष की प्राप्ति होना निश्चित है; ऐसा चिन्तन करना धर्मस्वाख्यातानुप्रेक्षा है। इस प्रकार चिन्तन करने वाले इस जीव के धर्मानुराग वश उसकी प्राप्ति के लिए सदा यत्न होता है।¹³⁸

उपर्युक्त द्वादश अनुप्रेक्षाओं को जो जीव हृदय में धारण करता है, उन्हें संसार की प्राप्ति होती है, जिसमें नवीन शुभाशुभ कर्मों का आना रुक जाता है।

मोक्ष प्राप्ति का उपाय :

रत्नत्रय¹³⁹ :

सम्यग्दर्शन, सम्यक्त्वज्ञान और सम्यक्चरित्र के अन्तर्गत मोक्ष उपायों का अभिहित किए जाते हैं। इन तीनों उपायों को मोक्ष प्राप्ति का उपाय कहा गया है।¹⁴⁰

रत्नत्रय की महत्ता :

जिसने रत्नत्रय रूपी श्रेष्ठ रत्नों की प्राप्ति कर लिया है, मोक्ष लिए शोक नहीं किया जाता।¹⁴¹ रत्नत्रय से युक्त धर्म ही श्रेष्ठ है।¹⁴² जिसने पा पात्र रत्नत्रय की प्राप्ति कर ली, वह विषयों में आसक्त कैसे रह सकता है? ¹⁴³

सम्यग्दर्शन :

मिथ्यात्व के निरोध के लिए सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) कहा गया है।¹⁴⁴ तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।¹⁴⁵ आचार्य समन्तभद्र के अनुसार-

138 सवीर्थसिद्धि (पूज्यपाद) संस्कृत टीका-810

139 रङ्गु : पास. 3/3, 3/23, 3/25 इत्यादि।

140 सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष मार्गः "-तत्त्वार्थसूत्र-1/1

141 रङ्गु : पास. 3/3

142 वही 3/23

143 वही 4/5

144 वही 3/21

145 तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् "-तत्त्वार्थसूत्र 1/2

सत्यार्थ अथवा मोक्ष के कारणभूत देव-शास्त्र और गुरु का आठ अंग सहित, तीन मूढ़ता रहित, आठ मद रहित श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शन कहलाता है।¹⁴⁶ जिनशासन में संवेग एवं निर्वेद, निन्दा तथा आत्मगर्हा, उपशम तथा बहुभक्ति वात्सल्यता एवं अनुकम्पा;¹⁴⁷ इन गुणों से सम्यक्त्व होता है।¹⁴⁸

सम्यग्दर्शन के लक्षण :

‘पासणाहचरित’ में कविवर रङ्घू ने सम्यग्दर्शन के लक्षणों का विस्तृत वर्णन करते हुए लिखा है कि-“अरहन्त ही देव हैं अन्य कोई नहीं। वह अठारह दोषों से रहित, निष्काम और इन्द्रियरूपी गजसमूह का दलन करने के लिए सिंह के समान हैं। उस केवलज्ञान लोचन देव को प्रणाम करो, जिन्होंने लोकालोक के भेद को जान लिया है और जो परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ साधु हैं, जिन्होंने काम के तीव्रदाह को शान्त कर दिया है, स्वाध्याय एवं ध्यान में अहर्निश प्रवीण हैं, मास अथवा पक्ष में पापना लेंने के कारण बाँधकाय हो गये हैं, जिन्होंने मोह, माया एवं प्रमाद को छोड़ दिया है, उनके चरणों में भी भावपूर्वक प्रणाम करो। दया धर्म के प्रति अनुराग करो, जो चिरकृत पाप कर्म का नाशक है। मोक्ष प्राप्ति के लिए निर्ग्रन्थ मार्ग छोड़ अन्य मार्ग नहीं। धन्य दशलक्षण धर्म का पालन करो। इस प्रकार से सम्यक्त्व के लक्षण कहे गये हैं, भव्यजनों को इनकी मन में दृढ़ भावना करना चाहिए।¹⁴⁹

सम्यग्दर्शन के आठ अंग¹⁵⁰ :

(1) निः शङ्का : जिन कथित देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप में शङ्का न करना।

(2) निः काङ्क्षा : सांसारिक सुख की इच्छा नहीं करना।

(3) निर्विचिकित्सा : धर्मात्माओं के शरीर में ग्लानि न करते हुए उनके गुणों में प्रीति रखना।

146 रत्नकरण्डश्रवकाचार 1/4

147 रङ्घू : पास., घत्ता-73

148 वही 5/3

149 वही 5/3

150 वही 5/2



(4) अमूढदृष्टि : कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं की मन, वचन और काय से प्रशंसा नहीं करना।

(5) उपगूहन : जैनधर्म के पालन में हुई निन्दा को दूरकर जैनत्व के गौरव को सुरक्षित रखना।

(6) स्थितिकरण : सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र से पुरुषों को पुनः धर्म में स्थिर कर देना।

(7) वात्सल्य : साधर्मि भाइयों के प्रति निः स्वार्थ धर्मानुराग रखना।

(8) प्रभावना : अज्ञान दूरकर जैन धर्म का माहात्म्य प्रकट करना व बढ़ाना।

सम्यग्दर्शन की महिमा :

सम्यग्दर्शन से दुर्गतिरूप दुःख भग्न हो जाता है।¹⁵¹ सम्यक्त्व से सुन्दर सम्पदादि का भोग करके फिर शिवपद (मोक्ष) प्राप्त करते हैं।¹⁵² सम्यक्त्व के बिना जीव अनेक दुःखों के आकर भवसागर में गिरता है, इसमें कोई भ्रान्ति नहीं। सम्यक्त्व से युक्त नारकी जीव भी मनुष्य होकर शिवपद को प्राप्त करता है और संसार में परिभ्रमण नहीं करता।¹⁵³ ऐसा जानकर जो व्यक्ति सम्यक्त्व के साथ परमधर्म को करता है, उसका जन्म सफल है।¹⁵⁴

सम्यग्ज्ञान :

आचार्य समन्तभद्र के अनुसार - "जो वस्तु के स्वरूप को न्यूनतारहित, अधिकतारहित और विपरीततारहित जैसा का तैसा सन्देहरहित जानता है, वह सम्यग्ज्ञान है।"¹⁵⁵ सम्यग्ज्ञान से लोकालोक भासित होते हैं।¹⁵⁶

151 रङ्घू : पास. 3/9

152 वही 5/3

153 वही षष्ठा-74

154 वही 5/4

155 अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात् ।

निः सन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥ -- रत्नकरण्डश्रावकाचार 2/48

156 रङ्घू : पास. 3/22

सम्यक्चारित्र :

सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान सहित व्रत, गुप्ति, समिति आदि का अनुष्ठान करना, उत्तमकृपादि दश धर्मों का पालन करना, मूलगुण और उत्तरगुणों का धारण करना, सम्यक्चारित्र है अथवा विषय, कषाय, वासना, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहरूप क्रियाओं से निवृत्ति करना, सम्यक्चारित्र है।¹⁵⁷

जिनाभिषेक एवं जिनपूजा :

‘पासणाहचारित्र’ में जिनपूजा का प्रसङ्ग आया है। सर्वप्रथम 1008 लक्ष्यों से युक्त भगवान का उतने ही कलशों से अभिषेक किया गया। दुन्दुभि, कंसाल, षटह, ताल एवं नानाप्रकार के यक्षुर वाद्य बज रहे थे। पुनः इन्द्र ने दीर्घबाहुनाथ का मदन किया, फिर शुद्धोदक में जिनवर को स्नान कराकर गन्धोदक की वन्दना की। श्रेष्ठ वस्त्र से शरीर पोछा एवं मेरु के समान भगवान को दूसरे आसन पर स्थापित किया।¹⁵⁸

समेन्द्र ने गणिनिर्मित झारों में जल से भगवान के सम्मुख तीन धारायें देकर पूजा की उत्तम विधि प्रारम्भ की।¹⁵⁹ जिसकी गन्ध के राग से लुब्ध होकर भ्रमरावली गुंजन कर रही थी, जिसके प्रभाव से स्वर्ग में समस्त अभिलिखित वस्तुयें पूर्ण हो गईं और पित दाह आदि व्याधियाँ भंग हो गईं। ऐसे चन्दन से भक्ति भावपूर्वक चर्चा (पूजा) की, मानो भविष्य में होने वाले तीव्रताप से अपने को दूर कर रहा हो। प्रमदवन में जाकर राध चम्पा और मालती (पुष्प) लाकर शची ने भव्यमाला ग्रथित की। इन्द्र ने उसे लेकर वीतराग भगवान के पादमूल में स्थापित कर दिया, मानो कामदेव के वाण से ही भगवान के चरणों की पूजा की हो। निर्मल शालि-बीजों को छोटी छोटी ढेरियाँ लगा दी गईं, मानो आकाश में सुन्दर धार्मिक नक्षत्र ही स्थिर हो गए हैं। प्रिय वास से सुवासित, ताजे, लक्ष-लक्ष पक्वान्न स्वर्ण-निर्मित स्वच्छ पात्रों में सजाकर रखे गये। सूर्यकान्ति के समान दीप्त स्वर्ण भाजन में चित्त को सुख देने वाला, धूमरहित शुद्ध दीपक सजाकर इन्द्र दुन्दुभिरव के साथ अनुरागपूर्वक नृत्य करने लगा, मानो वह भी

157 असुहादो विणिजित्तो सुहे णिवत्तो य जण चारित्तो।

वदसमिातुत्तरुवं ववहरणया दु जिण भणित्थं ॥ - ब्रह्मसंग्रह-45

158 रइधू : पास. 2/12-

159 वही, धात्ता-22

सहस्र भुजाओं से उन भगवान की पूजा कर रहा हो। धूपवत्ती से निकलने वाला धूम आकाश में ऐसा सुशोभित हुआ जैसे मानो वह जीव लोक के लिए मोक्ष का मार्ग दिखा रहा हो, उसने प्रचुर गन्ध से युक्त धूप खेई, वह ऐसी शोभायमान हुई जैसे मानो भयातुर होकर जिन भगवान से गण्यरसि गण्य-रही हो। कल्प वृक्ष की शाखा में पके हुए, नेत्रों एवं चित्त को प्रमुदित करने वाले, इष्टकर एवं सुस्वादु नारियल आदि सैकड़ों फल भगवान की पादपीठ के समीप चढ़ा दिए, जो भव्यजनों के लिए श्रेष्ठ एवं नित्य सुख प्रदान करते थे। जल, गन्ध, पुष्प, अश्रुत, भक्ष्य (नैवेद्य), दीप, धूप तथा फल; इन आठ द्रव्यों से युक्त पुष्पाब्जानि एवं अन्य व्यञ्जन भी, जो लाखों दुःखों को नष्ट करने वाले थे, भगवान के सम्मुख में चढ़ाये गये,¹⁶⁰ इस प्रकार से जिन भगवान की चारों गतियों का नाश करने वाली पूजा की।¹⁶¹

पाषाण प्रतिमा की पूज्यता :

पासणाहचरित में एक प्रसंग आया है कि राजा आनन्द ने एक मुनिराज से “पाषाण-प्रतिमा के अर्चन एवं नष्टवन से क्या पुण्य होता है” इस विषय में पूछा जिसके उत्तर में मुनिराज ने कहा-“जो मणियों एवं धातु से घटित जिन प्रतिमा का निर्माण कराता है, पृथिवी तल पर उसके पुण्य का वर्णन कौन कर सकता है? गुणवान् इन्द्र भी उसे नमन करता है। जो भविष्यभावपूर्वक जिनप्रतिबिम्ब की अष्ट प्रकार से अर्चना करता है, जो मेरु शिखर पर समस्त इन्द्रों के द्वारा पूजा जाता है, जो केवल ज्ञान आदि गुणों से समृद्ध है और पूर्ण विशुद्ध है; ऐसे जिनवर को जो भावपूर्वक मन में मानता है, वह व्यक्ति शाश्वत सुख को पा लेता है और जो पाषाण प्रतिमा मानकर उसकी निन्दा करता है और उसे भग्न करता है, वह मरकर नरक में जाता है, बहुत दुखों को भोगता है और वह पापी चैतरणी में डूबता है।

हे राजन्! यद्यपि जिन-प्रतिमा अचेतन है तथापि उसे वेदन शून्य नहीं मानना चाहिए। संसार में निश्चित रूप से परिणाम ही पुण्य पाप का कारण होता है। जिस प्रकार वज्रभित्ति पर कन्दुक पटकने पर उसके सम्मुख शह फट जाती है, उसी प्रकार दुःख-सुख कारक निन्दा एवं स्तुतिपरक वचनों के प्रभाव से यद्यपि प्रतिमा भग्न नहीं होती तथापि उससे शुभाशुभ कर्म तुरन्त लग जाते हैं, उनमें से

160 पास. 2/13

161 वही, घत्ता 23

धार्मिक कर्मों को स्वर्ग का कारण कहा गया है। यह जानकर शुद्ध भावनापूर्वक जिन भगवान का चिन्तन करो और उनकी प्रतिमा का अहर्निश ध्यान करो।¹⁶²

दान¹⁶³ :

अपने तथा पर के उपकार के लिये अपनी वस्तु का त्याग करना दान है।¹⁶⁴
दान चार प्रकार का होता है-

औषधिदान, ज्ञानदान, अभयदान और आहारदान¹⁶⁵

दान की प्रेरणा देते हुए आचार्य पद्मनन्दि ने लिखा है कि-

सत्पात्रेषु यथाशक्ति, दानं देयं गृहस्थितैः ।

दानहीना भवेत्तेषां, निष्फलं व गृहस्थता॥¹⁶⁶

अर्थात् गृहस्थ श्रावकों को शक्ति के अनुसार उत्तम पात्रों के लिए दान अवश्य देना चाहिए, क्योंकि दान के बिना उसका गृहस्थाश्रम निष्फल ही होता है।

षोडश भावनायें¹⁶⁷ (सोलह कारण भावनायें)

षोडश भावनायें निम्नलिखित हैं-

1. दर्शन विशुद्धि :

जिनोपदिष्ट निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग में रुचि दर्शन विशुद्धि है।¹⁶⁸

2. विनय सम्पन्नता :

सम्यग्ज्ञान आदि मोक्ष के साधनों में तथा ज्ञान के निमित्त गुरु आदि में योग्य रीति से सत्कार-आदर आदि करना तथा कषाय की निर्मुक्ति करना, विनय सम्पन्नता है।¹⁶⁹

162 रङ्गधू : पास. 6/18

163 वही 1/3

164 "अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्।"-तत्त्वार्थसूत्र 7/38

165 पं. दानतरायकृत दशलक्षणपूजा की जयमाला (त्याग सम्बन्धी पद)

166 पद्मनन्दिपंचविंशतिका : उपासकसंस्कार, श्लोक 31

167 रङ्गधू : पास. 2/5

168 तत्त्वार्थवार्तिक 6/24 की व्याख्या, वार्तिक नं. 1

169 वही वार्तिक नं. 2,



3. शीलव्रतेष्वनतिचारः :

अहिंसा आदि तथा उनके परिपालन के लिए क्रोधवर्जन आदि शीलों में काय, वचन और मन की निर्दोष प्रवृत्ति शीलव्रतेष्वनतिचार है।¹⁷⁰

4. अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः :

जीवादि पदार्थों को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जानने वाले मति आदि पंच ज्ञान हैं। अज्ञान निवृत्ति इनका साक्षात्फल है तथा हित प्राप्ति, अहित-परिहार और उपेक्षा व्यवहित फल हैं। इस ज्ञान की भावना में सदा तत्पर रहना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है।¹⁷¹

5. संवेगः :

शरीर मानस आदि अनेक प्रकार के प्रिय वियोग, अप्रिय संयोग, इष्ट का अलाभ आदि रूप सांसारिक दुखों से नित्य भीरुता संवेग है।¹⁷²

6. त्यागः :

पर की प्रीति के लिए अपनी वस्तु देना त्याग है।¹⁷³

7. तपः :

अपनी शक्ति को नहीं छिपाकर मार्गाविरोधी कायक्लेश आदि करना तप है।¹⁷⁴

8. साधुसमाधिः :

जैसे भण्डार में आग लगने पर वह प्रयत्नपूर्वक शान्त की जाती है, उसी तरह अनेक व्रत-शीलों से समृद्ध मुनिगण के तप आदि में यदि कोई विघ्न उपस्थित हो जाय तो उसका निवारण करना साधुसमाधि है।¹⁷⁵

9. वैयावृत्यः :

गुणवान् साधुओं पर आये हुए कष्ट रोग आदि को निर्दोष विधि से हटा देना, उनकी सेवा करना बहु उपकारी वैयावृत्य है।¹⁷⁶

170 तत्त्वार्थवार्तिक 6/24 की व्याख्या, वार्तिक नं. 3

171 वही, वार्तिक नं. 4,

172 वही, वार्तिक नं. 5

173 वही, वार्तिक नं. 6

174 वही, वार्तिक नं. 7

175 वही, वार्तिक नं. 8

176 वही, वार्तिक नं. 9

10, 11, 12, 13—अर्हदाचार्यबहुश्रुत प्रवचन भक्ति :

केवलज्ञान, श्रुतज्ञान आदि दिव्यनेत्रधारी परहित प्रवण और स्वसमर्थ विस्तार निश्चयज्ञ अर्हन्त, आचार्य और बहुश्रुतों में तथा श्रुतदेवता के प्रसाद से कठिनता से प्राप्त होने वाले मोक्षमहल की सीढ़ी रूप प्रवचन में भावविशुद्धिपूर्वक अनुराग रखना अर्हद् भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति और प्रवचन भक्ति है।¹⁷⁷

14. आवश्यकपरिहाणि :

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग; इन छह आवश्यक क्रियाओं को यथाकाल बिना नागा किए स्वाभाविक क्रम से करते रहना आवश्यकपरिहाणि है। सर्व सावद्य योगों को त्याग करना, चित्त को एकाग्र रूप से ज्ञान में लगाना सामायिक है। तीर्थङ्करों के गुणों का स्तवन चतुर्विंशतिस्तव है। मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक खड़गासन या पद्मासन से चार बार शिरोघ्नाति और आवर्तपूर्वक वन्दना होती है। कृत दोषों की निवृत्ति प्रतिक्रमण है। भविष्य में दोष न होने देने के लिए सन्नद्ध होना प्रत्याख्यान है। अमुक समय तक शरीर से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है।¹⁷⁸

15. मार्ग प्रभावना :

महोपवास आदि सम्यक् तपों से तथा सूर्यप्रभा के समान जिनपूजा से सद्गर्भ का प्रकाश करना, मार्ग प्रभावना है।¹⁷⁹

16. प्रवचनवत्सलत्व :

जैसे गाय अपने बछड़े से स्नेह रखती है, उसी तरह धार्मिक जन को देखकर स्नेह से ओत-प्रोत हो जाना प्रवचनवत्सलत्व है।¹⁸⁰

लोकों के लिए सुखदायक, जो तीर्थङ्कर हो चुके हैं, आगे होंगे तथा जो वर्तमान में हैं, वे सभी सोलह कारण भावनायें भाकर (ध्याकर) तथा आत्मा के शुद्ध परमात्मगुण को पाकर ही सिद्ध हुए हैं।¹⁸¹ अतः हमें भी यथाशक्ति इनका ध्यान करना चाहिए।

177. तत्त्वाय धार्तिक 6/24 की व्याख्या, वार्तिक नं. 10

178. वही वार्तिक नं. 11

179. वही, वार्तिक नं. 12

180. वही, वार्तिक नं. 13

181. रङ्गः पस. 6/20

तीर्थङ्कर¹⁸² :

“तीर्थङ्कर” तीर्थ शब्द से बना है। तीर्थ शब्द की व्युत्पत्ति है- तरति संसारमहार्णव येनः तत् तीर्थम्। अर्थात् जिसके द्वारा जीव इस अपार संसार सागर से पार होता है, उसे तीर्थ कहते हैं और ऐसा तीर्थ धर्म ही है, अतः धर्म तीर्थ के कर्त्ता या चलाने वाले को तीर्थङ्कर कहते हैं।

अष्ट प्रातिहार्य¹⁸³ :

तीर्थङ्कर भगवान के आठ प्रातिहार्य निम्नलिखित होते हैं¹⁸⁴ :

1. अशोक वृक्ष का होना, जिसके देखने से शोक नष्ट हो जाय।
2. रत्नमय सिंहासन।
3. भगवान के पीछे भामण्डल का होना।
4. भगवान के मुख से निरक्षरी दिव्य ध्वनि का होना।
5. देवों द्वारा पुष्प वृष्टि होना।
6. यक्ष देवों द्वारा चौंसठ चँवरों का ढोला जाना।
7. दुन्दुभि बाजों का ध्वजना।

चौंतीस अतिशय¹⁸⁵ :

“पासणाहचरित” में तीर्थङ्कर भगवान महावीर के चौंतीस अतिशयों से युक्त होने का उल्लेख आया है। इन चौंतीस अतिशयों में 10 (दस) जन्म से, 10 (दस) केवलज्ञान होने पर और 14 (चौदह) देवकृत होते हैं। ये चौंतीस अतिशय निम्नलिखित हैं

जन्म के दस अतिशय¹⁸⁶ :

जन्म के दस अतिशय इस प्रकार हैं :

1. अत्यन्त सुन्दर शरीर, 2. अतिसुगन्धमयशरीर, 3. पसेव (पसीना) रहित शरीर, 4. मलमूत्ररहित शरीर, 5. हित-मित प्रिय वचन बोलना, 6. अतुल्य बल, 7. दुग्ध के समान सफेद रुधिर, 8. शरीर में 1008 लक्षण, 9. समचतुरस्रसंस्थान

182 पास. 3/10/1

183 वही 4/15,7/1

184 डॉ. बाबू ज्ञानचन्द जैन (लाहौर) : जैन बाल गुटका, प्रथम भाग, पृ. 68

185 रङ्गधू : पास. 5/1,7/1

186 श्री बाबू ज्ञानचन्द जैन (लाहौर) : जैन बाल गुटका, प्रथम भाग, पृ. 65-66

शरीर अर्थात् शरीर के अंगों की बनावट, स्थिति चारों तरफ से ठीक होना, 10. वज्रवृषभनाराचसंहनन।

केवलज्ञान के दस अतिशय¹⁸⁷ :

1. एक सौ योजन तक सुभिक्ष अर्थात् जहाँ केवली भगवान रहते हैं, उससे चारों ओर सौ-सौ योजन तक सुभिक्ष होता है।
2. आकाश में गमन,
3. चार मुखों का दिखाई पड़ना,
4. अदया का अभाव,
5. उपसर्ग का अभाव,
6. कवल (ग्रास) आहार का न होना,
7. समस्त विद्याओं का स्वामीपना,
8. केशों और नाखूनों का न बढ़ना,
9. नेत्रों की पलक नहीं टिमकाना,
10. छाया रहित शरीर।

देवकृत चौहद अतिशय¹⁸⁸ :

1. भगवान की अर्द्धमागधी भाषा का होना।
2. समस्त जीवों में परस्पर मित्रता होना।
3. दिशा का निर्मल होना।
4. आकाश का निर्मल होना।
5. सब ऋतु के फल-फूल धान्यादिक का एक ही समय फलना।
6. एक योजन तक की पृथ्वी का दर्पणवत् निर्मल होना।
7. चलते समय भगवान के चरण-कमल के तले स्वर्णकमल का होना।
8. आकाश में जय-जय ध्वनि का होना।
9. मन्द सुगन्ध पवन का चलना।
10. सुगन्धमय जल की वृष्टि होना।
11. पवन कुमार देवों द्वारा भूमि को कण्टक रहित करना।

187 रङ्गधू : पास., घत्ता 67 एवं 4/17

188 वही 4/17



12. समस्त जीवों का आनन्दमय होना।

13. भगवान के आगे धर्मचक्र का चलना।

14. छत्र, चमर, ध्वजा, घण्टादि अष्टमंगल द्रव्यों का साथ रहना।

द्रव्य-विवेचन :

द्रव्य छह होते हैं।¹⁸⁹ धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गल ये द्रव्य के छह प्रकार हैं।¹⁹⁰

धर्म द्रव्य :

गमन में परिणत पुद्गल और जीवों को गमन में सहकारी धर्मद्रव्य है। जैसे-मछलियों के गमन में जल सहकारी है। गमन न करते हुए पुद्गल व जीवों को धर्मद्रव्य गमन नहीं कराता।¹⁹¹

अधर्मद्रव्य :

ठहरे हुए पुद्गल और जीवों को ठहरने में सहकारी कारण अधर्म द्रव्य है। जैसे-पथिकों को ठहरने में छाया सहकारी है। गमन करते हुए जीव तथा पुद्गलों को अधर्म द्रव्य नहीं ठहराता है।¹⁹²

आकाश द्रव्य :

जो जीवादि द्रव्यों को अवकाश देता है, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं।¹⁹³ आकाश के दो भेद हैं-लोकाकाश और अलोकाकाश। धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव, जितने आकाश में है, वह लोकाकाश कहलाता है और लोकाकाश से बाहर अलोकाकाश कहलाता है।¹⁹⁴

189 रङ्धु : पास. 3/14

190 तत्त्वार्थसूत्र 5/1

191 गङ्गपरिणयाण धम्मो, पुग्गल जीवाण गमण सहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो नेई ॥ - द्रव्यसंग्रह, गाथा 17

192 ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गल जीवाणठाण सहयारी।
छाया जह पहियाणं अच्छतां णेव सो धरइं ॥ - वही, गाथा-18

193 अवगासदाण जोग्ग जीवादीणं विद्याण आयासं।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ - वही, गाथा-19

194 धम्मा धम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये
आयासे सो लोगो, ततो परदो अलोगुत्ति ॥ - वही, गाथा-20



त्रैलोक्य का स्वरूप :

प्रथम जिनेन्द्र (भगवान ऋषभदेव) द्वारा कथित सर्वाकाश अनन्तानन्त रूप में प्रकाशित हैं। उसके मध्य में महान तीन लोक हैं, जो असंख्य प्रदेशों से विशिष्ट हैं, अकृत्रिम हैं, स्वतः सिद्ध हैं और प्रसिद्ध हैं, न कोई उसका हरण करता है और न निर्माण। घनवातवलय, तनुवातवलय एवं घनोदधिवातलय पर आधारित हैं। सम्पूर्ण लोक जीवाजीवों से भरा है। उन सभी का पिण्ड जिन भगवान ने बीस-बीस सहस्र योजन प्रमाण ऊपर-ऊपर कहा है। ऊर्ध्व प्रदेश में क्रमशः हीन-हीन हैं तथा लोक के शिखर पर वे क्षीण हो जाते हैं। लोक शिखर पर क्रमशः हीन-हीन हीन हैं तथा लोक के शिखर पर वे क्षीण हो जाते हैं। लोक शिखर पर क्रमशः दो कोस, एक कोस एवं शिखर पर वे क्षीण हो जाते हैं। लोक शिखर पर क्रमशः दो कोस, एक कोस एवं पन्द्रह सौ पन्द्रहतर (1575) धनुष प्रमाण है।

यह लोक चौदह रज्जू प्रमाण ऊँचा है और इसका समस्त क्षेत्रफल 343 घन राजू है। उमी के मध्य सुप्रसिद्ध असनाड़ी है, वह सर्वत्र त्रय जीवों के भरी हुई है। दुःखनाशक भगवान जिन ने उसके बाहर के क्षेत्र को पाँच प्रकार के स्थावरों से भरा हुआ कहा है। मारणात्मिक समुद्रघात एवं उपपाद-समुद्रघात करते समय इन तीनों लोकों में उनका गमन नालाड़ी के बाहर भी अविरुद्ध है।

लोक के मूलभाग में उसका प्रमाण पूर्व से पश्चिम में सात राजू कहा गया है और फिर मध्यलोक में एक राजू, ऊर्ध्व-लोक में ऊपर जाकर पाँच राजू और पुनः एक राजू विभक्त है। दक्षिण और उत्तर दिशा में लोक का आयाम सर्वत्र निरन्तर सात राजू जानना चाहिए।¹⁹⁵

दस, सोलह, बाईस, अट्ठाईस, चौँतीस, चालीस एवं छयालीस रज्जू अर्थात् कुल 196 रज्जू प्रमाण सात (नरक) पृथ्वियों का घनफल जानना चाहिए।¹⁹⁶

इस प्रकार सातों नरकों का प्रमाण एक सौ छियानवे रज्जू है। एक सौ सैंतालिस रज्जू ऊर्ध्व लोक का प्रमाण जानना चाहिए। इस प्रकार गणना करके, ये 343 रज्जू कहे गये हैं।¹⁹⁷

195 रङ्घू : पृ. 5/14

196 वही, पृ. 85

197 वही 5/15



नरक वर्णन (अधोलोक)

प्रथम घम्मा नरक :

तिर्यक लोक के मध्य में एक सहस्र योजन प्रमाण कनकाचल का तल है। उसके नीचे घम्मा नामक प्रथम नरक है, जिसके तीन भाग हैं। प्रथम भाग का नाम खर पृथ्वी है, जो सोलह योजन मोटी है। नौ प्रकार के भवनवासी देव वहाँ रहते हैं और मनोवांछित सुखों को भोगते हैं। सात प्रकार के रसिक व्यन्तर देव भी वहाँ सुख भोग भोगते हुए रहते हैं।¹⁹⁸

पङ्कबहुल नामक दूसरा भाग भी चौरसी सहस्र योजन मोटा है। वहाँ एक प्रकार के असुर सुगार जाति के देवों का निवास स्थान है।¹⁹⁹

तृतीय तीय बहुल नामक भाग भी अस्सी सहस्र योजन मोटा है। दुःखों से परिपूर्ण इन नरक भागों में नारकी लोग निवास करते हैं और एक दूसरे को प्रताड़ित करते रहते हैं।²⁰⁰

प्रथम नरक में तेरह नरक प्रसार हैं।²⁰¹ तथा तीस लाख पृष्ठों में ये परिपूर्ण विलीन हैं।²⁰² ये नरक तीन प्रकार के हैं—इन्द्रक, श्रेणीवद्ध एवं धर्मप्रकीर्णक। यहाँ पर अनेक प्रकार के अभित नारकी जीव निवास करते हैं।²⁰³

प्रथम नरक के जीवों का दिन प्राण्य साल दण्ड एवं छह अंगुल अधिक तीन साथ है। इस स्थान में शोक एक शरीर होता है।²⁰⁴

प्रथम नरक में उत्कृष्ट आयु का प्रमाण एक सगर एवं जघन्य आयु दस हजार वर्ष है।²⁰⁵

प्रथम नरक की पृथ्वी का नाम रत्नप्रभा है।²⁰⁶ जिसकी प्रभा, चित्र आदि रत्नों की प्रभा के समान है, वह रत्न प्रभा भूमि है।²⁰⁷

198 यदुः पान. 5/15

199 वही, पान-86

200 वही 5/16/1-3

201 वही 5/16/7

202 वही 5/16/11

203 वही 5/16/15-16

204 वही, पान-87

205 वही 5/17/4,8

206 वही, पान-88

207 द्र. सवार्थसिद्धि : पूज्यपाद : पं. फूलचन्द्र शास्त्री व्याख्या टीका, 367 पृ. 147

प्रथम नरक में नारकियों का अधिष्ठान केवल एक योजन प्रमाण कहा गया है²⁰⁸

अमनस्क जीव प्रथम नरक तक उत्पन्न होता है²⁰⁹ वहाँ से निकलकर जीव शोभा युक्त तीर्थकरत्व को भी प्राप्त करता है और चौतीस अतिशयों से परिपूर्ण आठवीं पृथ्वी प्राप्त कर वह धन्य हो जाता है²¹⁰ वे नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र और जयलक्ष्मी के धारी तथा छह खण्डधारी चक्रेश्वर पद प्राप्त करते हैं। बाधा से रहित होते हैं तथा सुगति को साधने के कारण उनका नरकों में आगमन नहीं होता²¹¹ इस नरक में उष्ण वेदना होती है²¹²

द्वितीय वंश नरक :

द्वितीय नरक वंश नाम वाला है²¹³ इसमें ग्यारह नरक प्रस्तार हैं, जिनमें नारकियों के कुल दुःखों से परिपूर्ण रहते हैं²¹⁴ इसमें दुखों को देने वाले पच्चीस लाख बिल हैं²¹⁵ ये बिल इन्द्रक, श्रेणीबद्ध एवं कुसुमप्रकीर्णक के भेद से तीन प्रकार के हैं, जहाँ पर नाना प्रकार के अमित नारकी जीव निवास करते हैं²¹⁶ इस नरक के जीवों का शरीर चौदह दण्ड एवं बारह अंगुल अधिक छह हाथ है²¹⁷ इस नरक में उत्कृष्ट आयु का प्रमाण तीन सागर है²¹⁸ तथा जघन्य आयु एक सागर प्रमाण कही है²¹⁹ इस नरक की भूमि का नाम शर्कराप्रभा है।²²⁰ जिसकी प्रभा शर्करा के समान हो, वह शर्कराप्रभा भूमि है²²¹ इस नरक में

208 रङ्गः पास. 5/18/2

209 वही, 3/18/6

210 वही, 5/18/15-16

211 वही, वृत्त-89

212 सर्वार्थसिद्धि : पूज्यपाद, व्याख्या टीका 371, पृ. 150

213 पास. 5/16/4

214 वही 5/16/7

215 वही 5/16/11

216 वही 5/16/15-16

217 वही 5/17/1

218 वही 5/17/4

219 वही 5/17/8

220 वही, वृत्त-88

221 सर्वार्थसिद्धि : पूज्यपाद : पं. फूलचन्द्र शास्त्री व्याख्या टीका 367, पृ. 147

नारकियों का अवधिज्ञान केवल आधा कोस कम एक योजन है।²²² मार्जार आदि दुखपूर्ण जीव इसी नरक में जन्म लेते हैं।²²³

इस (वंशा) नरक से निकलकर जीव शोभायुक्त तीर्थकरत्व को प्राप्त करता है। उनका पुनः नरक में आगमन नहीं होता, वे नारायण, बलभद्र, प्रतिनारायण, चक्रेश्वर आदि पद को प्राप्त करते हैं, बाधरहित होते हैं।²²⁴ इसमें उष्णवेदना होती है।²²⁵

तृतीय सेला नरक :

तीसरा नरक जिन भगवान ने सेला नाम वाला बताया है।²²⁶ इसमें नौ नरक प्रस्तार²²⁷ तथा पन्द्रह लाख बिल हैं।²²⁸ ये बिल इन्द्रक, श्रेणीबद्ध एवं कुसुम प्रकीर्णक के भेद से तीन प्रकार के हैं, जिसमें नाना प्रकार के अमित नारकी जीव निवास करते हैं।²²⁹ इस नरक के जीवों का देह प्रमाण इक्कीस दण्ड एवं अठारह अंगुल अधिक नौ हाथ है।²³⁰ आयु का उत्कृष्ट प्रमाण सात सागर है।²³¹ तथा निकृष्ट आयु तीन हजार वर्ष है।²³² इस (सेला) नरक का द्वितीय भाग बालु प्रभा है।²³³ इसकी प्रभा बालु की प्रभा के समान है, अतः यह भूमि बालु प्रभा कही गई है।²³⁴ इस नरक के नारकियों का अवधि ज्ञान केवल तीन कोस प्रमाण है।²³⁵ इस नरक में पापी विहङ्गम जन्म लेते हैं, जहाँ वे निरन्तर घातों से सन्तप्त होते हैं।²³⁶ तृतीय नरक से निकलकर जीव शोभायुक्त तीर्थकरत्व को

222 रङ्गू ; पास. 5/18/3

223 वही 5/18/6

224 वही 5/18 एवं घत्ता-89

225 सर्वार्थसिद्धि, व्याख्या टीका 371 पृ. 150

226 पास. 5/16/4

227 वही 5/16/8

228 वही 5/16/12

229 वही 5/16/15 16

230 वही 5/16/17

231 वही 5/17/4

232 वही 5/17/9

233 वही, घत्ता -88

234 सर्वार्थसिद्धि: हिन्दी व्याख्या-367. पृ. 147

235 पास. 5/18/3

236 "तिग्गइ जीतं विहंगम पाविय, णिच्च जत्थ घायहिं संताविय ॥" वही 5/18/7

प्राप्त करता है तथा पुनः नरक में आगमन नहीं होता।²³⁷ चतुर्थ नरक अञ्जना-
नाम वाला है, इसमें सात नरक प्रस्तार और दस लाख बिल हैं। ये बिल भी तीन
एकवार के होते हैं इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और कुसुमप्रकीर्णक। इनमें नाना प्रकार के
अमित नारकी जीव निवास करते हैं।²³⁸ इस नरक में जीवों की देह का प्रमाण
बयालीस दण्ड एवं छत्तीस अंगुल अधिक अठारह हाथ है।²³⁹ इस नरक के
नारकियों की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण दस सागर²⁴⁰ तथा निकृष्ट आयु का प्रमाण
सात हजार वर्ष है।²⁴¹ इस नरक की पृथ्वी का अपर नाम पङ्कप्रभा है।²⁴²
जिसकी प्रभा कोचड़ के समान है, वह पङ्कप्रभा भूमि है।²⁴³ इस नरक के
नारकियों का अवधिज्ञान प्रमाण ढाई कोस है।²⁴⁴ इसमें विहङ्गम जन्म लेते
हैं।²⁴⁵ चतुर्थनरक से लौटकर जीव मोक्ष पद पाता है किन्तु नियम से तीर्थङ्कर
नहीं होता।²⁴⁶ इस नरक में तीव्र उष्णता है, किन्तु पापवश जीव उस सब को
सहता है।²⁴⁷

पञ्चम अरिष्टा नरक :

पञ्चम नरक अरिष्टा नाम वाला कहा गया है। इसमें पाँच नरक प्रस्तार तथा
तीन लाख बिल हैं। ये बिल इन्द्रक, श्रेणीबद्ध एवं कुसुमप्रकीर्णक के भेद से तीन
प्रकार के हैं, जहाँ पर नाना प्रकार के नारकी जीव निवास करते हैं।²⁴⁸ इस
नरक के जीवों का देह प्रमाण चौरासी दण्ड एवं बहन्नर अंगुल अधिक छत्तीस
हाथ है।²⁴⁹ इस नरक के नारकियों की उत्कृष्ट आयु सत्रह सागर²⁵⁰ तथा निकृष्ट

237 पास. 5/18/15

238 वही 5/16

239 वही 5/17/2

240 वही 5/17/5

241 वही 5/17/9

242 पास. पत्ता 88

243 सर्वार्थसिद्धि, व्याख्या-367, पृ. 147

244 पास. 5/18/4

245 वही 5/18/8

246 "चतुर्थिहिं आविड सिवपड पावड, तित्थथरु वि णउणियमै भावइ॥" वही 5/18/14

247 वही 5/19/1

248 वही 5/16

249 वही 5/17

250 वही 5/17/5

आयु दुखों से पूर्ण दस सागर होती है।²⁵¹ इस नरक पृथ्वी का अपर नाम धूमप्रभा है।²⁵² जिसकी प्रभा घुँवा के समान है, वह धूमप्रभा भूमि है।²⁵³

पाँचवें नरक में अविधिज्ञान का प्रमाण गणधरों ने दो कोस माना है।²⁵⁴ दुखों के सङ्गम सिंह इस नरक में उत्पन्न होते हैं।²⁵⁵ इस नरक में तीव्र शीत और उष्णता है।²⁵⁶ तीव्र शीत और उष्णता के कारण जीव अत्यन्त दुखों को भोगते हैं। पाँचवें नरक से निकल कर जीव (मनुष्य होकर) व्रत तप करता है, किन्तु वहाँ भी वह मोक्ष प्राप्त नहीं करता।²⁵⁷

षष्ठम मघवी नरक :

छठवें नरक का नाम मघवी कहा गया है। इसमें तीन नरक प्रस्तार तथा पाँच कम एक लाख अर्थात् 95000 बिल हैं। ये बिल इन्द्रक, श्रेणीबद्ध एवं कुसुमप्रकीर्णक के भेद से तीन प्रकार के हैं तथा यहाँ पर नाना प्रकार के अमित नारकी जीव निवास करते हैं।²⁵⁸ इस नरक के जीवों का देह प्रमाण एक सौ अड़सठ दण्ड एवं एक सौ चत्वारसीस अंगुल अधिक बहतर हाथ है।²⁵⁹ इस नरक के नारकीयों की उत्कृष्ट आयु बाईस सागर²⁶⁰ तथा निकृष्ट आयु सत्रह सागर होती है।²⁶¹ इस नरक की पृथ्वी का अपर नाम तमःप्रभा है।²⁶² जिसकी प्रभा अन्धकार के समान है, वह तमःप्रभा भूमि है।²⁶³ छठवें नरक में अविधिज्ञान का क्षेत्र डेढ़ कोस पर्यन्त माना गया है।²⁶⁴ स्त्री, मत्स्य इसी नरक में

251 पास. 5/17/9

252 वही, पन्ना 88

253 सर्वार्थसिद्धि : पं. फूलचन्द्र शास्त्री, टीका, हिन्दी व्याख्या-367, पृ. 147

254 पास. 5/18/4

255 वही 5/18/8

256 वही 5/19/2

257 वही 5/18/13

258 वही 5/16

259 वही 5/17

260 वही 5/17/5

261 वही 5/17/10

262 वही पन्ना-88

263 सर्वार्थसिद्धि (पं. फूलचन्द्र शास्त्री, टीका हिन्दी व्याख्या) पृ. 147

264 पास. 5/18/5

उत्पन्न होकर पूर्वार्जित कर्मों को भोगते हैं।²⁶⁵ इस नरक से लौटकर जीव मनुष्यत्व प्राप्त करता है, किन्तु उसे चारित्र्य की प्राप्ति नहीं होती।²⁶⁶

सप्तम माधवी नरक :

सप्तम नरक माधवी कहा गया है। इसमें एक नरक प्रस्तार है, जिनमें नारकियों के कुल दुखों से पूर्ण रहते हैं, तथा पाँच निकृष्ट बिल हैं। ये बिल इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और कुसुमप्रकीर्णक के भेद से तीन प्रकार के हैं।²⁶⁷ इस नरक के जीवों का देह प्रमाण तीन सौ छत्तीस दण्ड एवं दो सौ अठासी अंगुल अधिक एक सौ चबालीस हाथ है।²⁶⁸ इस नरक के नारकियों की उत्कृष्ट आयु तैंतीस सागर²⁶⁹ एवं जघन्य आयु बाईस सागर की है।²⁷⁰ इस नरक को काजल के समान काला, घोर अन्धकार पूर्ण तथा दुःखों से व्याप्त कहा गया है। इस माधवी नरक की पृथ्वी का अपर नाम महातमः प्रभा है।²⁷¹ जिसकी प्रभा प्रगाढ़ अन्धकार के समान है, वह तमःतमप्रभा भूमि है।²⁷² इस नरक में नारकियों का अवधिज्ञान केवल एक कोस पर्यन्त प्रमाण कहा गया है।²⁷³ पुरुष तथा भक्त्य इस नरक में पूर्वार्जित कर्मों को भोगते हैं।²⁷⁴ इस नरक के दुःख सहकर जो जीव वहाँ से मरकर लौटता है, वह तिर्यञ्च होता है। वह मरकर पुनः नरक में ही जाता है और पूर्वजन्म का स्मरणकर दुःख सहता है।²⁷⁵

छठवें एवं सातवें नरक की विविध वेदनायें :

छठवें एवं सातवें नरक में तीव्र शीत होती है। यदि वहाँ एक लाख योजन प्रमाण लोहे का गोला डाल दें तो वह भी तीव्र ठण्णता के कारण क्षणमात्र में गल जाता है और तीव्र शीत से स्थानान्तर में विलीन हो जाता है। वहाँ क्षेत्रोद्भव

265 पास. 5/18/9

266 वही 5/18/12

267 वही 5/16

268 वही 5/17

269 वही 5/17/6

270 वही 5/17/10

271 वही, पृष्ठा-88

272 सर्वार्थसिद्धि-पूज्यपाद : पं. फूलचन्द शास्त्री टीका, हिन्दी व्याख्या 367, पृ. 147

273 पास. 5/18/5

274 वही 5/18/9

275 सत्तमणरयहँ जो आवेष्पिणु तिरिउ होइ पुणु दुक्खुसहेष्पिणु .

गरइ पुणु वि सो जाइ मरेष्पिणु, दुक्खु सहइ चिरजम्मु सहेष्पिणु ॥ वही 5/18/10-11

असुरोद्भव, मानसिक एवं कायोद्भव वेदनाओं से भयभीत हुए नारकी परस्पर में एक दूसरे का हनन करते हैं और वहाँ निमिष भर के लिए भी उन्हें सुख प्राप्त नहीं होता। संडासी से नारकियों के मुँह फाड़कर उनमें लौहा गलाकर भर देते हैं, उनसे शरीर गल जाता है, किन्तु फिर क्षणमात्र में उसी प्रकार मिल जाता है, जिस प्रकार पोर के बिन्दु निरन्तर संगठित हो जाते हैं। क्षेत्र की विशेषता के कारण पूर्व बैर को जानकर नारक वृन्दों के द्वारा उनका दमन किया जाता है। उनको धगधगाते हुए (दग्ध) अङ्गारों के समान तप्त लौह स्तम्भों का आलिङ्गन कराकर वे कहते हैं कि 'रे दुष्ट! तूने पूर्वकाल में छल से परस्त्री का आलिङ्गन किया था।' अन्य दूसरे शाल्मलि वृक्ष लाकर तृण अथवा वृक्ष डालियों के समान शरीर एवं सिर तहस-नहस कर डालते हैं। यदि वहाँ से वह किसी प्रकार छूट भी जाता है, तो वह तीव्र प्यास से घुटने लगता है। फिर उनके सिर पर हथौड़ों के प्रहार से आघात करते हैं और उन्हें तप्त तेल के कड़ाहों में डाल देते हैं, जिससे उन्हें कुम्भीपाक में पकाए जाने के समान जलन के दुःख होते हैं।²⁷⁶

इस प्रकार जीव अनेक प्रकार के दुःखों को भोगता है। वहाँ (नरक में) जन्म लेकर जीव किस प्रकार सुख प्राप्त कर सकता है।

मध्य लोक का वर्णन :

मध्य लोक एक रज्जू प्रमाण विस्तारवाला कहा गया है, जो द्वीपों एवं सागरों से युक्त है। वे द्वीप एवं सागर जिनेन्द्र ने असंख्य कहे हैं। अपने आयाम में वे दुगुने-दुगुने बताये गये हैं। उसके मध्य में द्वीपों में प्रधान तथा उनके राजा के समान जम्बू द्वीप है। वह एक लाख योजन विशाल प्रमाण वाला है, यद्यपि वह आकार में सबसे लघु है, परन्तु गुणों में ज्येष्ठ है।²⁷⁷

भरत क्षेत्र का वर्णन :

मेरुपर्वत की दक्षिणी दिशा में धनुषाकार भरतक्षेत्र है। उसमें ऋषि लोग भ्रमण किया करते हैं। उसका प्रमाण 526 योजन से छह कला अधिक है अर्थात् भरत क्षेत्र का प्रमाण कुछ अधिक है; ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है। उसके मध्य में सुन्दर विजयार्ध पर्वत है, जो पच्चीस योजन ऊँचा है और पचास योजन विस्तार वाला है, जो दीर्घत्व के प्रसार में सागर तक चला गया है।

276 णस. 5/19

277 णस. 5/27/1-4



महीतल से दस योजन ऊपर इसकी दो श्रेणियाँ विद्याधर समूह से बसी हुई हैं। दक्षिण दिशा की श्रेणी में पचास करोड़ तथा उत्तर श्रेणी में साठ करोड़ सुखकारी पुर स्थित हैं और प्रत्येक पुर में करोड़ गाँव हैं। प्रत्येक गाँव में खेचर राजा राज्य किया करते हैं। उस पर्वत के शिखर पर नौ पूर्णभद्र नामक कूट हैं, जिन्हें देखकर देवगण भी पराभव का अनुभव करते हैं।²⁷⁸

सरोवरों एवं गुफाओं को पूर्ण करने वाली गंगा एवं सिन्धु नदियों द्वारा भरत क्षेत्र के छह खण्ड किए गये हैं। (उनमें से दक्षिण भरत के तीन खण्डों में से मध्य का खण्ड आर्यखण्ड है और शेष) पाँच खण्डों में भयानक म्लेच्छों का निवास है। जिन भगवान का धर्म वहाँ नहीं जाता।²⁷⁹

आर्यखण्ड धर्म एवं कर्म के भेदों से समृद्ध है। उसकी उत्तरदिशा में सुखकारी हिमवान्-हिमवन्त नामक कुलाचल है। उस कुलाचल का विस्तार 1052^{12/19} योजन और ऊँचाई एक सौ योजन है। अपने आयाम में यह सागर पर्यन्त विस्तृत है, उसके ऊपर ग्यारह सुखकारी कूट हैं, जिनमें व्यन्तरदेव निवास करते हैं। उसके ऊपरी शिखर पर पद्म नामक महाहृद है, जिसका आयाम एक सहस्र योजन है। उसकी चौड़ाई इसकी आधी और गहराई दस योजन है। उसके मध्य में एक पुण्डरीक कहा जाता है, जो एक योजन प्रमाण है और कभी भी विलीन नहीं होता। उसकी कर्णिकार्यें कनकवर्ण की कही गई हैं, जिनका प्रमाण एक-एक कोस का है और जो उत्तम तेज से दीप्त हैं। उस पर श्री नामक देवी अपने-अपने परिजनो के साथ निवास करती है और मनोवांछित सुखों का विलास करती है।²⁸⁰ गङ्गा, सिन्धु एवं रोहित आदि श्रेष्ठ नदियाँ स्वयं पद्महृद से निकली हैं। वे गङ्गा आदि नदियाँ सवा छह योजन विस्तृत तथा उससे दस गुने लम्बे समुद्र में गिरती हैं।²⁸¹ सिन्धु नदी पश्चिम समुद्र में गिरती है, विजयार्ध उनका मित्र है। इससे (इस प्रकार गङ्गा, सिन्धु एवं विजयार्ध पर्वत से विभक्त होकर) भरतक्षेत्र के छह खण्ड हो जाते हैं। हिमवान् पर्वत की उत्तर दिशा में हिमवत् नाम का क्षेत्र है, जो कल्प वृक्षों से युक्त है। 1052^{5/12} योजन प्रमाण वाला हिमवत् नामक पर्वत है। यही हिमवन्त क्षेत्र का भी विस्तार है और समुद्र

278. पास. 5/27/5-12

279. वही धत्ता 98

280. पास. 5/28

281. वही धत्ता 99

तक दीर्घ है। वहाँ मनुष्यों की आयु एक पल्य एवं शरीर का प्रमाण एक गव्यूति है।

वे वहाँ मनोवाञ्छित भोगों को भोगते हैं, वहाँ न शीत है, न उष्णता और न रोग-शोक। वे आँवले के बराबर ही आहार ग्रहण करते हैं तथा कभी भी मलमूत्र का त्याग नहीं करते है।²⁸² वह भोग भूमि जघन्य होने पर भी श्रेष्ठ सुखों की खानि है। रोहित एवं रोहितास्या नाम की चञ्चल जल वाली दो नदियाँ हैं, उनका कहीं स्खलन नहीं होता।²⁸³ उन दोनों नदियों का प्रथम निर्गमन मुख साढ़े बारह योजन कहा गया है, फिर क्रम-क्रम से दस गुनी विस्तीर्ण होकर वे दोनों नदियाँ पूर्व एवं अपर सागरों को प्राप्त होती हैं।²⁸⁴

हैमवत् क्षेत्र की उत्तर दिशा में दो सौ योजन ऊँचा एवं अत्यन्त सुन्दर महा हिमवन्त नाम का कुलाचल है, जो दीर्घता में समुद्र तक फैला है। जो 4210^{10/19} योजन प्रमाण है। यह उस पर्वत का विस्तार है, उस पर आठ कूट कहे गये हैं। पुनः वहाँ पद्म नामक महाहृद है, जिसका अवगाह बीस योजन कहा गया है। उसका आयाम दो सहस्र तथा विस्तार उससे आधा है। उसके मध्य में वज्रमय दो योजन विस्तार वाला कमल है, जिसके पत्र दो योजन विस्तीर्ण हैं। उसकी कर्णिका भी दो योजन प्रमाण है, जिस पर "ही" नाम की देवी सदा निवास करती है। उस पर्वत के सरोवर से उत्तर दिशा में रोहित एवं हरित नदियाँ निकली हैं। वहाँ हरिवर्ष नाम का पवित्र क्षेत्र है, जहाँ के निवासी मनुष्य स्वभाव से ही सरल चित्त होते हैं। वहाँ मनुष्यों की आयु दो पल्य की होती है और उनके शरीर का प्रमाण दो गाह प्रमाण होता है। उनका भोजन एक अक्ष (बहेड़ा) प्रमाण होता है। वे मलमूत्र विसर्जन नहीं करते, फिर भी उनका शरीर नीरोग बना रहता है।²⁸⁵

8421-¹/₁₉ योजन हरि वर्ष क्षेत्र का प्रमाण है। वह कल्पवृक्षों का स्थान है और वहाँ समस्त मध्यम भोगभूमियाँ²⁸⁶ हैं। लम्बाई में वह रौद्र जलचरों से युक्त पूर्व एवं अवर समुद्र से सटा हुआ है। उस क्षेत्र में हरित् एवं हरिकान्ता नामक दो

282 पास. 5/29

283 वही घन- 100

284 वही 5/30/1 2

285 पास. 5/30/3 14

286 वही पास-101

नदियाँ बहती हैं, जो मूल में पच्चीस योजन हैं और आगे बहकर क्रमशः उससे दस गुनी स्थूल हो जाती हैं। वे नदियाँ पूर्व एवं पश्चिम समुद्रों में गिरती हैं।

हरि क्षेत्र की उत्तर दिशा में निषध पर्वत है। वह हरिक्षेत्र से विस्तार में दुगुना और ऊँचाई में चार सौ योजन है। उसके ऊपर नौ कूट बने हुए हैं। वहीं तिगिञ्छ नामक महा सरोवर कहा गया है। उसका अवगाह, विस्तार एवं लम्बाई महापद्म से दुगुनी है। उसमें कर्णिका वाले पुष्कर कहे गए हैं, जिन पर "धृति" नामक पवित्र देवी निवास करती हैं।

हरिकान्ता एवं सीता; ये दोनों पवित्र एवं शाश्वत नदियाँ तिगिञ्छ सरोवर से निकलती हैं। वे पचास योजन बहकर आती हैं और वहाँ दोनों मिलकर पूर्व समुद्र में गिरती हैं। उसकी उत्तर दिशा में विदेह क्षेत्र है, जिसकी ४,५५ में सुवर्ण दीप्त मेरुपर्वत है²⁸⁷ उसका आकार हाथी के दाँत के समान और सौन्दर्य चन्द्रमा के समान है। मेरुपर्वत की चारों विदिशाओं से चार पर्वत निकलते हैं। उन चार विदिशाओं में²⁸⁸ सुरकुरु नामक उत्तम भोगभूमि हैं, वहाँ के उत्तम लोग तीन पत्न्य जीते हैं। उनके शरीर तीन गव्यूति प्रमाण होते हैं और वहाँ नितान्त सुखदायक श्रेष्ठ कल्पवृक्ष मनोवाञ्छित सुख देते हैं। सुरकुरु की रचना के समान ही उत्तरकुरु की रचना है। उस विदेह क्षेत्र का प्रमाण 336844/19 योजन कहा गया है।

कनकाचल की पूर्व दिशा में स्थित क्षेत्र पूर्व विदेह और पश्चिम दिशा में स्थित क्षेत्र अपर विदेह कहा जाता है। एक-एक में सोलह-सोलह क्षेत्र हैं। विजयार्द्ध एवं गङ्गा, सिन्धु आदि नदियाँ प्रति क्षेत्र के मध्य में रहती हैं। ये दोनों ही विविध प्रकार के धन-धान्य से पूरित एवं सरस हैं और वहाँ कालचक्षु स्पर्श नहीं करते। दोनों में सदैव चतुर्थकाल रहता है और जिनकाथित धर्म कभी घटता नहीं। उनकी आयु कोटि वर्ष निश्चित है और वह तारतम्य के भेद से कही गई है। वहाँ तीर्थंकरों तथा उसी प्रकार चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव एवं प्रतिवासुदेव की कोई संख्या नहीं है और वहाँ धर्म की धुरा के धारक श्रेष्ठ केवलि, ऋषि एवं चारणमुनि उत्पन्न होते रहते हैं। उनके शरीर पाँच सौ धनुष और तेज से दीप्त एवं पर्वत के समान धैर्यवान् होते हैं।

287 पास. 5/31

288 वही घत्ता-102



उत्तर दिशा में जो नील कुलाचल हैं, वह भी सिद्धशिला के समान सुखकारी हैं, इसके बाद रुक्मि एवं शिखरी पर्वत जानिए, वहाँ केशरी और महापुण्डरीक (सरोवरों) को मानें। वहीं पुण्डरीक सरोवर भी है। इन तीनों (सरोवरों) को ज्ञानीजन "नदियों का जन्मदाता" कहते हैं।²⁸⁹

दक्षिण देश में रम्यक्, हैरण्यवत् तथा ऐरावत नामक क्षेत्र एवं सीतोदा प्रधान नदियाँ हैं।²⁹⁰

लवणोदधि (द्वीप) का वर्णन :

लवणोदधि नामक सागर जम्बूद्वीप से दुगुना प्रमाण वाला वर्णित है, जिसका विस्तार दो लाख योजन कहा गया है और जो दिशाओं एवं विदिशाओं को बड़वानल से युक्त करता है। द्वीप के बाहर एक विशाल वज्रमयी वेदिका सुशोभित है। उसकी बारह योजन की वीथी है, जिसका मध्यभाग एक आठ योजन वर्णित है। उसका ऊपरी भाग चार योजन और ऊँचाई आठ योजन प्रमाण है, उसकी दोनों दिशाओं में अखण्ड उपवेदिकायें हैं और वह देवारण्य (पवित्र उपवन) से सुशोभित है।²⁹¹

धात की खण्ड द्वीप का वर्णन :

लवणोदधि के बाद धातकीखण्ड (द्वीप) है, जो लवणोदधि से दुगुना है। यह चार लाख योजन है। इसके पूर्व और पश्चिम दिशा में दो सुमेरुपर्वत हैं और जिन पर प्रत्येक दिशा में स्वर्ण वर्ण वाले देवता क्रीड़ाये किया करते हैं। प्रत्येक से सम्यन्धित चौँतीस क्षेत्र हैं और उतने ही विजयार्थ हैं। छह कुलाचल और चौँदह नदियाँ एवं सरोवर हैं। इन आर्य भूमियों में उत्तम मनुष्य विलास करते हैं।²⁹²

कालोदधि द्वीप का वर्णन :

कालोदधि नामक द्वीप धातकी खण्ड से दोगुना अर्थात् आठ लाख योजन विस्तार वाला है।²⁹³

289 पास. 5/32

290 वही घत्ता-103

291 वही 5/33 से 6

292 वही 5/33/7 से 11

293 वही 5/33/13

पुष्कराब्द द्वीप का वर्णन :

पुष्कराब्द द्वीप सोलह लाख योजन विस्तार वाला है तथा मानुषोत्तर पर्वत से विभक्त है। वह वलयाकार से उसके मध्य में स्थित है, इसलिये इस द्वीप का नाम पुष्कराब्द द्वीप कहा गया है। इसके मध्य में पूर्व एवं अपर दोनों दिशाओं में मेरु (पर्वत) स्थित हैं, जो देवताओं को प्रिय हैं²⁹⁴

सूर्य एवं चन्द्रमा का प्रमाण²⁹⁵ :

जम्बूद्वीप में दो-दो सूर्य एवं चन्द्रमा होते हैं। लवण समुद्रों में चार-चार सूर्य एवं चन्द्र, घातकी खण्ड में बारह-बारह सूर्य एवं चन्द्र, कालोदधि में ब्यालीस-ब्यालीस सूर्य चन्द्र और पुष्कराब्द द्वीप में बहत्तर-बहत्तर सूर्य एवं चन्द्र हैं। ये निरन्तर मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं और अढ़ाई द्वीप के अन्धकार का नाश करते हैं।

जम्बूद्वीप में छत्तीस ध्रुव तारे, रौद्र जल वाले लवणसमुद्र में एक सौ उन्तालीस, घातकी खण्ड में एक हजार दस, कालोदधि में इकतालीस हजार एक सौ बीस और पुष्कराब्द द्वीप में त्रेपन हजार दो सौ तीस ध्रुव तारे हैं, जो कि निश्चल हैं।

अढ़ाई द्वीप के बाहर भी अन्धकार का नाश करने वाले चन्द्र, सूर्य एवं नक्षत्र घण्टाकर रूप में हाथी की गति के समान विचरण करते हुए जहाँ स्वयम्भूरमणसागर पार होता है, वहाँ तक स्थित हैं।

ऊर्ध्व लोक :

मेरु से ऊपर लोक के अन्त के क्षेत्र को ऊर्ध्व लोक कहते हैं। इसके दो भेद हैं : कल्प और कल्पातीत। जहाँ इन्द्र, सामानिक आदि की कल्पना होती है, वे कल्प हैं। जहाँ यह कल्पना नहीं है, वे कल्पातीत हैं²⁹⁶

स्वर्ग के कल्पभाग में रहने वाले देव (इन्द्र) कहलाते हैं और कल्पातीत भाग में रहने वाले अहमिन्द्र कहलाते हैं।

294 पास. 5/33/15 मे 18.

295 वही 5/34

296 अ. तीर्थङ्कर महावीर जीग इनकी आचार्य परम्परा, खण्ड 1 पृ. 406



देव चार निकाय के होते हैं²⁹⁷ भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक²⁹⁸। अब यहाँ उन चारों प्रकार के देवों का वर्णन किया जा रहा है

भवनवासी का अर्थ :

जिनका स्वभाव भवनों में निवास करना है, वे भवनवासी कहलाते हैं²⁹⁹

भवनों का स्थान :

रत्नप्रभा के पंकवहुल भाग में असुर कुमारों के भवन हैं और खर पृथ्वी भाग में ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर शेष नौ प्रकार के कुमारों के भवन हैं³⁰⁰

भवनवासी देवों के भेद :

भवनवासी देव दस प्रकार के होते हैं :

1. असुर कुमार, 2. नागकुमार, 3. द्वीप कुमार, 4. उदधि कुमार, 5. विद्युत् कुमार, 6. स्तनित कुमार, 7. दिक् कुमार, 8. हेमकुमार, 9. अग्निकुमार, 10. वायु कुमार³⁰¹

भवनवासी देवों के श्री चिह्न :

भवनवासी देवों के मुकुट में क्रमशः चूड़ामणिरत्न, फण, गरुड़, गज, मकर, स्वस्तिक, वज्र, सिंह, कलश और घोड़े ये श्री³⁰² चिह्न होते हैं।

भवनवासियों के भवनों की कुल संख्या :

भवनवासी देवों के भवनों की कुल संख्या सात करोड़ एवं बहत्तर लाख है। वहाँ के जिन भवनों की संख्या भी उतनी ही है³⁰³

297 "देवाश्रतुर्गणिकाया" । तत्त्वार्थसूत्र 4/11

298 सर्वार्थसिद्धि : पूज्यापाद, संस्कृत टीका, अध्याय- 4, सूत्र- 1

299 "भवनेषु वसन्तीत्येवंशीला भवनवासिनः ॥- सर्वार्थसिद्धि, संस्कृत टीका सं. 461 पृ. 178

300 वही पृ. 178

301 असुरकुमारः पाय दीर्घोवहिः विज्जु- शणित-दिस अग्नी-पुगु तन्नि।
हेमकुप रः वाउ-तुलड थिर भवणवाम दहए जाणाहि किर ॥ रहधू : पास. 5/20/2-3

302 चूडामणि फणि गरुड-गरुडं भयरु वट्टमणं वज्जणइं।
हरि-कलसंकु-तुरउ ए जाणाहु. भावाणार्ह सिरचिण्हइ माणहु ॥ वही 5/20/5-6

303 सत्तकोडिवाह तरिलक्खइं, तेत्तिवाइं णभवणहु संखहि ॥ वही 5/20/4



भवनवासी देवों के शरीर का प्रमाण :

जिनेन्द्र देव ने भवनवासी देवों में से असुरकुमार देवों के सुन्दर शरीर का प्रमाण पच्चीस धनुष कहा है। शेष नौ भवनवासी देवों के शरीर का प्रमाण दस-दस दण्ड है।³⁰⁴

भवनवासी देवों का आयु प्रमाण :

भवनवासी देवों में से असुर कुमारों की आयु (अल्फुष्ट) एक सागर प्रमाण नाग कुमारों की तीन पल्य, हेम कुमारों की अढ़ाई पल्य तथा द्वीप कुमारों की सुन्दर दो पल्य की आयु है। शेष भवनवासी देवों की आयु का प्रमाण पूर्वपेक्षा आधा-आधा पल्य कम-कम अर्थात् डेढ़ पल्य प्रमाण जानना चाहिए।³⁰⁵ तथा जघन्य आयु की स्थिति दस हजार वर्ष मानी है।³⁰⁶

भवनवासी देवों की पट्ट देवियाँ और उनके रूप :

सभी भवनवासी देवों की पाँच-पाँच पट्ट देवियाँ कही गई हैं। असुर-कुमार-त्रिक में उनकी पट्ट देवियाँ रति क्रीड़ा के आवेग से आठ-आठ हजार रूप बनाती हैं। शेष देवों की पट्टदेवियाँ छह-छह सहस्र रूप बनाती हैं और अद्भुत सुखों को भोगती हैं।³⁰⁷

अवधिज्ञान का क्षेत्र :

सभी भवनवासी देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र असंख्य कोटि योजन प्रमाण होता है।³⁰⁸

व्यन्तर देव :

जिनका नाना प्रकार के देशों में निवास है, वे व्यन्तर देव कहलाते हैं।³⁰⁹ वे किन्नर, किंपुरुष, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत एवं पिशाच के भेद से आठ प्रकार के हैं। उनके निवास स्थान तीन प्रकार के हैं-पुर, आवास और भवन। ऊपर वालों

304 असुरह देह पमाणु वि दिददुड, धणुह पंचवीसह सुमणिहूड ।
से साहँ वि दहंदट पमाणुड, मासजिणैदँ णाणँ जाणिउ ॥ पास. 5/20/7-8

305 वही, 5/20/9-11

306 सर्वार्थसिद्धि 4/37 पृ. 194

307 रङ्गधू : पास. 5/20/12-14

308 वही 5/20/15

309 “विविधदेशान्तराणि येषां निवासास्ते व्यन्तराः ।

सर्वार्थसिद्धि- संस्कृत टीका 463, पृ. 179

को आवास कहा जाता है, नीचे वालों को भवन के नाम से जाना जाता है और मध्य प्रदेश में जो निलय है, उन्हें पुर कहा गया है, सभी अवधिज्ञान से प्रकाशित होते हैं। कोई तो गिरि कन्दराओं अथवा विवरों में निवास करते हैं और कोई सुरगिरि के शिखरों पर धवलगृहों (महलों) में, कोई आकाश में विचरण करते हैं तो कोई नन्दन वन में विहार करते हैं और कोई तरु शिखरों पर निवास करते हैं। व्यन्तरो के गृह सरकण्डों के वन में होते हैं।³¹⁰

सभी व्यन्तर देवों के शरीर का प्रमाण दस धनुष कहा गया है। उनकी आयु (उत्कृष्ट) एक पल्य से कुछ अधिक होती है³¹¹ तथा जघन्य आयु दस सहस्र वर्ष हैं³¹²

ज्योतिष्क देव :

ज्योतिषी देव (ज्योतिष्क देव) पाँच प्रकार के हैं-सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे³¹³ ये सब पाँचों प्रकार के देव ज्योतिर्मय हैं, इसलिए इनकी "ज्योतिषी" यह सामान्य संज्ञा सार्थक है।³¹⁴

ज्योतिष्क देव आकाश में पृथ्वी से सात सौ नब्बे (790) योजन ऊँचाई छोड़कर है, उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि वे जिन भगवान के निष्क्रमणकाल में देवताओं के मेरु पर्वत पर जाते समय अपने क्रम से जाते हैं।

आयु एवं शरीर प्रमाण :

चन्द्रमाओं की आयु एक लाख अधिक पल्य प्रमाण जानना चाहिए। सूर्यों की आयु एक हजार अधिक एक पल्य प्रमाण है, तथा शुक्रों की आयु सौ अधिक एक पल्य है। पुनः बृहस्पतियों की आयु पल्य प्रमाण है। शेष बुध, मङ्गल एवं शनि की आयु आधा-आधा पल्य है और तारों का आयु प्रमाण पल्य का चौथाई भाग है।

अपनी कान्ति से अन्यकार को नाश करने वाले इन ज्योतिषियों के शरीर का प्रमाण सात-सात धनुष है।

310 रङ्गधू : पास. 5/21

311 रङ्गधू : पास. पञ्चा-92

312 वही 5/22/1

313 "ज्योतिष्का : सूर्याचन्द्रमसग्रहनक्षत्रप्रकीर्णक तारकाक्ष ॥

सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-4 सूत्र 12, पृ. 179

314 वही, हिन्दी व्याख्या, पृ. 179

ज्योतिष्क देवों के विमानों का प्रमाण :

चन्द्रमा का विमान एक योजन प्रमाण है। उससे कुछ कम सूर्य विमान का प्रमाण है। शुक्र का विमान एक कोस है तथा बृहस्पति का विमान उससे एक चौथाई कम है। शेष ज्योतिष्क देवों के विमानों का प्रमाण आधा एवं चौथाई कोस माना गया है।

तारों की दूरी में भेद :

तारों की दूरी में तीन भेद होते हैं- उत्तम, मध्यम और जघन्य। तारों में विशेष अन्तर क्रमशः सात, पचास और एक सहस्र माना गया है।

ज्योतिष्क देवों के वाहक :

चन्द्र और सूर्य के विमानों को प्रति दिशा में अर्धरूप से चार-चार सहस्र सिंह, गजेन्द्र, वृषभ एवं तुरंग निरन्तर चलाते रहते हैं। वे यानों के वाहक उन देवताओं के भृत्यदेव हैं। गृहों के विमानों के आठ सहस्र (देव) वाहक हैं और नक्षत्रों के चार सहस्र, तारों के विमानों के दो सहस्र देववाहन कहे गये हैं।³¹⁵

गति :

वे ज्योतिष्क देव आकाश को घेरते हुए इक्कीस अधिक ग्यारह सौ योजन तक कनकाचल को छोड़कर प्रदक्षिणा दिया करते हैं।³¹⁶

स्वर्ग कल्पों का वर्णन :

सुदर्शन पर्वत के ऊपर केश के अग्रभाग प्रमाण अन्तराल पर ऋजु विमान स्थित है। वही प्रमाण ढाई द्वीप का है। उसके सोलह स्वर्ग स्थान हैं: 1. सौधर्म, 2. ईशान, 3. सानत्कुमार, 4. माहेन्द्र, 5. ब्रह्म, 6. ब्रह्मोत्तर, 7. लान्तव, 8. कापिष्ठ, 9. शुक्र, 10. महाशुक्र, 11. शतार, 12. सहस्रार, 13. आनत, 14. प्राणत, 15. आरण और 16. अच्युत। अधस्तन मध्यम और ऊर्ध्व नामों से विहित नौ ग्रेवेयक हैं। उनके ऊपर नवविध अनुत्तर हैं और उसके भी ऊपर श्रेष्ठ सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग है, उसके भी ऊपर ब्रह्मलोक कहा गया है।

पटल संख्या :

सौधर्म और ईशान के इक्कीस विपुल पटल होते हैं। उसके ऊपरी युग्म सानत्कुमार-माहेन्द्र में सात, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में चार, लान्तव-कापिष्ठ में दो,

315 रङ्ग : पास.5/22

316 वही घत्ता-93

शुक्र-महा शुक्र तथा शतार एवं सहस्रार में क्रमशः एक-एक। आनत-प्राणत, आरण और अच्युत में छह-छह तथा ग्रैवेयकों में नौ-नौ पटल होते हैं। नौ अनुत्तर तथा सर्वार्थसिद्धि में क्रमशः एक-एक पटल। इस प्रकार ये त्रेसठ पटल होते हैं।³¹⁷

स्वर्गों की विमान संख्या :

सौधर्म स्वर्ग में बत्तीस लाख विमान, ईशान स्वर्ग में अट्ठाईस लाख गृह विमान³¹⁸ सनत्कुमार स्वर्ग में बारह लाख विमान, माहेन्द्र में आठ लाख विमान, ब्रह्म एवं ब्रह्मोत्तर में चार लाख, लान्तव एवं कापिष्ठ में पचास हजार विमान, शुक्र एवं महा शुक्र में चालीस हजार विमान, शतार एवं सहस्रार में छह सहस्र विमान और आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्ग में क्रमशः सात-सात सौ विमान हैं।

अधस्तन तीनों ग्रैवेयकों में एक सौ ग्यारह विमान, मध्यम ग्रैवेयक में एक सौ सात विमान, ऊपरी ग्रैवेयक में इकानवे विमान कहे गये हैं। नौ अनुदिशों में नौ-नौ नभगामी विमान और नौ अनुत्तरों में पाँच-पाँच विमान कहे गये हैं। ये विमान इन्द्रक, श्रेणीबद्ध एवं कुसुम प्रकीर्णक नाम के तीन भेद वाले हैं।³¹⁹

सोलह स्वर्गों के देवों की आयु :

सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों की आयु का प्रमाण दो सागर, सनत्कुमार एवं माहेन्द्र स्वर्ग के देवों की सात सागर,³²⁰ ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के देवों की दस सागर, लान्तव-कापिष्ठ स्वर्ग के देवों की चौदह सागर, शुक्र-महाशुक्र के देवों की सोलह सागर, शतार-सहस्रार स्वर्ग के देवों की अठारह सागर, आनत-प्राणत स्वर्ग के देवों की बीस सागर, आरण और अच्युत स्वर्ग के देवों की बाईस सागर प्रमाण आयु होती है।

सर्वार्थसिद्धि में तैंतीस सागर की आयु होती है और वहाँ के निवासी देव अहर्निश सुख-समृद्धि का भोग करते हैं।

प्रथम स्वर्ग की जो उत्कृष्ट आयु होती है, वही उसके ऊपर वाले स्वर्ग की जघन्य आयु होती है।

317 रङ्गू : पास. 5/23

318 वही, धत्ता-94

319 वही 5/24

320 वही, धत्ता-95

देवों की ऊँचाई :

सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों की ऊँचाई सात-सात हाथ है। उसके बाद शशी का उपासक आधा-आधा हीन प्रमाण जानना चाहिए। सवार्थिसिद्धि में जो अहमिन्द्र देव हैं, उनके शरीर का प्रमाण एक हाथ है।

देवों का अधिज्ञान :

प्रथम दो कल्पों में निवास करने वाले देव प्रथम नरक पृथ्वी तक अपने ज्ञान से देख सकते हैं, उसके ऊपर के देव तीसरी नरक पृथ्वी में रहने वालों को देखते हैं। उसके ऊपर के चार स्वर्गों के सुरेश (शुक्र-महाशुक्र, शतार और सहस्रार के देव) सम्पूर्ण चौथे नरक तक देख सकते हैं। उन चार स्वर्गों के जो पवित्र देव हैं वे पाँचवी नरक भूमि को जानते हैं। नौ प्रकार के ग्रैवेयक छठवीं नरक भूमि को और पुनः अनुदिशवासी अहमिन्द्र देव सातवीं नरक पृथ्वी को जान सकते हैं। पाँच निर्मलतर अनुत्तर विमानों के देव सम्पूर्ण त्रिजगनाली (त्रसनाड़ी) को जानते हैं। देवों का नीचे की ओर जाने वाला इस प्रकार का ज्ञान होता। इसी प्रकार ऊर्ध्व दिशा में भी केतु विमान तक विमानवासी देवों का ऐसा ही ज्ञान होता है।³²¹

अप्सराओं की आयु एवं उत्पत्ति सीमा :

अप्सराओं की जघन्य आयु अर्धपल्य एवं उत्कृष्ट आयु पचपन (55) पल्य प्राप्त होती है। उन देवियों की उत्पत्ति दो स्वर्ग तक कही गई है, जहाँ वे मनोवाञ्छित अतिशय सुखों का भोग करती हैं।³²²

स्वर्गों में सुख के प्रकार :

प्रथम दो कल्पों में कायसुख, उसके आगे दो कल्पों में स्पर्श सुख और आगे-आगे चार-चार दुःखों का निग्रह करने वाले स्वर्गों में रूप, शब्द एवं मन का सुख होता है।³²³

देवों में विशेषता भेद :

तापस व्रत धारण करके जो शिव का ध्यान करते हैं और पञ्च तत्त्वों की भावनाएँ करते हैं, वे मरकर ज्योतिष्क देव होते हैं अथवा कोई-कोई व्यन्तर

321 रङ्गू : पाम. 5/25

322 वही 5/25, वा15-16

323 वही, घत्ता-96

गति में भी उत्पन्न होते हैं। जो उत्तम श्रावक व्रत धारण करते हैं। जो श्रेष्ठ नारी आर्थिका व्रत धारण कर मरती हैं, वह सोलहवें स्वर्ग में उत्पन्न होती हैं। मुनि को छोड़कर उसके ऊपर अन्य कोई नहीं जाता। वे मुनि यथाजात लिङ्ग धारण करके, शरीर के भोगों और परिग्रह का त्याग करके, अभिमान, कषाय और दोषों से मुक्त होकर ऊपर-ऊपर के स्वर्गों में जाते हैं। इन स्वर्गों में क्रम-क्रम से देव हीन मान वाले होते हैं।

स्थिति, प्रभाव, सुख, दीप्ति तथा लेश्या तथा इन्द्रियों की विशुद्धि एवं आयु, ये ऊपर की ओर अधिक-अधिक हैं।³²⁴

सिद्धक्षेत्र अथवा मोक्ष का वर्णन :

सर्वार्थसिद्धि के ऊपर बारह योजन प्रमाण पवित्र सिद्धक्षेत्र है। दक्षिण-उत्तर में वह सात राजू प्रमाण तथा पूर्व-पश्चिम में एक राजू चौड़ा सुशोभित है। उसके मध्य में चन्द्र महल के समान गोल, सीधा, छत्राकार एवं पवित्र आठ योजन मोटा दैदीप्यमान क्षेत्र है, जिसका विस्तार पैंतालीस लाख योजन कहा गया है। उसके ऊपर सिद्धों का निवास है, उसमें सिद्ध निवास करते हैं, जो नित्य, अरूपी एवं सम्यक्त्व प्रमुख गुणों के धारी तथा अष्ट ब्रह्मद्वियों से युक्त, अमूर्तिक, विवर्ण (रूप से रहित), ज्ञान के पिण्डस्वरूप, अष्टकर्म-रहित और अखण्ड सुखों के धारी होते हैं। परमानन्दामृत से निरन्तर तृप्त, श्रेष्ठ अनन्त गुणों के आकर एवं आत्मरस से सिक्त होते हैं। सभी सिद्ध तनु वातवलय के अन्त में निवास करते हैं, इसके ऊपर वे नहीं जाते। कोई सिद्ध समूह वहाँ पर्यङ्कासन में और कोई सिद्ध समूह कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित हैं। अन्तिम शरीर से किञ्चिद् हीन उत्पत्ति जरा एवं मरण के दुख³²⁵ से रहित ये सिद्ध त्रिजग में सारभूत हैं तथा भव्यजनों के लिए उत्तम बोध प्रदान करते हैं।³²⁶

काल :

समस्त द्रव्यों के उत्पादादि रूप परिणमन में सहायक "कालद्रव्य" होता है। इसका लक्षण वर्तना है। यह स्वयं परिवर्तन करते हुए अन्य द्रव्यों के परिवर्तन में सहायक होता है। काल द्रव्य के दो भेद हैं-1-निश्चयकाल और 2-व्यवहार

324 रङ्घू : पास. 5/26

325 वही 5/26

326 वही, घत्ता-97

काल/निश्चयकाल अपनी द्रव्यात्मक सत्ता रखता है और वह धर्म और अधर्म द्रव्यों के समान समस्त लोकाकाश में स्थित है।

कालद्रव्य भी अन्य द्रव्यों के समान उत्पाद, व्यय और धौव्य लक्षण से युक्त है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि से रहित होने के कारण अमूर्तिक है। प्रत्येक लोकाकाश के प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है। धर्म और अधर्म द्रव्य के समान वह लोकाकाश व्यापी एक द्रव्य नहीं है क्योंकि प्रत्येक लोकाकाश प्रदेश पर समय भेद से अनेक द्रव्य स्वीकार किये बिना कार्य नहीं चल सकता है।

कालद्रव्य के कारण ही वस्तु में पर्याय परिवर्तन होता है। पदार्थों के कालकृत सूक्ष्मतम परिवर्तन होने में अथवा पुद्गल के एक परमाणु को आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर जाने में जितना काल या समय लगता है, वह व्यवहार काल का एक समय है। ऐसे असंख्यात समयों की आवलि, संख्यात आवलियों का एक उच्छ्वास, सात उच्छ्वासों का एक स्तोक, सात स्तोकों का एक लव, $38\frac{1}{2}$ लवों की नाली, दो नालियों का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्त का एक अहोरात्र होता है। इसी प्रकार पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, पूवर्गि, पूर्व, नयुतांग, नयुत आदि संख्यातकाल के भेद हैं। इसके पश्चात् असंख्यात काल प्रारम्भ होता है, इसके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट; ये तीन भेद हैं।

अनन्तकाल के भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेद किये गये हैं। अनन्त का उत्कृष्ट प्रमाण अनन्तानन्त है।³²⁷

जीव :

“चेतनालक्षणो जीवः”³²⁸ इस व्युत्पत्ति के अनुसार जीव का लक्षण चेतना है। उपयोग भी जीव का लक्षण है,³²⁹ वह ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के भेद से दो प्रकार का है।³³⁰

327 द्र. तीर्थकर महावीर और उनकी और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड-1, पृ. 361

328 पूज्यापादः सर्वार्थसिद्धि 1/4 को संस्कृत टीका।

329 वही 2/8

330 वही 2/9

ज्ञानोपयोग :

मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, ये आठ भेद दर्शनोपयोग के हैं।³³¹

दर्शनोपयोग :

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन; ये चार भेद दर्शनोपयोग के हैं।³³²

जीव के भेद :

जीव के दो भेद हैं-संसारी और मुक्त।³³³ संसारी जीव के समनस्क अर्थात् जो मन सहित हैं और दूसरे अमनस्क अर्थात् जो मन से रहित हैं, ये दो भेद हैं।³³⁴ इन्हें क्रमशः सैनी और असैनी भी कहते हैं। संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से भी दो प्रकार के हैं।³³⁵

त्रस जीव :

जिनके त्रस नामकर्म का उदय है, वे त्रस कहलाते हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर अयोग केवली तक के सब जीव त्रस हैं।³³⁶

स्थावर जीव :

जिनके स्थावर नामकर्म का उदय है, वे स्थावर जीव कहलाते हैं। ये एकेन्द्रिय होते हैं। स्थावर जीव-पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक के भेद से पाँच प्रकार के होते हैं।³³⁷

भव्य और अभव्य जीव :

जीवों के भव्य और अभव्य ये दो भेद और भी हैं।

331 पूज्यवाद : सर्वार्थ सिद्धि, संस्कृत टीका 2/9

332 वही 2/9

333 "संसारिणो मुक्ताश्च"-तत्त्वार्थसूत्र 2/10

334 "समनस्कामनस्काः" वही 2/11

335 वही 2/12

336 "द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ वही 2/14

337 "पृथिव्यभोजोवायुवनस्पतयः स्थावराः" तत्त्वार्थसूत्र 2/13



भव्य जीव :

जिनमें रत्नत्रय गुण प्रकट करने की योग्यता होती है, वे भव्यजीव कहलाते हैं। भव्य जीवों के तीन भेद होते हैं-

1. निकट भव्य :

तद्भव मोक्षगामी या दो-चार भव में ही मोक्ष जाने वाले निकट भव्य कहलाते हैं। ये व्यक्त सम्यग्दृष्टि होते हैं।

2. दूर भव्य :

कई भवों के बाद मोक्ष जाने वाले (अव्यक्त सम्यग्दृष्टि) जीव "दूर भव्य" कहलाते हैं।

3. दूरानुदूर भव्य :

जो कभी मोक्ष नहीं जाते, सिर्फ उनके मोक्ष जाने की शक्ति मात्र रहती है, जिससे वे भव्य कहलाते हैं, किन्तु उनकी शक्ति कभी व्यक्त नहीं होती अतएव वे सदाकाल अभव्यों की ही तरह संसार में ही निवास करते हैं।³³⁸

अभव्य जीव :

जिनमें रत्नत्रय गुण प्रकटाने की योग्यता नहीं होती, वे अभव्य जीव कहलाते हैं।

सिद्ध जीव (मुक्त जीव) :

जिन्होंने संसार, शरीर और अष्टकर्मों को जीत लिया है और जो लोकाकाश के अन्त में निवास करते हैं, वे सिद्ध या मुक्तजीव कहलाते हैं।

ये सिद्ध जीव नित्य, अरूपी एवं सम्यक्त्व-प्रमुख गुणों के धारी, अष्ट ऋद्धियों से युक्त, अमूर्तिक, विवर्ण (रूप से रहित), ज्ञान के पिण्डस्वरूप, अष्टकर्मरहित और अखण्ड सुखों के धारी, परमानन्दामृत से निरन्तर तृप्त, श्रेष्ठ अनन्त गुणों के आकर एवं आत्मरस से सिक्त होते हैं, जन्म-जरा और मरण से रहित हैं।³³⁹

शुद्ध (सिद्ध) जीव अकेला ही निरञ्जन, ज्ञानमय एवं कर्म विमुक्त³⁴⁰ होता है। ये सिद्ध जीव त्रिजग में सारभूत तथा भव्यजनों के लिए उत्तम बोधि प्रदान करते हैं।³⁴¹

338 पुरुषार्थ सिद्धयुपाय की हिन्दी टीका, पृ. 98 टीकाकार - पं. मुन्नालाल रांधेलीय वर्णी

339 पास, 5/26

340 वही घत्ता-42

341 वही, घत्ता-97



पुद्गल :

जिसमें "पूरण"-बाहरी अंश मिलने की शक्ति और "गलन"-गल जाने की शक्ति की क्रिया होती रहती है, उसे पुद्गल कहते हैं।³⁴² पुद्गल रूपी द्रव्य है,³⁴³ जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाया जाता है।³⁴⁴

विविध-विषय :

गुणस्थान³⁴⁵ :

गुणों के स्थानों को अर्थात् विकास की क्रमिक अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं। जैन शास्त्र में गुणस्थान इस पारिभाषिक शब्द का अर्थ आत्मिक शक्तियों के आविर्भाव की उसके शुद्ध कार्यरूप में परिणत होते रहने की तरतम भावापन्न अवस्थाओं से है।³⁴⁶ मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत, सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्म, साम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवलिजिन तथा अयोग केवली; इस प्रकार ये चौदह गुणस्थान हैं।³⁴⁷

कषाय³⁴⁸ :

जो आत्मा को कषे अर्थात् चारों गतियों में भटकाकर दुख दें,³⁴⁹ उसे कषाय कहते हैं। कषाय के चार भेद हैं-क्रोध, मान, माया और लोभ। इनके दमन करने के लिए क्रमशः क्षमा, मार्दव, आर्जव व संतोष (शौच) का सहारा लेना पड़ता है।³⁵⁰ प्रत्येक कषाय के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानवरण, प्रत्याख्यानवरण और संज्वलन; ये चार भेद होते हैं। इस प्रकार चारों कषायों के सोलह भेद भी हो जाते हैं। अतः इन्हें सोलह कषाय³⁵¹ भी कहते हैं।

342 तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्यपरम्परा खण्ड- 1 पृ. 349

343 तत्त्वार्थसूत्र 5/5

344 वही, 5/23

345 पास. 4/12

346 पं. सुखलाल जी : दर्शन और चिन्तन, पृ. 263

347 गोम्मटसार जीव कांड 9/10

348 पास. 1/3/20, 4/6, 4/13

349 पं. पद्मलाल जी कृत मोक्षशास्त्र की हिन्दी टीका, पृ. 16

350 पास. 3/21

351 वही 4/6

मिथ्यात्व³⁵² :

जिनदेव, जिनशास्त्र, जिनगुरु एवं जीवादि तत्त्वों के प्रति श्रद्धान न होकर जिन शासन के विपरीत मान्यताओं को मानना, तदनुरूप आचरण करना मिथ्यात्व कहलाता है। मिथ्यात्व का निरोध सम्यक्त्व से होता है।³⁵³

योग³⁵⁴ :

काय, वचन और मन की क्रिया योग है।³⁵⁵ उसके दो भेद हैं-शुभयोग और अशुभयोग। मन, वचन, काय के अशुभ एवं सारहीन संचार से अशुभ कर्मास्त्रिव होता है, जिसके कारण जीव चौरासी लाख योनियों के दुःखों को भोगता है। शुभयोग से शुभ कर्मास्त्रिव होता है, जिसके कारण जीव वाञ्छित शिव लक्ष्मी को प्राप्त करता है।³⁵⁶

लेश्या³⁵⁷ :

जिससे जीव अपने को पुण्य और पाप से लित करे, उसको लेश्या³⁵⁸ कहते हैं। कषाय के उदय से अनुरक्त योग की प्रवृत्ति को भी लेश्या³⁵⁹ कहा गया है। कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल; ये छह भेद लेश्या के हैं।³⁶⁰ इनमें से प्रारम्भ की तीन बुरी और अन्तिम तीन अच्छी लेश्यायें हैं।

अभक्ष्य³⁶¹ :

जो भक्ष्य अर्थात् भोजन के योग्य नहीं है वह अभक्ष्य कहलाता है। जिन पदार्थों में त्रस और स्थावर जीवों की उत्पत्ति स्वतः होती रहती है, वे अभक्ष्य कहलाते हैं। इन पदार्थों को अनिष्ट व अनुपसेव्य भी कहते हैं। मर्यादा से रहित पदार्थ भी अभक्ष्य की श्रेणी में आते हैं। मुख्यतः बाईस अभक्ष्य कहे गये हैं- जो इस प्रकार हैं-

352 रङ्घू : पास 1/5, 3/21

353 "भिच्छन्तहु सम्मन्तु पठन्तेउ," वही 3/21

354 वही 3/20

355 "कायवाङ्मनः कर्मयोगः" तत्त्वार्थसूत्र 6/1

356 पास. 3/20

357 वही 3/21

358 गोम्मटमार जीवकाण्ड, गाथा 488

359 वही गाथा-489

360 सर्वार्थसिद्धि : पूज्यपाद, संस्कृत टीका, अध्याय-2, सूत्र-6

361 पास. 1/8



ओला घोर बड़ा निशि भोजन, बहुबीजा बैंगन संधान ।
 बड़ पीपर ऊमर कटूमर, पाकर फल जो होय सुजान ॥
 कन्दमूल माटी विष आमिष, मधु भाखन अरु मदिरापान ।
 फल अति तुच्छ तुषार चलितरस, ये जिनमत दाईस बखान ॥³⁶²

पाँच उदुम्बर³⁶³ :

ऊमर, कटूमर, बड़, पीपर और पाकर, ये पाँच उदुम्बर फल कहलाते हैं।

जिन वृक्षों में से दूध निकलता है, उन्हें उदुम्बर फल कहते हैं। इनके फलों को तोड़कर देखा जाये तो उनमें से जीव निकलते हैं। उनका सेवन करने से इन जीवों की हिंसा हो जाती है, अतः इन्हें त्याग देना चाहिए³⁶⁴

ज्ञान³⁶⁵ :

जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान काल, समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा पर्यायों (अवस्थाओं) को जाने, उसे ज्ञान कहते हैं³⁶⁶ यह ज्ञान मति, श्रुत, अर्वाधि, मनः पर्यय और केवल के भेद से पाँच प्रकार का है³⁶⁷ इनमें प्रारम्भ के दो परोक्ष ज्ञान और शेष तीन प्रत्यक्ष ज्ञान हैं³⁶⁸

अष्टकर्म³⁶⁹ :

अष्टकर्म निम्नलिखित हैं³⁷⁰ 1. ज्ञानावरण, 2. दर्शनावरण, 3. वेदनीय, 4. मोहनीय, 5. आयु, 6. नाम, 7. गोत्र और 8. अन्तराय।

ज्ञानावरण :

जो ज्ञान को आवृत करे या जिसके द्वारा ज्ञान का आवरण किया जाय, वह ज्ञानावरण है।

362 श्री अभय जिनवाणी संग्रहः लेखिका आर्थिका, अभयमती जी, पृ 230

363 पास. 5/4

364 श्रावक धर्म : लेखक डॉ. रमेश चन्द्र जैन, पृ. 12

365 पास. 2/4

366 जाणइ तिकालविसए दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे।

पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणेति णं बोत्ति ॥ गोम्मटसार जीकांड, गाथा- 298

367 "मतिश्रुतावधिमतः पर्यय केवलानिज्ञानम्"

368 "आद्ये परोक्षम् प्रत्यक्षमन्यत्" - तत्त्वार्थसूत्र 1/11

369 पास. 7/1

370 द्र. तत्त्वार्थसूत्र 8/4



दर्शनावरण :

जो आत्मा के दर्शन गुण को आवृत करे या जिसके द्वारा दर्शन गुण का आवरण किया जाय, वह दर्शनावरण है।

वेदनीय :

जो अनुभव किया जा सके, वह वेदनीय है अर्थात् जिसके द्वारा सुख-दुख का अनुभव हो, वह वेदनीय है।

मोहनीय :

जो मोहित करता है या जिसके द्वारा मोहा जाता है, वह मोहनीय है।

आयु :

जिसके द्वारा नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव पर्यायों को प्राप्त हो, वह आयु है।

नाम :

जो आत्मा का नारकी, मनुष्यादि रूप से नामकरण करे या जिसके द्वारा नामकरण हो, वह नामकर्म है।

गोत्र :

जिसके द्वारा जीव उच्च और नीच कहा जाता है, वह गोत्र है।

अन्तराय :

जिसके द्वारा दाता और पात्र के बीच में विघ्न आवे, वह अन्तराय है या जिसके रहने पर दाता दानादि क्रियायें न कर सके या दानादि की इच्छा से विमुख हो जावे, वह अन्तराय है।

जैन आगम में उपर्युक्त आठ कर्मों में से आदि के चार कर्मों को घातिया और अन्त के चार कर्मों को अघातिया के नाम से अभिहित किया गया है। घातिया कर्मों के घात से केवलज्ञान (सम्यग् ज्ञान) और अघातिया कर्मों का नाश होने पर मोक्ष या सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

चतुर्गति³⁷¹ :

गतियाँ चार कही गई हैं-

1. नरकगति, 2. तिर्यञ्च गति, 3. मनुष्यगति और 4. देवगति ।

371 रङ्धू : पास. 3/21, 3/24, 3/25



दशलक्षण धर्म³⁷² :

दशलक्षणों से युक्त धर्म दशलक्षण धर्म कहलाता है। धर्म के दशलक्षण उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन और ब्रह्मचर्य कहे गये हैं।³⁷³

उत्तम क्षमा :

दुष्ट लोगों के दुर्वचनों से तिरस्कार, हास्य, ताड़न-मारण आदि क्रोध की उत्पत्ति के कारण होने पर परिणामों में मलिनता नहीं आना, प्राणीमात्र के प्रति क्षमा भाव, रखना; उत्तम क्षमा कहलाती है।

उत्तम मार्दव :

उत्तम जाति, कुल, रूप, ज्ञान, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, बल, तप आदि के विद्यमान होते हुए भी मान (घमण्ड) नहीं करना उत्तम मार्दव कहलाता है।

उत्तम आर्जव :

मन, वचन व काय की कुटिलता को छोड़कर परिणामों में सरलता बनाए रखना; उत्तम आर्जव कहलाता है।

उत्तम शौच :

लोभ, अभिलाषा आदि के अभाव होने पर परिणामों में निर्मलता या शुचिता होना शौच है।

उत्तम सत्य :

सुन्दर, कटुता से रहित, अहिंसक, प्रशस्त वचन बोलना उत्तम सत्य है।

उत्तम संयम :

छह काय के जीवों की रक्षा करना और पाँचों इन्द्रियों तथा मन को वश में रखना; उत्तम संयम कहलाता है।

उत्तम तप :

अनशन, सामायिक आदि बारह प्रकार का तप करना; उत्तम तप कहलाता है।

372 रङ्गू : पास. 2/15, 5/3

373 "उत्तमक्षमामार्दवाज्वशौचसत्यसंयमतपस्त्यागकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः।"

तत्त्वार्थसूत्र 9/6



उत्तम त्याग :

चार प्रकार का दान करना व राग-द्वेष आदि का त्याग करना; उत्तम त्याग कहलाता है।

उत्तम आकिंचन्य :

अन्तरङ्ग व बहिरंग परिग्रह का त्याग करके आत्म स्वरूप से भिन्न शरीरादिक में ममत्वरूप परिणामों का अभाव होना, उत्तम आकिंचन्य है।

उत्तम ब्रह्मचर्य :

स्त्रीमात्र का त्याग करके, शील से युक्त हो, अपने आत्मस्वरूप में रमण करना उत्तम ब्रह्मचर्य है।

उपर्युक्त दश धर्मों का पालन करने से वीतरागता की प्राप्ति होती है।

जैनेतर धार्मिक मान्यतायें—

तापस (तापस)³⁷⁴ :

'पासणाहचरिउ' में जैनधर्म की मान्यताओं के विपरीत शैव तापसों का भी उल्लेख मिलता है। जब कमठ व्यभिचारी होने के कारण जंगल में पहुँचा तो उसे वहाँ एक तापस समूह दिखायी पड़ा जो इस प्रकार था

कोई तापस शिव-शिव की घोषणा कर रहा था, कोई ऊँचे हाथ करके तप कर रहा था, कोई भभूत से अपने गात्र की रचा कर रहा था, कोई पंचाग्नि के ताप से तप्त हो रहा था, कोई अक्षमाला को लेकर जाप कर रहा था, कोई जङ्गल का श्रेष्ठ वल्कल वस्त्र धारण किए हुए था, कोई सन्ध्यावन्दन करता हुआ दिखाई दे रहा था³⁷⁵ वे तापस शरीर पर भस्म³⁷⁶ और सिर पर जटायें धारण करते थे³⁷⁷ वे तीव्र तप करते थे, पञ्चाग्नि तप के व्रती थे, केवल फल, कन्द एवं मूल का भक्षण करते थे, वे अपने पुत्र-कलत्र एवं घरबार को छोड़े हुए थे³⁷⁸

374 रङ्गधू : पास. 3/11, 6/6/6

375 वही 6/6

376 वही, घंटा-112

377 वही, 6/8

378 वही, 3/11



अष्टम परिच्छेद

उपसंहार

पार्श्वनाथ चरित विषयक रचनाओं में रङ्गधूकृत 'पासणाहचरित' का स्थान

भारतीय जीवन, साहित्य एवम् कला में भगवान पार्श्वनाथ का व्यक्तित्व सूत्र में मणि के समान पिरोया हुआ है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् जैसे-कोलब्रुक, स्टीवेंसन, एडवर्ड टामस, शार्पेण्टियर, गेरिनो, पुसिन, चाकोबी एवं ब्लूमफील्ड तथा भारतीय जैसे - डॉ. भण्डारकर, डॉ. जेल्वेल्कर, डॉ. दास गुप्ता, डी.डी. कौशाम्बी एवं डॉ. राधाकृष्णन प्रभृति विद्वानों ने उन्हें सप्रमाण ऐतिहासिक महापुरुष सिद्ध किया है।¹ उनके महनीय व्यक्तित्व को आधार बनाकर प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश के अनेक कवियों ने लेखनी चलायी है, तदनुसार अभी तक 20 रचनायें ज्ञात हो सकी हैं, जो स्वतन्त्र रूप से भगवान पार्श्वनाथ पर ही मिलती हैं। ये रचनायें हैं-जिनसेन (8वीं शताब्दी) कृत पार्श्वभ्युदय, वादिराजसूरि कृत पार्श्वनाथचरित (1025 ई.), पद्मकीर्ति कृत पासणाहचरित (शक सं. 999), देवदत्त (10 वीं शताब्दी ई. का अन्तिम भाग) कृत पासणाहचरित, देवप्रभसूरि कृत पासणाहचरित (1111 ई.) देवचन्द्र कृत पासणाहचरित (1463 ई.), माणिक्यचन्द्रसूरि कृत पार्श्वनाथचरित (1219 ई.), विनयचन्द्र सूरि (1229-1288 ई.) कृत पार्श्वनाथचरित, सर्वानन्द सूरि कृत पार्श्वनाथ चरित (1234 ई.), भावदेवसूरि कृत पार्श्वनाथ चरित (1355 ई.), सकलकीर्ति कृत पार्श्वनाथपुराण (पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ), रङ्गधू (1400-1479) कृत पासणाहचरित, असवाल कवि कृत पासणाहचरित (1422 ई.) तेजपाल कृत पासपुराण (15 वीं सदी ई.) पद्मसुन्दरगणि कृत पार्श्वनाथचरित (1558 ई.), हेमविजयगणिकृत पार्श्वनाथ चरित (1575 ई.), वादिचन्द्र कृत पार्श्वपुराण (1583 ई.), उदयवीरगणिकृत पार्श्वनाथ चरित (1597 ई.) तथा चन्द्रकीर्ति कृत पार्श्वपुराण (1597 ई.) इनमें रङ्गधूकृत पासणाहचरित का विशिष्ट स्थान है। इसका कारण यह है कि रङ्गधू को अपने पूर्ववर्ती पार्श्वनाथचरितों की एक लम्बी

1. रङ्गधू ग्रन्थावली-भाग 1 (भूमिका पृ. 23)

श्रृंखला प्राप्त हुई, उनका भली-भाँति अध्ययन कर कवि ने कथावस्तु को सुन्दर ढंग से ग्रथित किया।

रङ्गू का पासणाहचरित उनके अपग्रंथ माता पर अधिकार तथा काव्य कौशल का सुन्दरप्रमाण है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में तप के द्वारा समस्त आयु को सुखा देने वाले भट्टारक सहस्रकीर्ति, उनके पट्टधर श्री गुणकीर्ति नामधारी भट्टारक के पट्ट में होने वाले यशः कीर्ति तथा उनके अन्यतम शिष्य खेमचन्द्र को प्रणाम किया है। ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा देने वाले अपने आश्रयदाता साहू खेमसिंह अथवा खेऊ साहू अग्रवाल का भी उन्होंने परिचय दिया है। इससे उनका कृतज्ञता गुण प्रकट होता है। तोमरवंश की गोपाचल शाखा के 9 राजाओं में से चतुर्थ राजा डूंगरसिंह का भी उन्होंने स्मरण किया है।

कवि की रचना का उद्देश्य यह दर्शाना है कि आध्यात्मिक शक्ति के सामने संसार की सारी भौतिक शक्तियाँ तुच्छ हैं, वे उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती हैं। आकाश में अपने विमान को रुका हुआ देखकर संवरदेव के मन में आश्चर्य उत्पन्न हुआ (और बोला) - “वन में सोते हुए सिंह को किसने अगा दिया है? किसने आकाश में जाते हुए सूर्य को क्षुब्ध किया है, किस बलवान ने अलंघ्य जलनिधि को लाँघा है?” इस प्रकार मन में सोचकर ज्यों ही देखा तो उसने जिनेश्वर पार्श्वनाथ को पाया। उनको देखकर वह दुष्ट (संवरदेव) क्रुद्ध हुआ और उसने तत्क्षण ही अपने अवधिज्ञान से उन्हें पहचान लिया और अपने आप बोला - “तुम कम्पठ नाम के जो ब्राह्मण थे, उसे इसी दुष्ट मरुभूति ने घर से निकाल दिया था। यही वह महादोषी है। मैं इसे ध्यानावस्था में ही यमराज के घर भेज देता हूँ;² ऐसा सोचकर उसने उपद्रव प्रारम्भ किया।

आकाश में प्रचण्ड वज्र तड़ितड़ाने, गरजने, घड़घड़ाने और दर्पपूर्वक चलने लगा। तड़क घड़क करते हुए उसने सभी पर्वत समूहों को खण्ड-खण्ड कर डाला। हाथियों की गुराँहट से मदोन्मत्त साँड चीत्कार कर भागने लगे। आकाश भ्रमर, काजल, ताल और तमाल वर्ण के मेघों से उसी प्रकार आच्छादित हो गया, जिस प्रकार कुपुत्र अपने अपयश से। मृगकुल भय से द्रस्तहोकर भाग पड़े और दुःखी हो गए। जल धाराओं पक्षियों के पंख छिन्न-भिन्न हो गए। नदी, सरोवर, गुफायें, पृथ्वीमण्डल एवं वनप्रान्त सभी जल से प्रपूरित हो गए। वहाँ

मार्ग एवं कुना का चिह्न को शीत न रहता किन्तु योगी जिनेन्द्र (इस उपसर्ग से) रञ्जमात्र भी विचलित न हुए³ प्रलयकालीन पवन से आहत धाराओं से व्याप्त होने पर भी पार्श्वप्रभु की योगमुद्रा भङ्ग नहीं हुई⁴

महाकवि रङ्ग का जिनभक्ति में अटूट विश्वास है। असुरेश्वर तीर्थंकर पार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए कहते हैं :

“हे जिनवर, आपके चरणों के दर्शन से मैं पाप से मुक्त हुआ हूँ। और महान गुणों से युक्त देव हुआ हूँ। तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले हे देव! आपने लोकों में समस्त भव्य जनों की आशाओं को परिपूर्ण किया है, स्थावर, जङ्गम एवं सूक्ष्म प्रदेश वाले समस्त जीवनिकायों को सुरक्षित किया है तथा (आप) निरीह, नृसिंह, निर्द्वन्द्व, दम्भरहित, निरुञ्जन, नित्य, शङ्कर एवं ब्रह्मा हैं। निलोभ, निर्मोह, निक्लोध, निर्दोष, निरभिमानी, ज्ञानी, भवाम्बुधि के शोषक, शीलयुक्त, तपरूपी क्रीड़ा से युक्त, आत्मस्वरूप में लीन, तीनों लोकों के लिए बन्धु स्वरूप एवं पाप रूपी मल रहित हे जिनेश्वर आपके गुण अनन्त हैं। उनका वर्णन कर सकने में मैं समर्थ नहीं हूँ।⁵

उपर्युक्त विवरण से जिनभक्ति सम्बन्धी निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :

1. जिनेन्द्र दर्शन से पापों से मुक्ति मिलती है।
2. भव्य जनों की आशायें पूर्ण होती हैं।
3. महान गुणों का प्रादुर्भाव होता है।

पासणाहचरित में दो प्रकार के तपों का चित्रण प्राप्त होता है :

1. सांसारिक आकांक्षा की पूर्ति के लिए किया गया तप।
2. कर्म के क्षय के लिए किया गया तप।

इन दो तपों में जैनधर्म में दूसरे प्रकार तप को स्वीकार किया गया है, क्योंकि पहले तप का प्रयोजन संसार है जबकि दूसरे तप का प्रयोजन मोक्ष है। आचार्य समन्तभद्र ने कहा है :

अपत्य वित्तोत्तर लोक तृष्णया तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते ।

भवान् पुनः जन्मजराजिहासया त्रयीप्रवृत्तिं समधीरनारुणत् ॥

3 पासणाहचरित 4/8

4 वही 4/9

5 वही 4/10

हे भगवान् कितने ही सन्तान प्राप्त करने के लिए, कितने ही धन प्राप्त करने के लिए तथा कितने ही मरणोत्तर काल में प्राप्त होने वाले स्वर्गादि की तृष्णा से तपश्चरण करते हैं, परन्तु आप जन्म और जरा की बाधा का परित्याग करने की इच्छा से इष्टानिष्ट पदार्थों में मध्यस्थ हो मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकते हैं।

‘पासणाहचरिउ’ में इस प्रकार के तप का आचरण करने वाले भगवान् पार्श्व हैं, जिनके सामने कठिनाई के पहाड़ उपस्थित होते हैं फिर भी वे जरा भी विचलित नहीं होते हैं। फलतः संवर देव को विफल प्रयास होना पड़ता है। इसके विपरीत मन से कमठ तपस्या करता है। अपने भाई के प्रति उसका वैर शान्त नहीं होता है और जब उसका भाई पञ्चाग्नि तपस्या से तप्त उसे नमस्कार कर चरणों में सिर रखता है, तभी वह अपने भाई के सिर पर शिला का आघात करता है, जिससे वह (मरुभूति) मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। कमठ का जीव जन्म-जन्म में मरुभूति के जीव से बदला लेता है। इस प्रकार कमठ का तप आत्मप्राप्ति में कुछ भी सहायक नहीं होता है।

‘पासणाहचरिउ’ में कर्म तथा उसके फल के प्रति अटूट आस्था व्यक्त की गयी है। बन्धन से मुक्ति कैसे हो, वह बतलाना रड़धू का अभीष्ट है। पार्श्व पर किया गया संवर देव का उपसर्ग उनके पूर्वकृत कर्मों का पत्र फल था, जिसे तीर्थकर होने पर भी भोगना अनिवार्य था। पार्श्व की साधना बन्धन से मुक्त होने का उपाय थी।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से ‘पासणाहचरिउ’ एक सफल महाकाव्य है। महाकाव्य में जिन गुणों का होना आवश्यक है, उनका सन्निवेश ‘पासणाहचरिउ’ में हुआ है। कवि ने काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए अलङ्कारों का प्रयोग किया है। उनके अलङ्कार प्रयोग स्वाभाविक हैं, उससे काव्य बोझिल नहीं हुआ है।

रड़धू ने ‘पासणाहचरिउ’ में नौ छन्दों का प्रयोग किया है। अधिकांशतः पद्धडिया छन्द का प्रयोग हुआ है। गुणों की दृष्टि से प्रसाद गुण की बहुतायत है, किन्तु ओज एवं माधुर्य गुण का प्रयोग भी यथास्थान किया गया है।

पासणाहचरिउ के आन्तरिक अनुशीलन से उसमें प्रतिपादित सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थिति का भी पता चलता है। यहाँ-सुपुत्र-कुपुत्र, अच्छा भाई-बुरा भाई, सभी के उदाहरण प्राप्त हैं। विभिन्न प्रकार की जातियों एवं वर्गों से यहाँ परिचय होता है। अनेक प्रकार के व्यसन तथा उसके दुष्परिणामों का वर्णन किया गया है। इससे समाज के परिष्कार की शिक्षा प्राप्त होती है।



प्राचीन भारत की राजनैतिक प्रणाली की जानकारी भी 'पासणाहचरिउ' से होती है। राजा प्रजा का सदैव ध्यान रखता था। वह समस्त कलाओं में निष्णात होता था, तथा युद्ध क्षेत्र में धुरधर होता था। राजा का पुत्र ही राज्याधिकारी होता था। राज्य के समाङ्ग की यहाँ चर्चा की गयी है। कार्य की सिद्धि के लिए पंचाङ्ग मन्त्र पर बल दिया गया है। दूत एवं सैन्य व्यवस्था के भी यहाँ उल्लेख प्राप्त होते हैं।

जैन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों को सरल भाषा में समझाने के लिए 'पासणाहचरिउ' बड़ा उपयोगी है। जैन आचार्यों एवं कवियों का उद्देश्य काव्यरचना के सहारे धार्मिक तत्त्वों का सुन्दर विवेचन रहा है। जिस प्रकार मिश्री-मिश्रित औषधि गुणकारी होती है, उसी प्रकार धर्म तत्त्व के उपदेश काव्य रूपी मिश्री में मिश्रित होकर और भी अधिक मधुर लगते हैं। रङ्ग की वर्णन शैली से यह बात परिलक्षित होती है। इस प्रकार अपने काव्य कौशल के माध्यम से रङ्ग ने भारतीय साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि करने में अनुपम योग दिया है।



सूक्तियाँ

1. गिण्येहि उद्यण्णठ कप्परुक्खु तहु फल को णउ वंछइ ससुक्खु ।

पा. 1/8-1/10

अपने घर में उत्पन्न कल्पवृक्ष के सुखद फल को कौन नहीं चाहता?

2. पुण्णेण पत्तु जइ कामधेणु को णिस्सायइ पुणु हि गयरेणु। पा. 1/8-2/10
यदि पुण्य कर्म से कामधेनु प्राप्त हो जाय तो अपने घर में मात्र धूलि उड़ाने वाले हाथी को कौन आश्रय देगा?

3. रयणु व्व दुलहु सावयहु जम्मु। पा. 1/8-14/10
श्रावक-कुल समुद्र में गिरे हुए रत्न-प्राप्ति के समान ही दुर्लभ है।

4. ते सवण जि सुणहिं जिणिंदवाणि। पा. 1/8-16/10
श्रवण वे ही हैं जो जिनवर की वाणी सुनते हैं।

5. सोएं णासइ तणु-कंति-छाया। पा. 3/3-1/36
शोक से शरीर की कान्ति नष्ट हो जाती है।

6. तहु सलहणु किज्जइ अहिउ लोइ जो तवभरु गिण्हइ एत्थु कोइ।

पा. 3/3-8/36

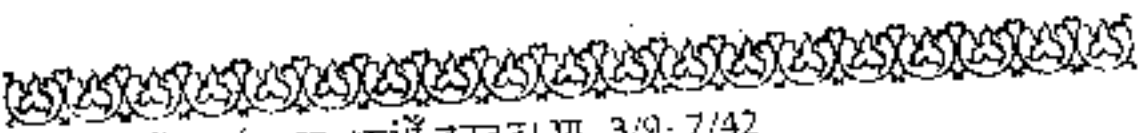
इस लोक में जो कोई तप के भार को ग्रहण करता है, उसी की अधिक सराहना की जाती है।

7. अच्छरिउ काइं जं तमहुभरु दिणयर-पुरउ पलाइ लहु ॥ पा. 3/4-14/38
यदि सूर्य के सम्मुख अन्धकार का भार तत्काल ही हट जाय तो उसमें आश्चर्य ही क्या?

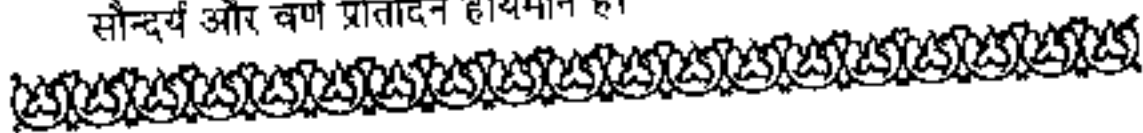
8. बालाणलो किं ण रण्णं डहेऊण संकीरए भप्फवण्णं। पा. 3/5-6/38
क्या अग्नि की एक चिनगारी समस्त वन को जलाकर भस्म नहीं कर देती?

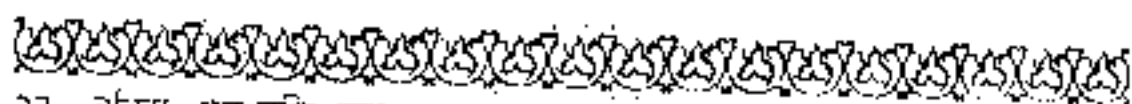
9. सर-धिण्णु बंभज्जई भट्ठउ ॥ पा. 3/8-7/42
वेदगान में स्वरभग्न होने से ब्राह्मण यति भ्रष्ट हो जाता है।





10. कुमुनि व विरम भुवों दट्ठडा पा. 3/9-7/42
विषयरूपी भुजङ्ग से दष्ट होकर कुमुनि पतित हो जाता है।
11. रविरेणं तमपर मट्ठडा पा. 3/9-7/42
रवि के तेज से अन्धकार का भार नष्ट हो जाता है।
12. णसदंसणेण दुग्गइं दुहु तव-पहाइं णं भग्गउ भणरुहु। पा. 3/9-8/42
सम्यग्दर्शन से दुर्गति रूप दुख अथवा तप के प्रभाव से कामदेव भग्न हो जाता है।
13. अप्पादंसणं कम्महं गणु (णासइ) पा. 3/9-9/42
आत्मदर्शन से कर्मसमूह नष्ट हो जाता है।
14. किं मिच्छाइदिठहु करइ भत्ति जो णवि फेडइ संसार-आत्ता पा. 3/12-5/44
जो संसार के दुःख को नष्ट नहीं कर सकता, उस मिथ्यादृष्टि की भक्ति क्यों करते हो?
15. जीव हंणत्थि ताणा पा. 3/13-8/46
संसार में जीवों के लिए मृत्यु से त्राण नहीं है।
16. आउक्खइं गय एव जहिं॥ पा. 3/13-10/46
सभी आयु के क्षय के बाद मृत्यु को प्राप्त होते ही हैं।
17. अंजलिजलु व्व आउसु ढलए। पा. 3/14-2/46
आयु अन्जली के जल के समान ढलती जाती है।
18. महवाधणु व्व धणु सुहु अथिरु जूवाधणु व्व क्खणि होइ परा पा. 3/14-3/46
धन एवं सुख इन्द्रधनुष के समान अस्थिर हैं (वे) जुए के धन के समान क्षणभर में दूसरे के हो जाते हैं।
19. कंतारइ तारायण तरला। पा. 3/14-5/46
स्त्री भोग तारागण के समान तरल है।
20. णवजोव्वणु णइपूरु व वरसइ। पा. 3/14-6/46
नवयौवन (वर्षा कालीन) नदी के पूर के समान क्षीण हो जाने वाला है।
21. लावणु वणु दिणि-दिणि ल्हसइ। पा. 3/14-6/46
सौन्दर्य और वर्ण प्रतिदिन हीयमान हैं।





22. इन्द्रिय-गुह तडि तरलचण्ड। पा. 3/14-7/46

इन्द्रिय सुख विजली के समान बंचल है।

23. भारुवहय जरपल्लुव-सर्सु तह रेज्जु-भोड सावड भ करु। पा. 3/14-6/48

राज्यभोग भी भारोपहत जोर्णपत्र के समान किसी के लिए शाका नहीं होता।

24. (बहुधाचे) सार्मि-भिच्चु भिच्चु वि दासत्तणि। पा. 3/16-4/48

बहुत पापों के कारण स्वामी भृत्य और भृत्य दास बन जाता है।

25. मुणि तासु सरीरहु सारु इहु जं तव-वय संजम-धरणु। पा. 3/19-9/52

तप, व्रत एवं संयम का जो धारण है, वही इस संसार में शरीर का रंग जानिए।

26. मण-वय काय असुहसंचारे असुह कम्पु आसवड भगारे। पा. 3/20-5/52

मन, वचन एवं काय के अशुभ एवं सारहीन संचार से अशुभ कमांश्रव होता है।

27. मिक्कत्तहु सम्मत्तु पतत्तड। पा. 3/21-2/52

मिथ्यात्व के निरोध के लिये गम्यकाव कहा गया है।

28. खम-परिणामे कोहु णिहणड। पा. 3/21-3/52

क्षमाभाव से क्रोध का दमन किया जाता है।

29. भाणु वि मददवभावे जिप्पइ। पा. 3/21-3/52

मार्दव भाव से मानकषाथ को जीता जाता है।

30. माय अज्जवेण भारिज्जइ। पा. 3/21-4/52

आर्जवभाव में भावा का निवारण किया जाता है।

31. संतोसे लोहु वि दारिज्जड। पा. 3/21-4/52

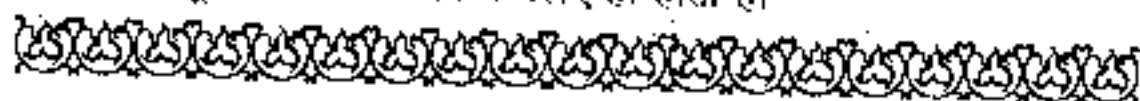
सन्तोष से लोभ को विदीर्ण किया जाता है।

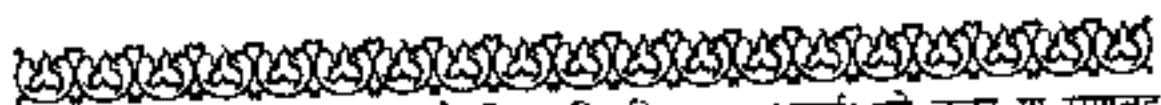
32. संवर सासयमग्गहु सहयर। पा. 3/21-8/54

मोक्षमार्ग के लिए संवर (ही) सहचर है।

33. संवर पुव्व वि णिज्जर विरलहँ। पा. 3/22-7/54

संवर पूर्वक निर्जरा बिरलों के लिए ही होती है।





34. धम्म जि सारउ दयपउरो णियमणि जिणवरु सुच्चई। जो करइ ण मणवइ धरिवि थिरु सो अप्पाणठ वंचइ। पा. 3/22-9-10/54
दयाप्रवर धर्म ही सारभूत है। उसे धारण कर अपने मन को स्थिर नहीं करता, वह स्वयं अपने को उगता है।

35. धम्मे तेउ-रूड-बलु-विककमु धम्मे दीहाउसु वि परक्कमु ॥
पा. 3/23-4/54

धर्म से ही तेज, रूप, बल एवं विक्रम की प्राप्ति होती है। धर्म से ही दीर्घायुष्य एवं पराक्रम प्राप्त होते हैं।

36. धम्म सुहिउ धम्म वि पर-सज्जणु। पा. 3/23-7/54
धर्म ही कल्याण मित्र है, धर्म ही परम स्वजन है।

37. धम्मे कामधेणु गिहि दुब्भइ। पा. 3/23-8/54
धर्म से ही कामधेनु घर में दुही जाती है।

38. सव्वहं गइहिं दुल्लहु मणुयत्तणु, तहिं वि दुल्लहु उत्तमहं कुलत्तणु।
पा. 3/25-1/56
समस्त गतियों में मनुष्यत्व ही दुर्लभ है और उसमें भी उत्तम कुल की प्राप्ति दुर्लभ है।

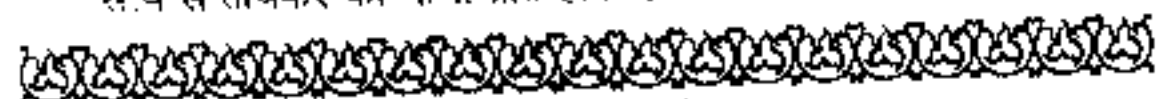
39. खणि दिदुतु णदुतु तणु-धणु-सयणु सरयअब्भ-संकासउ। पा. 3/25-9/56
तन, धन और स्वजन सभी शरद कालीन मेघ के समान क्षणभर में दिखाई देकर नष्ट हो जाते हैं।

40. संजोयहु णियमें मुणि विओउ। पा. 4/5-8/64
संयोगके नियम से ही वियोग होता है।

41. महु-मज्ज-मंसु वज्जियइ दूरि। पा. 5/4-8/84
मधु, मद्य और मौस का दूर से ही त्याग कर देना चाहिए।

42. सच्चैँ सुरणर पणमंति पाया। पा. 5/5-3/86
सत्य से देव और मनुष्य भी चरणों में प्रणाम करते हैं।

43. सच्चैँ लब्भइ तित्थयरवाय। पा. 5/5-3/86
सत्य से तीर्थंकर की वाणी प्राप्त होती है।





44. जा-जा अण्णहु जुवई सुजाण मण्णइ जण्णि-बहिणी-समाण।

पा. 5/5-9/86

जो-जो भी पर्युर्वार्याँ हों, उन्हें सुजान व्यक्ति माँ एवं बहन के समान मानता है।

45. दासी वेसहिं जो रत्तु लोइ तहु णियमें वठ णउ एक्कु होइ। पा. 5/5-11/86
जो व्यक्ति इस लोक में दासी एवं वेश्याओं में आसक्त होता है, उसको नियम से एक भी व्रत नहीं होता।

46. जीवहु सव्वहु णियमें खमामि ते मज्झु खमंतु वि चित्तरामि। पा. 5/7-1/86
सभी जीवों को मैं नियम से क्षमा करता हूँ, वे भी मुझे प्रसन्न होकर क्षमा करें।

47. जहिं पसरइ तमभरु दिट्ठि वि सहयरु खयर वि जत्थ ण संचरहिं।
तहिं दांसपहायरि एत्थ विहावरि किं सावथ भोयणु करहिं॥

पा. 5/7-15-16/88

जहाँ अन्धकार का प्रसार हो, देखना भी कठिन हो, जब पक्षी भी संचार न करते हो, उस दोष उत्पन्न करने वाली रात्रि में श्रावक भोजन कैसे कर सकता है?

48. अण्णगालिउ जलु कासु ण दिज्जइ। पा. 5/8-6/90
अवछाना जल किसी को भी नहीं देना चाहिए।

49. जूवंधु णरु धिट्ठदत्तु पाविदत्तु दप्पिदत्तु जम्मे वि णउ सरइसो कम्म सुविसिदत्तु। पा. 5/9-1/90
घृष्ट, पापिष्ठ एवं दर्पिष्ठ द्यूतान्ध मनुष्य जन्म भर भी विशिष्ट कर्मों (पुण्य) का अनुसरण नहीं करता।

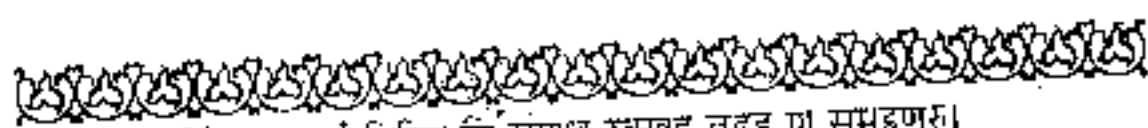
50. जिह जलवरुहि रहु आयदट्ठि तिह वारा पुणु णेहें वट्टइ।

पा. 5/11-5/92

जिस प्रकार वारुही का जल रथ को काट देता है, उसी प्रकार वेश्या अपने स्नेह से वर्त्तन करती है (अर्थात् धन को काटती है)।

51. सीलरयणु मा दुल्लहु भज्जहु। पा. 5/11-9/92
दुर्लभ शीलरूपी रत्न को भग्न मत करो।





52. णिय हिंसममाणं तिरिय वि माणइ रक्खइ वहइ ण सुमइणर।

पा. 5/11-17/94

सद्बुद्धि वाला व्यक्ति तिरियों को भी अपने बच्चों के समान मानता है, उनकी रक्षा करता है और बध नहीं करता।

53. इय जाणिवि चारहो पाविय घोरहे हांसणु वि णउ किज्जइ।

पा. 5/12-9/94

घोर पापी चोर के सम्बन्ध में यह (पूर्ववृत्तान्त) जानकर उसका संगम कभी भी मत करो।

54. पराताय पेच्छिअि मयणे किज्जइ काणुड णियमाण तिल तिलु झिज्जइ।

पा. 5/13-1/94

कामुक व्यक्ति परस्त्रियों को देखते ही कामदेव (के बाणों) से बिंध जाता है। वह अपने मन में तिल-तिल करके जलता रहता है।

55. कुलु बल्ल, . . . विवि विपत्तयसु विदु व्योयवयसु परहु दास।

पा. 6/5-14/126

परदारामन कुल, बल्ल, मन एवं कीर्ति का विनाशकारी एवं दोनों लोंकों के विरुद्ध है।

56. पाविय तणउ णेहु कहमवि णवि किज्जइ दमियदेहु। पा. 6/9-1/130

पापी का देहदमन करने वाला जेह कभी भी नहीं करना चाहिए।

57. कुत्थियलिंगिहु समाणु णउ किज्जइ परिचउ ताहँ माणु। पा. 6/9-2/130

अभिमानी एवं कुत्सित वेश धारण करने वाले लोगों से न परिचय करना चाहिए और न सम्मान।

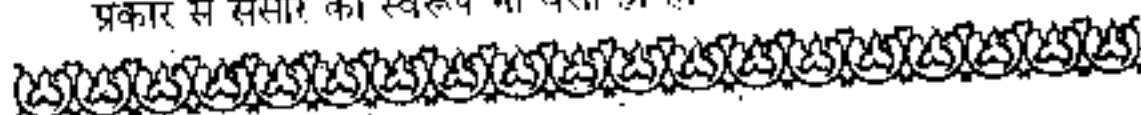
58. भवियव्वु ण फेडइ एत्थु कोइ। पा. 6/9-3/130

इस (संसार) में भवितव्यता को कोई नहीं भेंट सकता।

59. जेम घणागमु खणेण पणदठउ तिम संसारसरूउ वि दिदठउ।

पा. 6/10-7/132

जिस प्रकार घने बादल का आगमन क्षणभर में नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार से संसार का स्वरूप भी वैसा ही है।





60. तणु-धणु विज्जुललधंसन सांसइ। पा. 6/10-8/132
शरीर और धन विद्युल्लेखा के समान कहे गये हैं।
61. हिंसइ णरइ दुक्खु पाविज्जइ, जिउ संसारसमुदि णिमज्जइ, चउरासीति जोणि भामिज्जइ। पा. 6/12-1-2/134
हिंसा से नरक में दुख प्राप्त होता है, जिससे जीव संसार-समुद्र में डूबता है और चौरासी योनियों में भ्रमण करता है।
62. हिंसइ पंगुलु णरु बहिरंधउ। पा. 6/12-3/134
हिंसा से व्यक्ति पङ्गु, बहरा एवं अन्ध होता है।
63. हिंसइ णीसु वि तिलपिंडासणु। पा. 6/12-4/134
जो हिंसा करता है अथवा जो तिलमात्र भी (मांस) भक्षण करता है, वह नाश को प्राप्त होता है।
64. तुवि परिणामु जि कारण वुत्तउ, पावहो पुण्हो होइ णिरुत्तउ।
पा. 6/18-12/140
संसार में निश्चित रूप से परिणाम (भाव) ही पुण्य और पाप का कारण होता है।
65. कज्जु वि णिय परिणामु मुणि॥ पा. 6/18-17/140
कार्य भी अपने अपने (कर्मों के) परिणाम ही हैं।
66. जिण धम्मरसायणु सुहसयदायणु णरभवि जेण ण भावियउ। सो जम्मु वि हारइ सुहगइ चारइ रयणु व दुक्खु पावियउ॥ पा. 6/22-14-15/44
अनेक सुखों को प्रदान करने वाले, जिनधर्मरूपी रसायन का जिसने नरभव में सेवन नहीं किया वह दुर्लभ रत्न के समान प्राप्त नर-जन्म को हार जाता है और शुभगति को दूर कर देता है।
67. दुज्जण-सज्जण ससहाव जे वि दोसइ गुणाइं गिण्हंति ते वि ॥
पा. 7/6-6/152
जो दुर्जन अथवा सज्जन जैसे स्वभाव से युक्त हैं, वे तदनुसार दोषों एवं गुणों को ग्रहण करते हैं।



शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त सन्दर्भ ग्रन्थ तालिका

1. अपभ्रंश साहित्य	हरिवंश कोछड़	भारतीय साहित्य मन्दिर फज्जारा, दिल्ली, प्र.सं.
2. अहिच्छेत्रा की पुरासम्पदा	डॉ. रमेशचन्द्र जैन	दि जैन अतिशय क्षेत्र अहिच्छेत्र, जिला कोरली प्र.सं.
3. आदिपुराण	आचार्य जिनसेन सम्पादक-पं. पन्नालाल साहित्याचार्य	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, द्वितीय संस्करण
4. अर्सादपुराण में प्रतिपादित भारत	डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री	गणेशप्रसाद वर्गी, दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी 1968 ई.
5. आचाराश्रय		जैन विश्व भारती, ल्डाडनू
6. आवश्यक निर्युक्ति		
7. इण्ट्रोडक्शन टू प्राकृत		कुलनर
8. उत्तरपुराण	आचार्य गुणभद्र सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य	भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्र. सं. 1954 ई.
9. उत्तराध्ययन सूत्र		जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा, कलकत्ता
10. अंगुत्तर निकाय		
11. कोटिलीयं अर्थशास्त्रम्	विष्णुगुप्त, ए. धन. वैकटनाथआचार्य	ऑरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मैसूर, 1960 ई.
12. करकंद चरित्र		
13. कल्याणमन्दिर स्तोत्र		वर्णी जैन ग्रन्थमाला, मेरठ
14. काव्यादर्श		
15. छहढाला		
16. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास	बलभद्र जैन	
17. जेनिज्म इन बुद्धिस्ट लिटरेचर	डॉ. भागचन्द्र जैन	



- | | | |
|--|---|---|
| 18. जैन निबन्ध रत्नावली | मिलापचन्द कटारिया | |
| 19. जैन साहित्य और इतिहास | पं. नाथू राम प्रेमी | हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर
कार्यालय, हीराबाग
गिरगाँव, बम्बई, प्र.सं. |
| 20. जैन बालगुटका | ज्ञानचन्द्र जैन | |
| 21. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-5) | अम्बालाल प्रे. शाह | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध
संस्थान, वाराणसी, प्र.सं. |
| 22. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-6) | डॉ. गुलाबचन्द चौधरी | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध
संस्थान, वाराणसी 1975 ई.
प्र. सं. |
| 23. जैन सूत्राज (द्वि भाग) | | |
| 24. तिलोत्पलपण्णसी संस्कृति संरक्षक संघ | डॉ. यतिवृषभ
मं. डॉ. ए. एन. उपाध्ये
और हीरालाल जैन | जीवराम जैन ग्रन्थाला
फखटण गली, सोलापुर,
प्र.सं. |
| 25. तत्त्वार्थवार्तिक | डॉ. देवदेव इन्द्रे | प्र.सं. |
| 26. तत्त्वार्थसूत्र | आ. उमास्वामि | गणेशगणप्रसाद वर्णी जैन
ग्रन्थमाला, नरिया, वाराणसी,
प्र.सं. |
| 27. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा | डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री | भा. द. जैन विद्वत् परिषद्,
सागर (म. प्र.) |
| 28. द्विसन्धान महाकाव्य | धनञ्जय | भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,
प्र.सं. 1944 ई. |
| 29. द्रव्य संग्रह | | |
| 30. दर्शनसार | देवसेनाचार्य | श्रीनाथुराम प्रेमो, मन्त्री जैन
ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,
हीरा बाग, बम्बई। |
| 31. उत्तराध्ययन सूत्र | सम्पा. जालशारपेण्टियर | |
| 32. दीर्घनिकाय | सम्पा. भिक्षु जगदीश कश्यप | बिहार राज्य पालि प्रकाशन
मण्डल, नालन्दा (पटना)
1958 ई. |
| 33. नीतिवाक्यसूत | सोमदेव सूरि
सम्पा. सुन्दरलाल शास्त्री | |





34. निर्याथसूत्र	मम्मा. तपोध्याय अमरमुनि	सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, प्र.सं.
35. नीतिवाक्यामृत में राजनीति	एम. एल. शर्मा	भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्र.सं.
36. पद्मचरित (भाग 1, 2, 3)	आचार्य राववैष्ण	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र.सं.
37. पार्श्वनाथ चरित	वादिराज भूरि मम्मा. मनोहरलाल शास्त्री	माणिकचन्द दि. जैन ग्रन्थ- माला, समिति, बम्बई, वि.सं. 1973 ई.
38. पार्श्वपूरण भूधरदास		
39. पद्मचरित	विपलसूरी	प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी।
40. प्रवचनसार	आचार्य कुन्दकुन्द	दि. जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़।
41. पद्मनन्दि पञ्चविंशति	पद्मनन्दि	जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर।
42. पद्मचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति	डॉ. मोश चन्द जैन	भा. दि. जैन महासभा प्रांसस्थान पीयूष भारती, जैन मन्दिर के पास बिजौरी (उ.प्र.)
43. पुरुषार्थसिद्धयुगाथ	आचार्य अमृतचन्द्र	दि. जैन परिषद, पब्लिशिंग हाउस, देहली।
44. प्राकृत साहित्य का इतिहास	डॉ. जगदीश चन्द्र जैन	चौखम्भा संस्कृत सीरीज, ऑफिस, वाराणसी।
45. पार्श्वनाथ चरित का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. जयकुमार जैन	जैन भक्त प्रचार समिति, प्रतिष्ठान-104 इस्कॉनपुर, गुजफरनगर (उ. प्र.)
46. बृहत्संहिता	बराहमिहिर	
47. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उसका सं. हिन्दी पर प्रभाव	रामसिंह तामर	हिन्दी परिषद प्रकाशन प्रयाग विश्वविद्यालय, प्र. 1963 ई.





48. पावनतीर्थ हस्तिनापुर डॉ. रमेशचन्द्र जैन दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र,
हरिकानपुर, जिला मेरठ
(3. प्र.), प्र. सं.
49. ३. चन्दाबाई अभिनन्दन
ग्रन्थ
50. भट्टारक सम्प्रदाय डॉ. विद्याधर जोहरसुम्कर
51. भारत के दिगम्बर जैन अलभद्र जैन भा. दि. जैन तीर्थ क्षेत्र
तीर्थ (भाग-1) कमेटी, बम्बई.
52. भविस्यत्तकहा और डॉ. देवेन्द्र कुमार शस्त्री भारतीय ज्ञानमंडल, काशी
अपभ्रंश कथा काव्य
53. भगवती सूत्र
54. महाकावि रघु के डॉ. राजाराम जैन प्राकृत, जैन शास्त्र और
साहित्य का अहिंसा शोध संस्थान,
अलोचनात्मक परिशीलन बैंगाली 1972 ई.
55. महाभारत (शान्तिपर्व)
56. गार्ज्जमनिकाय
57. महावंश
58. राजर्षिसाहित्यज्ञान के मुखराज जैन
59. पृथ्वंश कालिदान
60. रघु प्रधावली सागत. डॉ. राजाराम जैन जीवगज ग्रन्थमाला,
शोलापुर
61. रत्नकरण्ड श्रावकाचार आचार्य समन्तभद्र
62. रामायण कान्ठो संस्क्रान्त शान्तिकुमार नानुराम व्यास
63. विष्णु धर्मसूत्र
64. बृहत्संथाकोश हरिषेण
65. वराहचरित जटामिह बन्दि भाणिकचन्द्र दिगम्बर जैन
ग्रन्थमाला, बम्बई, प्र. सं.
66. विविधतीर्थकल्प
67. शुक्रनीतिम्बर
68. श्रीमदभगवद्





70. समवायंग
71. सिरिपासनाहचरित देवभद्रसुरि
72. स्थानाङ्ग
73. साहित्यदर्पण विश्वनाथ चौखम्बा विद्या भवन,
वाराणसी, चतुर्थ संस्करण,
1976 ई..
74. सवार्थसिद्धि आचार्य पूज्यपाद अनु. पं. फूलचन्द्र शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
75. सागर धर्माभूत पं. आशाधर भारतीय ज्ञानपीठ, देहली।
76. संस्कृत काव्यके विकास में जैनाचार्यों का योगदान डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ, देहली।
77. षट्छंडागम (धवल टोका) आ. पुष्प दन्त एवं भूतबलि जीवराज जैन ग्रन्थमाला
शोलापुर
78. हरिभद्र के कृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री प्राकृत, जैनधर्म एवं अहिंसा
शोध संस्थान, वैशाली
79. हरिवंश पुराण आ. जिनसेन भारतीय ज्ञानपीठ काशी।
80. हिस्ट्री आफ दिवलर्ड हमसंवार्थ
81. क्षत्रिय क्लेन्स इन बुद्धिस्ट इण्डिया
82. त्रिलोकसार

पत्र-पत्रिकायें- पार्श्वज्योति, अनेकान्त, माडर्न रिव्यू, जैन विद्या, जैन एण्टीक्वेरी

